प्रेमचन्द

□

□

लखनऊ विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिये स्वीकृत शोध-प्रबन्ध

प्रेमचन्द

डॉ० जगतनारायण हैकरवाल
एम० ए०, एल-एल० बी०, पी-एच० डी०

अक्षरपीठ प्रकाशन
८४ बी, मोहिलेनगर, इलाहाबाद-६

पिता की मृत्यु के बाद के उन संघर्षपूर्ण दिनों को,
जिनमें उन्हीं की स्मृति ने जीवन-पथ पर
बढ़ने का सम्बल दिया।

—जगतनारायण हैकरवाल

दो शब्द

प्रेमचन्द जी वर्तमान युग के उन हिन्दी लेखकों में हैं जिनकी ख्याति भारत की सीमाओं का अतिक्रमण करके विदेश में पहुँची है। उनकी कुछ रचनाओं का अनुवाद यूरोपीय भाषाओं में हुआ है। रूस तक में, जहाँ कि सामाजिक और सांस्कृतिक पद्धतियाँ इस देश से बहुत भिन्न हैं, उनके साहित्य का आदर हुआ। अपने देश में कुछ दिनों से ऐसा हो गया है कि जब किसी भारतीय लेखक की प्रतिष्ठा विदेश में होती है तब हम उसकी कदर करना आरम्भ करते हैं। रवि बाबू तक के सम्बन्ध में ऐसा ही हुआ था। ऐसी दशा में यह परितोष की बात है कि प्रेमचन्द जी अपने जीवन-काल में ही अपने देशवासियों से प्रतिष्ठा प्राप्त कर सके।

उनकी रचनाओं की भूमिका उनके मस्तिष्क की कल्पना नहीं थी। अपने चारों ओर के नागरिक और ग्रामीण समाज में वह जो कुछ देखते थे उसी से उनको सामग्री मिलती थी। देशवासियों की आकांक्षाओं, आशाओं और चिन्ताओं की प्रतिध्वनि पद-पद पर सुन पड़ती है। लेखक के रूप में वह परिवर्तनों के बीच में, विचार और विचारधाराओं के भँवर में डूबती, तिरती भारतीय जनता के एक प्रकार से प्रतीक थे। उनके जीवन और रचनाओं का विवेचन उनके सम-सामयिक काल का विवेचन होगा। उसके साथ ही वह ऊँचे कलाकार थे। भाषा की शैली विशेष पर उनका अधिकार था, यह कहना मेरे लिए अनावश्यक है। मेरा उनके साथ पारिवारिक रिश्ता था। यों भी उनकी कृपा मुझ पर रहती थी, इसलिए कुछ हद तक उनके जीवन को भीतर से अध्ययन करने का अवसर मिला था, परन्तु उन बातों की चर्चा करने का यह स्थान नहीं है। श्री हैकरवाल ने जो विस्तृत अध्ययन किया है वह उपादेय है, ऐसा मेरा विश्वास है।

पुस्तक के अन्त में लेखक ने प्रेमचन्द जी के जीवन की कुछ समस्याओं की चर्चा की है। निश्चय ही यह समस्यायें उठती हैं। सच पूछा जाय तो यह समस्यायें अकेले प्रेमचन्द जी को नहीं, लाखों शिक्षित व्यक्तियों को उद्वेलित करती थीं और अब भी करती हैं। यह संक्रान्तिकाल की—पुराने युग की समाप्ति और नए युग के आगमन के सन्धिकाल की समस्यायें हैं। प्राचीनता और नवीनता का समन्वय कठिन होता है, उस अन्तर्द्वन्द्व रूपी कठिनाई को ही यह

समस्यायें व्यक्त करती हैं। बहुत दिन हुए एक बार मैंने प्रेमचन्द जी के सम्बन्ध में उनके जीवन-काल में ही एक लेख लिखा था। जहाँ तक स्मरण होता है वह 'आज' में प्रकाशित हुआ था। उसमें मैंने दिखलाया था कि कभी-कभी किसी विकट सामाजिक गुत्थी का ठीक-ठीक सुलभाव करने में अपने को असमर्थ पाकर प्रेमचन्द जी अपने किसी पात्र से आत्महत्या करा देते हैं। ऐसे प्रश्नों का उठना और लेखक का पात्रों से आत्महत्या जैसा काम कराना उस परिस्थिति का द्योतक है जिसमें शिक्षित भारतीय अपने को उस समय पाता था और कुछ हद तक अब भी पाता है।

अक्टूबर, १९६१

प्रस्तावना

बीस वर्ष बीते, मैं न्यूयार्क में था कि मेरे प्रिय शिष्य डॉ० जे० एन० हैकरवाल ने मुझे लिखा कि प्रेमचन्द पर उनका शोध-प्रबन्ध प्रकाशित होने जा रहा है, मैं उसके लिए प्रस्तावना भेज दूं। मैंने सहर्ष कुछ पन्ने अंग्रेजी में लिख कर भेज दिये क्योंकि उनकी पुस्तक अंग्रेजी में ही थी। समय बीतता गया और अपने सरकारी कामों में व्यस्त रहने के कारण वह उसे प्रकाशित न कर सके। डॉ० हैकरवाल लखनऊ विश्वविद्यालय के उर्दू विभाग में पहले शोध-छात्र थे जिन्होंने पी-एच० डी० की उपाधि १६४७ में प्राप्त की थी और अपना थीसिस अंग्रेजी में लिखा था। उन्होंने अपना शोध-कार्य मेरे साथ किया था और चूँकि मुझे भी प्रेमचन्द साहित्य में बड़ी दिलचस्पी थी इसलिए हम दोनों ने मिलकर उस समय को देखते हुए एक महत्वपूर्ण कार्य किया था। प्रेमचन्द का स्वर्गवास हुए नौ-दस वर्ष हुए थे और उर्दू तो क्या हिन्दी में भी उन पर बहुत कम लिखा गया था। सामग्री की कमी ने हमको और उत्तेजित किया और हमने अधिकतर उनके कथा-साहित्य और लेखों के ही आधार पर अपने निष्कर्ष प्राप्त किये थे। यदि यह पुस्तक उस समय प्रकाशित हो गई होती तो इसका कुछ और ही महत्व होता।

कुछ समय बीतने के बाद प्रेमचन्द पर शोध-ग्रन्थों और पुस्तकों का एक सैलाब सा आ गया। उर्दू में तो कम परन्तु हिन्दी में अच्छी-बुरी बहुत-सी रचनायें उपलब्ध होने लगीं। प्रेमचन्द के जीवन के सम्बन्ध में भी नई बातें सामने आईं, बहुत-से पत्र और लेख भी खोज कर निकाले गए और उनके सहयोगियों और मित्रों ने भी अपने स्मरण के द्वार खोल कर दूसरों को अन्दर झाँकने का अवसर दिया। इसलिए डॉ० हैकरवाल को अपने शोध-ग्रन्थ में उचित संशोधन करना आवश्यक जान पड़ा। इस बीच में उत्तरप्रदेश के भूतपूर्व मुख्य मन्त्री डॉ० सम्पूर्णानन्द ने डॉ० हैकरवाल का प्रबन्ध पढ़ा और पसन्द किया और इस बात पर भी राजी हो गए कि यदि इसका अनुवाद हिन्दी में कर दिया जाय तो वह उसे छपवा भी देंगे। इस सुझाव को लेकर डॉ० हैकरवाल ने इसे हिन्दी में लिख डाला और बहुत-सी उन पुस्तकों से भी मदद लेकर एक नई रचना बना

दिया था, जो उस समय उपलब्ध थीं। इस प्रकार मूल शोध ग्रन्थ एक नई रचना बन गया। किन्तु दुर्भाग्यवश डॉ० सम्पूर्णानन्द का स्वर्गवास हो गया और यह प्रबन्ध फिर पड़ा ही रह गया। मुझे हर्ष है कि अब इसके प्रकाशित होने की नौबत आ गई और नए संशोधनों के साथ यह प्रकाशन की मन्जिलों से गुजर रहा है।

प्रेमचन्द हिन्दी और उर्दू में सर्वोत्तम कथाकार के रूप में ख्याति की चरम सीमा पर पहुँच कर अब से लगभग पैंतीस वर्ष पूर्व दिवंगत हो चुके थे परन्तु इस बात को छिपाया नहीं जा सकता कि इस समय तक उनकी रचनाओं के मूल्यांकन, उनके विचारों के विश्लेषण और उनके स्थान के सम्बन्ध में साहित्यिक चिन्तन के अतिरिक्त दूसरी भावनाओं से काम लेकर उस न्याय और सच्चाई को नहीं अपनाया गया जिसकी आवश्यकता है। डॉ० हैकरवाल ने इस से बच कर एक निष्ठावान शोध छात्र की तरह प्रेमचन्द की विचारधारा और साहित्यिक महत्व को समझने की चेष्टा की है। हर लेखक को समझने के लिए उसके चिन्तन के स्रोतों को समझना आवश्यक होता है। प्रेमचन्द के लिए भी हमें उनको और उनके वातावरण को समझना होगा। प्रेमचन्द जीवन के सजग और सतर्क प्रेक्षक थे। उनके अपने कुछ आदर्श थे। जो भी प्रेमचन्द को उनके विचारों और कला की उत्कृष्टता में देखना चाहता हो उसे एक व्यक्ति का निर्माण करने वाले सभी तथ्य और समस्त भौतिक अथवा वस्तुपरक प्रभाव लेने होंगे। डॉ० हैकरवाल ने प्रेमचन्द सम्बन्धी अपने अध्ययन में अपना मत निर्धारित करने के लिए इस विश्लेषणात्मक शैली का उपयोग किया है।

प्रेमचन्द का जीवन घटनाओं से पूर्ण है तथा उनके चारों ओर फैला हुआ मनुष्य का जीवन सतत परिवर्तनशील रहा है। उस समय देश में अद्वितीय महत्व की एक सामाजिक क्रान्ति विद्यमान थी और विभिन्न प्रकार के राजनीतिक आन्दोलन भारत के भाग्य का निर्माण कर रहे थे। विकास के परस्पर विरोधी रूप थे और एक दूसरे के विरुद्ध प्रतिक्रिया चल रही थी। मध्यम वर्ग, जिससे प्रेमचन्द सम्बन्धित थे, के कुछ लोग आर्थिक अस्थिरता के कारण राजभक्ति की ओर जा रहे थे और कुछ विदेशी शासन के विरुद्ध विद्रोह की प्रेरणा दे रहे थे।

प्रेमचन्द पारिवारिक दुर्व्यवस्था और राष्ट्रीय जागरण के वातावरण में उत्पन्न हुए थे। उन्होंने अपने युग और अपने वर्ग के अधिकांश सद्गुण और दुर्गुण उत्तराधिकार में प्राप्त किए थे। परन्तु उनके भीतर के जागरूक कलाकार ने अन्याय, कुरूपता, अत्याचार, असमानता और घृणा के प्रति विद्रोह किया। कहानी और उपन्यास के माध्यम द्वारा प्रेमचन्द ने अपने आदर्शों का उपदेश दिया है जो यद्यपि कभी-कभी भावुकतामय, अध्यात्मपरक और रोमांटिक है, फिर भी अन्ततः ये मनुष्य के हित, मानवता के प्रेम और सद्वृत्तियों की विजय की ओर उन्मुख हैं। डॉ० हैकरवाल ने प्रेमचन्द को बहुत ही सहानुभूति-पूर्वक पढ़ा है और उन्होंने उन स्रोतों और आधारों को खोजने का प्रयत्न किया है जिनसे उनकी कला विकसित हुई है। उन्होंने प्रेमचन्द के व्यक्तित्व और साहित्यिक सफलताओं के प्रायः सभी पक्षों की ओर ध्यान दिया है और कुछ कठिन प्रश्नों का उत्तर बहुत ही उत्साहपूर्वक और सफलतापूर्वक दिया है।

प्रत्येक लेखक जो जीवन की समस्याओं को सामाजिक और यथार्थवादी ढंग से सुलझाता है, वह अपने ज्ञानार्जित परिवर्तन के भौतिक कारणों के अनुसार जीवन सम्बन्धी एक दृष्टिकोण विकसित करने को बाध्य होता है। यहाँ उस युग-चेतना को, जो प्रेमचन्द को सचेत रूप से अपने को व्यक्त करने की प्रेरणा देती है, उपयुक्त शब्दों में प्रस्तुत करना कठिन है क्योंकि उनके दृष्टिकोण में हमें समझौते और विरोध दोनों ही मिलते हैं। परन्तु जब हम गम्भीरतापूर्वक उनके विचारों की समीक्षा करते हैं तो हम मुख्य रूप से साधारण उत्पीड़ित और सुविधारहित मनुष्य के हित के लिए उन्हें अपने को समर्पित करते हुए पाते हैं। नये तत्वों को ग्रहण करते हुए और उसका परित्याग करते हुए उनकी चेतना तीस वर्ष के साहित्यिक जीवन में क्रमशः बढ़ती ही गई। जैसे-जैसे समय आगे बढ़ता गया वे जीवन के यथार्थ संघर्षों और उनके भौतिक कारणों के अधिकाधिक समीप आते गए और इसे मैं एक कलाकार की ईमानदारी का अच्छा प्रमाण मानता हूँ। उनकी अशान्त आत्मा अपने देशवासियों के लिए प्रसन्नता, स्वाधीनता और सम्पन्नता की खोज के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रही है। मेरा अनुमान है कि डॉ० हैकरवाल ने प्रेमचन्द की कृतियों के विचारों की व्याख्या करते हुए इन तथ्यों पर भी बल दिया है।

मैं आशा करता हूँ कि प्रेमचन्द के सम्बन्ध में यह पुस्तक हमारे हिन्दी और उर्दू समीक्षकों को इस महान लेखक का एक उद्घाटित और नवीन ढंग से अध्ययन करने की प्रेरणा प्रदान करेगी, जिससे कि प्रेमचन्द की मानवतावादी परम्पराएँ हमारे नए लेखकों के विचारों में उपयुक्त स्थान पा सकें।

इलाहाबाद
१५ मई, १९७२

(हस्ताक्षर)

प्राक्कथन

इस शोध-प्रबन्ध का विषय 'प्रेमचन्द' है जिसे सुविधा के लिए दो भागों में विभाजित किया गया है। प्रथम भाग में उनके जीवन, उनके वातावरण, उनके व्यक्तित्व पर पड़ने वाले बाह्य प्रभावों और उनकी कृतियों के तिथिवार विवरण सम्बन्धी तथ्य प्रस्तुत किए गए हैं। उनका जीवन सामाजिक व्यवस्था की कठोर यथार्थताओं से युक्त विघ्नों, संक्रान्तियों एवं संघर्षों से पूर्ण है। हमने उनके जीवन के विवरणों से सम्बन्धित अत्यधिक विश्वसनीय एवं प्रामाणिक सूत्रों के आधार पर ही अपने अध्ययन को आधारित किया है। इस प्रकार के प्रामाणिक सूत्रों का वहीं तक उपयोग किया गया है जहाँ तक प्रेमचन्द के अध्ययन में वे सहायक हैं। श्रीमती शिवरानी देवी और उनके पुत्र श्री श्रीपत राय ने हमें नए तथ्यों और उनके सम्बन्ध में कुछ नई सामग्री देकर विशेष सहायता की थी। पृष्ठ २४ पर दी गई वंशावली सन् १९४६-१९४७ में श्रीपतराय से उपलब्ध हुई थी। श्री अमृतराय की पुस्तक 'कलम का सिपाही' से प्रकाशन के समय बड़ी सहायता मिली।

प्रेमचन्द के व्यक्तित्व पर पड़ने वाले विभिन्न प्रभावों तथा उनसे समुत्पन्न प्रवृत्तियों के अध्ययन पर हमने विशेष बल दिया है। ये प्रभाव या तो 'प्रेमचन्द घर में' नामक पुस्तक में उल्लिखित हुए हैं या उनका उल्लेख स्वयं प्रेमचन्द की कृतियों में मिलता है या अमृतराय की पुस्तक 'कलम का सिपाही' में पाये जाते हैं। यह अनिवार्य है कि प्रेमचन्द का अध्ययन उन प्रभावों को ध्यान में रखकर किया जाए। प्रेमचन्द को समझने के लिए भारतवर्ष के सामाजिक और राजनीतिक आन्दोलनों का इतिहास जान लेना परम आवश्यक है क्योंकि प्रेमचन्द अपने समय की परिस्थितियों से बहुत प्रभावित हैं।

प्रेमचन्द की कृतियों की तिथि का क्रमानुसार परीक्षण इस पुस्तक के एक अध्याय की महत्वपूर्ण विषय सामग्री है। उर्दू में लिखी हुई उनकी कहानियों की समीक्षा और शुद्ध सूची इसी शोध-प्रबन्ध में सर्वप्रथम प्रस्तुत की गई थी।

उपन्यासों और कहानियों के अतिरिक्त प्रेमचन्द ने जीवनियाँ, निबन्ध, नाटक आदि और भी बहुत कुछ लिखा है। चूँकि इन रचनाओं का प्रेमचन्द की महानता में कोई विशेष योगदान नहीं है और न कलाकार के व्यक्तित्व को समझने में वे सहायक ही हैं अतः हमने उनकी चर्चा अत्यन्त संक्षेप में ही की है।

दूसरे भाग में प्रेमचन्द की कृतियों की चर्चा की गई है। प्रेमचन्द के साहित्य का अध्ययन दो पक्षों में किया गया है: प्रेमचन्द एक उपन्यासकार के रूप में और प्रेमचन्द एक कहानीकार के रूप में। उर्दू व हिन्दी साहित्य में उपन्यास और कहानी का उद्‌भव अंग्रेजी प्रभाव का परिणाम है। अतएव, पाश्चात्य देशों में प्रचलित टेक्नीक के आधार पर ही उनका अध्ययन उपयुक्त है। प्रेमचन्द का पूर्ण और वैज्ञानिक अध्ययन तब तक असम्भव है जब तक प्रेमचन्द के समय तक के उर्दू व हिन्दी साहित्य के उपन्यास और कहानी की टेक्नीक और इतिहास का ज्ञान न हो।

हमारा प्रयास यह रहा है कि एक उपन्यासकार और कहानी लेखक दोनों के रूप में प्रेमचन्द का सम्यक एवं पूर्ण अध्ययन प्रस्तुत किया जाय। हमने प्रायः सभी उपन्यासों की विवेचना की है, परन्तु कहानियों पर विचार करने के लिए हमें कुछ कहानियों को चुनना पड़ा है। विषयवस्तु के आधार पर हमने कहानियों के वर्ग बना दिए हैं और लगभग चालीस कहानियों की चर्चा विस्तारपूर्वक की है।

यहाँ इस बात को बता देना आवश्यक है कि कहानीकार और उपन्यासकार के रूप में प्रेमचन्द के तुलनात्मक अध्ययन की उपेक्षा जानबूझ कर की गई है। कलाकार की दृष्टि से प्रेमचन्द के विचार जीवन और साहित्य के सम्बन्ध में अपने समय के उर्दू और हिन्दी के दूसरे लेखकों से भिन्न थे। इसके अतिरिक्त तुलनात्मक अध्ययन हमें दूसरी अन्य विरोधी धाराओं की ओर ले जाता जो हमारे प्रयोजन और लक्ष्य सिद्धि में सहायक न होता।

अन्तिम अध्याय में हमने सम्पूर्ण पुस्तक का सार न देकर अपने विषय को उसकी पूर्ण महानता और सूक्ष्मता के साथ उपस्थित करने का प्रयास किया है। साथ ही यहाँ प्रेमचन्द की शैली और भाषा का अध्ययन भी प्रस्तुत किया है। 'प्रेमचन्द एक उपन्यासकार के रूप में' और 'प्रेमचन्द एक कहानी लेखक के रूप में' नामक अध्यायों में उनकी शैली और शब्द-प्रयोग पर भी विचार किया गया है। अतः हमने इस विषय के प्रतिपादन के लिए कोई स्वतन्त्र और पृथक अध्याय नहीं रखा है।

प्रेमचन्द और उनकी कृतियों की समीक्षा निष्पक्ष होकर प्रस्तुत की गई है और उनके साहित्य के गुणों और दोषों पर समान रूप से दृष्टि डाली है। हमने उपन्यासकार के रूप में प्रेमचन्द के कलात्मक अभावों की ओर भी संकेत किया है और महान लेखक प्रेमचन्द का अध्ययन करते समय उनकी महत्ता से

प्रभावित होकर अत्यधिक साधुवाद और वीर पूजा की भावना से बचने का भरसक प्रयत्न किया है। इतना होने पर भी इस विषय का हमारा अध्ययन सहानुभूति और तर्क की कसौटी पर आधारित रहा है। विषय के साथ पूर्ण न्याय करने की विधि में उनके व्यक्तित्व और कृतियों की मनोवैज्ञानिक और समाजवैज्ञानिक व्याख्या निहित है। मनोवैज्ञानिक और समाजवैज्ञानिक व्याख्या केवल रचनात्मक आलोचना का क्षेत्र ही विस्तृत नहीं करती वरन् हमें क्रमबद्ध परिणाम की ओर भी ले जाती है। यह एक आलोचक को वैज्ञानिक विचार के क्षेत्र में विशेष रूप से दीक्षित करती है।

यह शोध-प्रबन्ध सन् १९४५-१९४६ में लिखा गया था। उसके बाद से देश में अप्रत्याशित घटनाएँ घट चुकी हैं। अब हमारा देश एक स्वतन्त्र राष्ट्र है और उसी के एक भाग में एक नए देश का निर्माण हो चुका है जिसे पाकिस्तान कहते हैं। अब पाकिस्तान का भी एक भाग बंगला देश बन गया है। सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में जमींदारी उन्मूलन ऐक्ट, पंचायत ऐक्ट, हिन्दू समाज सुधार सम्बन्धी विधेयक, प्रिवी पर्स उन्मूलन विधेयक और विस्तृत विकास योजनाएँ देश में क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित करने जा रही हैं। हम एक संक्रान्ति से गुजर रहे हैं। प्रेमचन्द का भारतवर्ष एक निर्माण और नियोजन के युग से गुजर रहा है। हम इस समय देश में वर्तमान परिस्थितियों और प्रेमचन्द द्वारा अपनी विविध रचनाओं में चित्रित परिस्थितियों में एक अन्तर अनुभव कर रहे हैं। प्रेमचन्द निश्चय ही मानवता से सम्बन्ध रखते थे और उन्होंने उसके हर्ष-विषाद, सुख-दुख, पीड़ा-उत्पीड़न इत्यादि के सम्बन्ध में लिखते हुए समाजवाद को इन सभी दोषों का उपयुक्त उपचार बताया है।

प्रस्तुत पुस्तक मेरे शोध-प्रबन्ध, जिस पर मुझे सन् १९४७ में लखनऊ विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि मिली थी, का यत्किंचित परिवर्तित और परिवर्धित रूप है। मैंने लखनऊ विश्वविद्यालय के उर्दू विभाग में प्रो० सैयद एहतेशामहुसैन (संप्रति विभागाध्यक्ष, उर्दू विभाग, इलाहाबाद विश्व-विद्यालय) के निरीक्षण में प्रेमचन्द पर शोध किया था।

इधर दो दशकों में प्रेमचन्द पर अनेकों शोध-कार्य हो चुके हैं और बहुत-सी नयी-नयी बातें प्रकाश में आई हैं। मेरी इच्छा थी कि मैं प्रेमचन्द पर प्रकाशित नए साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन कर सकूँ, परन्तु ऐसा सम्भव नहीं हो पाया। जहाँ तक बन सका है इस पुस्तक को समीचीन बनाने का प्रयास किया है। यह प्रबन्ध वस्तुतः उर्दू विभाग का है पर जैसा कि उस समय का नियम

था इसे अंग्रेजी में लिखा गया था। उसी अंग्रेजी प्रतिरूप का अनुवाद हिन्दी में इस पुस्तक के रूप में प्रकाशित हो रहा है। अनुवाद के कारण पुस्तक की भाषा और इस पुस्तक में उद्धृत अन्य लेखकों के उद्धरणों के साथ जो न्याय नहीं हो पाया है उसके लिए मैं क्षमा प्रार्थी हूँ।

मैं प्रोफेसर सैयद एहतेशामहुसैन का विशेष कृतज्ञ हूँ जिन्होंने न केवल पग-पग पर मेरा मार्ग-प्रदर्शन किया वरन् सदैव अपने स्नेह और निष्काम भाव से मुझे प्रेरणा दी। मुझे विश्वास है कि जिस तत्परता और निष्पक्षता से प्रोफेसर साहब ने मुझे मार्ग-दर्शन प्रदान किया है यदि आज भी शोध-छात्रों को वैसी ही सुविधा प्राप्त हुई तो देश में अच्छे शोधकर्ताओं की वृद्धि होगी और शोध का भविष्य उज्ज्वल रहेगा। इस पुस्तक के अनुवाद में श्री श्यामाचरण तिवारी, एम०ए०, उप सम्पादक नवजीवन का बहुत बड़ा हाथ है तथा डॉ० त्रिलोकीनारायण दीक्षित, एम० ए०, एल-एल० बी०, पी-एच० डी०, डी० लिट० (रीडर, हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय) ने भी महत्वपूर्ण सुझाव दिया। प्रो० राधेश्याम रस्तोगी, एम० ए० (लखनऊ विश्वविद्यालय) ने इस पुस्तक की पांडुलिपि का पुनर्निरीक्षण करने में विशेष श्रम किया था। इन तीनों मित्रों का मैं आभारी हूँ। डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, एम० ए०, डी० फिल०, डी० लिट०, (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय) ने भी पूरी पाण्डुलिपि देखकर महत्वपूर्ण सुझाव दिये हैं। एतदर्थ उनका भी कृतज्ञ हूँ। स्वर्गीय प्रोफेसर डी० पी० मुकर्जी (लखनऊ तथा अलीगढ़ विश्वविद्यालय), स्वर्गीय डॉ० बी० एस० हैकरवाल, एम० ए०, एल-एल० बी०, पी-एच० डी० की प्रेरणा भी मुझे सदैव प्राप्त रही। इस पुस्तक में विभिन्न पुस्तकों के उद्धरणों का उपयोग हुआ है अतः मैं उनके लेखकों तथा प्रकाशकों का भी आभारी हूँ। मेरी पत्नी श्रीमती कान्ति की सतत प्रेरणा भी मुझे सदैव प्राप्त रही। इस शोध-प्रबन्ध को समीचीन बनाने में श्री अनिरुद्ध कुमार हैकरवाल (स्वतन्त्र पत्रकार) ने विशेष सहायता की तथा मेरी पुत्री कु० रेखा हैकरवाल, एम० ए० ने प्रेस पांडुलिपि बनाने में सहायता दी। मैं डॉ० रामलाल सिंह, एम०ए०, बी०टी०, पी-एच०डी०, साहित्यरत्न, (सदस्य लोक सेवा आयोग) का विशेष आभारी हूँ क्योंकि उन्हीं की कृपा से यह पुस्तक प्रकाशित हो रही है।

जेल निवास,
नैनी,
इलाहाबाद
ज्येष्ठ दशहरा, २०२६

जगतनारायण हैकरवाल

विषय सूची

इस पुस्तक में अभिव्यक्त विचार स्वयं लेखक के हैं और वही
इनका पूर्ण उत्तरदायी है। पुस्तक के प्रकाशन का सरकार से कोई सम्बन्ध नहीं है।

१ | प्रेमचन्द के जीवन का विश्लेषणात्मक अध्ययन

प्रेमचन्द के जीवन का विश्लेषणात्मक अध्ययन

□

प्रेमचन्द के पाठक उन्हें तीन विभिन्न नामों से जानते हैं। उनके पिता उन्हें धनपतराय, उनके चाचा नवाबराय तथा वे स्वयं अपनेआप को प्रेमचन्द कहते थे। इसकी पृष्ठभूमि में एक छोटी-सी कथा है। उनकी बहुत-सी प्रारम्भिक कृतियाँ उनके छद्म नाम नवाबराय के नाम से प्रकाशित हुई थीं। सन् १९०७ ई० में उनकी पाँच कहानियों का एक संग्रह 'सोज़-ए-वतन' उनके इसी नाम से 'ज़माना'[1] (कानपुर) ने प्रकाशित किया। हमीरपुर (बुन्देलखंड) के तत्कालीन कलेक्टर ने 'सोज़-ए-वतन' की ७०० प्रतियाँ खुलेआम जलवा दीं। उसके मत से इन कहानियों में राजद्रोही साहित्य था। प्रेमचन्द को, जो वहाँ उस समय सब-डिप्टी इंस्पेक्टर आफ स्कूल्स के पद पर नियुक्त थे, यू० पी० सरकार के शिक्षा विभाग की ओर से आज्ञा मिली कि वे सरकार की पूर्व अनुमति के बिना कुछ भी प्रकाशित न किया करें। इस प्रकार के कष्टकर प्रतिबन्धों के प्रति आत्म-समर्पण करना प्रेमचन्द को अत्यन्त कठिन प्रतीत हुआ। अतः अपना नाम बदलकर लिखते रहने के अतिरिक्त उनके पास इस कठिनाई का और कोई उपाय न था। उनके मित्र ज़माना सम्पादक स्व० मुंशी दयानारायण निगम को भी यह विचार पसन्द आया और उन्होंने प्रेमचन्द नाम रख लेने की सम्मति दी।[2] नवाबराय इस प्रस्ताव से सहमत हो गए। तभी से, वे प्रेमचन्द नाम से विख्यात हैं।

प्रेमचन्द का जन्म एक निर्धन श्रीवास्तव कायस्थ परिवार में हुआ था। धनपतराय के पितामह गुरुसहाय एक किसान थे। उनके पास केवल कुछ एकड़ भूमि थी जिससे अत्यन्त अल्प आय होती थी। निम्नलिखित वंशवृक्ष प्रेमचन्द की वंशावली समझने में सहायक होगा :—

---

१. 'ज़माना' कानपुर से प्रकाशित होने वाली उर्दू की एक मासिक पत्रिका है। उसके सम्पादक स्वर्गीय मुंशी दयानारायण निगम प्रेमचन्द के घनिष्ट मित्रों में थे।

२. 'ज़माना' (प्रेमचन्द अंक), पृ० ६२;
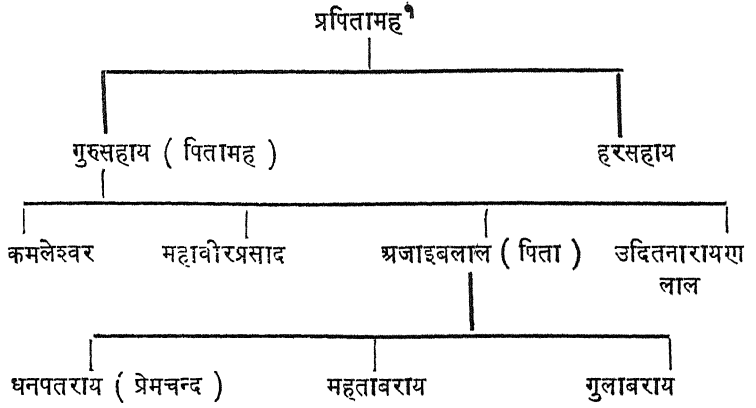
सौभाग्य से मुंशी गुरुसहाय के चार पुत्र उत्पन्न हुए : कमलेश्वरलाल, महावीर प्रसाद, अजाइबलाल और उदितनारायण लाल। उनके बड़े पुत्र कमलेश्वर लाल की मृत्यु बहुत कम अवस्था में ही हो गई थी। अपने भाई अजाइब लाल की भाँति महावीरप्रसाद भी डाक-तार विभाग में नौकर थे। यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि महावीरप्रसाद का विवाह हुआ था या नहीं, पर वे निस्सन्तान थे। मुंशी अजाइबलाल का विवाह आनन्दीदेवी के साथ हुआ और उन्हें एक पुत्र हुआ, जिसका नाम धनपतराय रखा गया। सात वर्ष की अल्पावस्था में ही इस बच्चे की माँ की मृत्यु हो गई तब अजाइबलाल ने दूसरा विवाह किया। वह बराबर डाक विभाग में काम करते रहे और जब नौकरी से अवकाश प्राप्त किया तो उस समय वह एक सब-पोस्टआफिस के केवल छोटे पोस्टमास्टर थे। अधिकतम वेतन, जिस तक वे पहुँचे थे, केवल चालीस रुपए मासिक था। सबसे छोटे भाई उदितनारायण लाल भी डाक विभाग में एक मुंशी थे।

अजाइबलाल के तीन पुत्र थे : धनपतराय, महताबराय और गुलाबराय। धनपतराय का जन्म मुंधवालमही मुफ़स्सिलपांडेपुर, बनारस में ३१ जुलाई १८८० को हुआ था।

---

१. इस परिवार में धनपतराय के भाई महताबराय को छोड़कर और कोई जीवित नहीं। मुंशी धनपतराय के दो पुत्र तथा एक पुत्री है। बड़े पुत्र का नाम श्रीयुत श्रीपतराय तथा छोटे पुत्र का नाम श्रीयुत अमृतराय है।

जन्मतिथि सम्बन्धी मतभेद

महान पुरुषों के विषय में अक्सर ऐसा होता है कि हमें उनकी ठीक-ठीक जन्मतिथि नहीं मिलती। प्रेमचन्द इसके अपवाद नहीं हैं। उनकी जन्मतिथि के विषय में भी मतैक्य नहीं है।

मदनगोपाल[1] उनकी जन्मतिथि १० अगस्त १८८१ निश्चित करते हैं, जबकि श्रीमती शिवरानी देवी[2] प्रेमचन्द का जन्म ३१ जुलाई १८८० बतलाती हैं।

उपर्युक्त दोनों तिथियों में एक वर्ष और दस दिन का अन्तर है। फिर भी इस अन्तर के होते हुए भी प्रेमचन्द, जिनकी मृत्यु १९३६ में हुई है, की सही जन्मतिथि जानने में कोई कठिनाई नहीं है।

पहले हम उपर्युक्त दोनों तिथियों का विवेचन करेंगे। प्रेमचन्द के सम्बन्ध में मदनगोपाल की पुस्तक सन् १९४४ में प्रकाशित हुई। इस पुस्तक के विषय में लेखक स्वयं कहता है, "यह एक व्यापक अध्ययन नहीं है वरन् एक सांकेतिक और आंशिक खोज एवं परीक्षण है जो प्रेमचन्द की कृतियों के मेधावी, सतर्क और परिश्रम साध्य अध्ययन पर आधारित है।"

परन्तु न तो यह इस विषय का एक विस्तृत अध्ययन ही है और न इसमें प्रेमचन्द के जीवन के तथ्यों का विस्तारपूर्वक आलोचनात्मक परीक्षण ही है। मदनगोपाल ने प्रेमचन्द की जन्मतिथि उनके स्कूल लीविंग सर्टीफिकेट के आधार पर दी है। उनके स्कूल लीविंग सर्टीफिकेट में उनकी सही जन्मतिथि नहीं है।

श्रीमती शिवरानी देवी ने अपनी पुस्तक 'प्रेमचन्द घर में' में अपने पति की जन्मतिथि ३१ जुलाई १८८० दी है।

प्रेमचन्द स्वयं लिखते हैं, "मैं संवत् १९३७ में पैदा हुआ था।"[3] गणना करने से विक्रम संवत् १९३७ और ईसवी सन् १८८० एक ही समय थे। इसलिए शनिवार ३१ जुलाई १८८० ई० ही उनकी सही जन्मतिथि है। श्री अमृतराय

---

१. प्रेमचन्द, ले० मदनगोपाल। टाइटिल पृष्ठ के बाईं ओर जन्मतिथि दी गई है।

२. प्रेमचन्द घर में, ले० शिवरानी देवी, पृ० १;

३. 'जमाना' (प्रेमचन्द अंक), 'प्रेमचन्द की कहानी उनकी जबानी', पृ० ३; विक्रम संवत् १९३७ और ईसवी सन् १८८० साथ-साथ थे।

ने भी अपनी पुस्तक 'कलम का सिपाही' में प्रेमचन्द की जन्मतिथि सावन वदी १० संवत् १६३७, शनिवार ३१ जुलाई सन् १८८० मानी है।[१]

उनके जन्मस्थान के सम्बन्ध में भी कुछ भ्रम है। उनकी पत्नी ने भी उस स्थान का पूरा पता नहीं दिया है। प्रेमचन्द ने ही स्वयं अपने जन्मस्थान का सही नाम दिया है। वे मुंधवालमही, मुफ़स्सिलपांडेपुर, बनारस[२] में पैदा हुए थे। हिसामुद्दीन लिखते हैं कि प्रेमचन्द पांडेपुर नामक गाँव में पैदा हुए थे।[३] मदनगोपाल के अनुसार प्रेमचन्द मुंधवालमही में पैदा हुए थे।[४] श्रीमती शिवरानी देवी लिखती हैं कि प्रेमचन्द बनारस से चार मील दूर लमही नामक गाँव में पैदा हुए थे।[५]

गाँव में रहने वाले निम्न मध्य श्रेणी के अधिकांश परिवारों की भाँति प्रेमचन्द के परिवार का रहन-सहन भी देहाती था। शहर के जीवन की सुविधाएँ तथा मनोरंजन इस परिवार के बच्चों को प्राप्त न थे। परिवार की निर्धनता सदैव ही बच्चों के शरीर तथा मस्तिष्क के स्वस्थ विकास में प्रमुख रूप से बाधक होती है। प्रेमचन्द का बचपन विपदाओं की एक करुण कथा है जिसकी तुलना मैक्सिम गोर्की, जीन क्रिस्टोफर तथा उनकी अपनी कहानियों में चित्रित बहुत-से बच्चों के बाल्य जीवन से की जा सकती है। अपने पिता के जीवन काल में वे अत्यन्त साधारण, मोटे और भद्दे सूत के बने हुए कपड़े पहनते थे और उनके जूते गाँव वालों के जूतों के समान ही होते थे, जिन्हें चमरौधा कहते हैं। उनके खेलकूद तथा मनोरंजन एवं उनकी रुचि और अरुचि के विषय में हम अधिक नहीं जानते। बाल्यकाल में उनके खेल तथा मनोरंजन विशेष रूप से भारतीय और देहाती थे। वे गुल्ली-डंडा के शौकीन थे, जो सामान्यतया एक अत्यधिक प्रचलित भारतीय खेल है। गन्ना चूसने और मुँह भरकर मटर की फलियाँ खाने का उन्हें बहुत चाव था। डाकिए को आता देखकर बालक धनपतराय को बड़ा आनन्द मिलता था।

---

१. प्रेमचन्द कलम का सिपाही, ले० अमृतराय;

२. 'जमाना' (प्रेमचन्द अंक) में प्रकाशित स्वयं प्रेमचन्द के हाथ के लिखे हुए १७ जुलाई, १६२६ के एक पत्र का फोटोचित्र;

३. प्रेमसोग, ले० हिसामुद्दीन गोरी;

४. प्रेमचन्द, ले० मदनगोपाल;

इस प्रकार यह बालक बड़ा हुआ और पाँच वर्ष की अवस्था में उसे पहला पाठ पढ़ाया गया । "प्राचीन परिपाटी के अनुसार बालक प्रेमचन्द को गाँव के स्कूल में भेजा गया जिसे सुनारी पेशे वाले एक मौलवी साहब गाँव की मसजिद में चलाते थे ।"[1] इनसे प्रेमचन्द ने उर्दू और फारसी सीखी । श्रीमती शिवरानी देवी ने मक़तब में बोरे पर बैठे हुए कुप्पी की रोशनी में पढ़ते हुए बालक प्रेमचन्द का बड़ा सुन्दर चित्रात्मक वर्णन किया है ।

शिक्षा

उनका स्कूल और कालिज का जीवन भी बाधाओं से पूर्ण था । उनकी शिक्षा ठीक ढंग से नहीं चल पाई । समय-समय पर उन्हें अपनी कालेज की शिक्षा छोड़कर परीक्षायें प्राइवेट रूप से देनी पड़ीं । अपनी अधिकांश शिक्षा उन्होंने घर पर ही प्राप्त की । शैक्षिक जीवन में इन बाधाओं के होते हुए भी उनकी ज्ञान पिपासा तीव्र और अद्वितीय थी । अपने विद्यार्थी जीवन में उन्होंने सदैव ही प्रथम श्रेणी प्राप्त की । उपर्युक्त कारणों से प्रेमचन्द की शिक्षा का क्रमबद्ध विवरण देना कठिन है । तेरह वर्ष की अवस्था में वे बनारस के मिशन हाई स्कूल की छठवीं कक्षा में भर्ती हुए और १८९८-९९ में उन्होंने मैट्रीक्युलेशन परीक्षा उत्तीर्ण की । १९०४ में हिन्दी और उर्दू दोनों में विशेष योग्यता सहित उन्होंने जूनियर टीचर्स सर्टीफिकेट प्राप्त किया । १९१४[2] में उन्होंने प्राइवेट रूप से इंटरमीडिएट परीक्षा पास की और १९१९ में ३९ वर्ष की आयु में उन्होंने बी० ए० की उपाधि ली । उनका अध्ययन विषयक प्रेम अत्यन्त असाधारण था । यह सत्य है कि प्रेमचन्द की वास्तविक शिक्षा जीवन की पाठशाला में हुई, जिसमें उन्होंने जीवन की पुस्तक पढ़ी,[3] परन्तु साथ ही यह भी उतना ही सच है कि प्रेमचन्द सामान्य शिक्षा में भी पीछे नहीं रहे । जीवन की पुस्तक एवं पाठ्य पुस्तकों दोनों ही का उनका अत्यन्त गहरा अध्ययन था ।

---

१. प्रेमचन्द, ले० मदनगोपाल, पृ० १४;

२. मदनगोपाल ने अपनी पुस्तक 'प्रेमचन्द' के पृष्ठ १७ पर १९१० दिया है, जो गलत है । श्रीमती शिवरानी देवी प्रेमचन्द के एफ० ए० परीक्षा पास करने का वर्ष सन् १९१४ बताती हैं ।

३. प्रेमचन्द, ले० मदन गोपाल, पृ० १५;

बाल्यावस्था से प्रौढ़ावस्था तक के उनके जीवन काल की चर्चा कुछ अधिक विस्तार के साथ की जा सकती है, यदि हम उन परिस्थितियों का भी विश्लेषण करें जो उनके जीवन में कष्टों और अभावों का कारण थीं। प्रथम तो, वह एक बहुत ही पिछड़े परिवार में पैदा हुए थे। उस परिवार के पुरुष प्रगति अथवा उन्नति के प्रति पूर्ण उदासीन थे और घर के अन्दर स्त्रियाँ आपस में लड़ती रहती थीं। यदि किसी परिवार में स्त्रियाँ परस्पर कलहरत रहती हैं तो स्वभावत: ही घर का वातावरण दूषित और असहनीय हो जाता है। धनपतराय के जीवन के आरम्भिक वर्ष इसी प्रकार के वातावरण में व्यतीत हुए। परिवार के इस वातावरण ने विकासशील बालक पर एक गहरा और स्थायी प्रभाव छोड़ा। उनके मानसिक विकास में इस आरम्भिक वातावरण के प्रति उनकी प्रतिक्रियाओं का भी कम प्रभाव नहीं है: दारिद्रय और गृहकलह से ऊबकर उन्होंने साहित्य की शरण ली। उन्होंने केवल १४ वर्ष की अल्पावस्था में ही 'होनहार बिरवान के चिकने चिकने पात' नामक एक छोटा-सा नाटक लिखा। उन्होंने अपना पहला उपन्यास १९ वर्ष की अवस्था में पूर्ण किया। उस दूषित वातावरण और उसकी कटुता से दूर भागने के लिए ही ज्ञात अथवा अज्ञात रूप से उनका झुकाव लेखन की ओर हो रहा था। उनका परांगमुखी स्वभाव भी जीवन की कठोर यथार्थताओं से उनकी पलायनवादी वृत्ति का ही सूचक है।

दूसरे, उन्हें अपनी विमाता, मुंशी अजाइबलाल की दूसरी पत्नी, के हाथों दुर्व्यवहार के कठोर प्रहार भी सहने पड़े। जब वे केवल सात वर्ष के थे, तभी उनके लिए ममत्व एवं प्रेमपूर्ण स्मृतियाँ छोड़कर उनकी माँ स्वर्ग सिधार गईं। उनकी समस्त कृतियों में हमें मातृ-प्रेम की कोमल, श्रद्धापूर्ण और स्नेहसिक्त हल्की छाप मिलती है। वे अत्यन्त स्नेहशील और उच्च भावनाओं युक्त महिला थीं। वे स्नेहमयी थीं परन्तु अवसर पड़ने पर दृढ़ भी थीं। प्रेमचन्द की नारी सम्बन्धी धारणा में उनकी माता के सेवामय और त्यागशील जीवन ने उन्हें अत्यधिक प्रभावित किया है।[1] एक बालक जो अपनी माँ को लगभग पागलपन की सीमा तक प्यार करता है, उसे माँ की मृत्यु के पश्चात् प्रायः अपने आनन्द की समाप्ति ही दिखाई देती है। यदि उसे कटु विमाता के दुर्व्यवहार पर छोड़ दिया जाता है तो उसे अपनी माता का अभाव और भी अधिक तीव्रता से खलता है।

१. वही, पृ० १५;

अतएव माँ के स्नेह से वंचित यह बालक खेत-खलिहानों में घूमता फिरता। इस प्रकार इतनी अल्प अवस्था में ही प्रेमचन्द प्रकृति और ग्रामीण जीवन के सम्पर्क में आए। इसका अर्थ यह है कि उन्हें लोगों को देखने और समझने तथा सभी बातों को स्वयं जानने के लिए इस संसार में अकेला छोड़ दिया गया था।

ऐसा बहुत से अवसरों पर हुआ कि धनपतराय को उनकी विमाता ने दैनिक लेखन के लिए आवश्यक वस्तुएँ भी देने से इन्कार कर दिया। उनकी पत्नी ने 'प्रेमचन्द घर में' नामक अपनी पुस्तक में लिखा है कि उनकी माता भोजन के साथ उन्हें घी भी नहीं देती थी। इस प्रकार की घटना, चाहे वह तुच्छ ही हो, बच्चे पर बड़ा प्रभाव डालती है और इतना समय बीत जाने पर भी उसने उसे याद रखा होगा तथा अपनी दूसरी पत्नी से अवश्य बताया होगा। उसकी माता के दुर्व्यवहार ने, ऐसा प्रतीत होता है, उसके मन में स्त्रियों के प्रति भय की भावना उत्पन्न कर दी और मनोवैज्ञानिक अध्ययन द्वारा हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि उनका प्रथम विवाह, जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे, स्त्रियों के प्रति उनके इसी भय के कारण असफल सिद्ध हुआ। जीवन के इस काल में उनके स्वभाव की भावुकता का भी यही कारण प्रतीत होता है।

तीसरे, आर्थिक अभाव के कारण वे सदा ही चिन्ताग्रस्त बने रहे। जब वे कक्षा ९ में पढ़ रहे थे, तभी उनके पिता की मृत्यु हो गई। थोड़ा-सा पैसा, जो उनके पिता ने किसी भाँति जोड़ा था, वह भी उनके पिता की बीमारी तथा मरणोपरान्त होने वाले क्रिया-कर्म में खर्च हो गया। धनपतराय को अपने अतिरिक्त अपनी विमाता, दो भाइयों तथा अपनी पत्नी का भरण-पोषण करना था। नवीं कक्षा में पढ़ने वाले एक बालक के लिए जिम्मेदारियों के इस प्रकार के भारी बोझ ने उसके दिनों को अत्यन्त उदास, अन्धकारमय और दुखपूर्ण बना दिया होगा। प्रेमचन्द स्वयं कहते हैं कि अक्सर उन्हें भूखा रहना पड़ा है। किसी भाँति, उन्हें पाँच रुपया मासिक का एक ट्यूशन मिला।[1] इस छोटी-सी कमाई मे से दो रुपये वे अपने लिए रख लेते थे और तीन रुपए अपने परिवार को भेज देते थे। अपरिहार्य कष्ट और दुख के साथ एक-एक करके किसी भाँति उन्होंने ये दिन व्यतीत किए। यह वास्तव में बड़ा आश्चर्यजनक प्रतीत होता है कि केवल दो रुपए में वे अपने शरीर का भरण-पोषण कर सके। किसी प्रकार वे काम चलाते रहे। उनको पौष्टिक भोजन न मिला जिससे उनका शरीर दुर्बल

---

१. जमाना (कानपुर), प्रेमचन्द अंक, पृ० ६;

हो गया और वे प्रायः जीवन भर रुग्ण ही बने रहे । जीवन के समान बुरे दिन भी अनित्य ही होते हैं । धनपतराय को एक प्राइवेट स्कूल में अठारह रुपए मासिक की सहायक अध्यापक की नौकरी मिलने पर प्रकाश की एक किरण दिखाई पड़ी । स्पष्ट है कि इस छोटी-सी रकम से वे आराम की जिन्दगी तो बसर न कर सके होंगे पर भूखों मरने से अवश्य बच गए । अपनी अवस्था के अन्य बालकों के समान धनपतराय को रंगीन खिलौनों तथा सुन्दर गुड्डों आदि से खेलने का अवसर न मिला । बाल्यकाल के सामान्य आनन्दों से भी वे वंचित रहे । इसका कारण यही था कि उन्हें केवल जीवन के संघर्ष से सम्बन्धित कार्यों में ही अपनी शक्ति व्यय करनी पड़ी । निस्सन्देह इससे धनपतराय एक गम्भीर और चिन्तनशील बालक बन गया ।

पन्द्रह वर्ष की अवस्था में प्रेमचन्द का विवाह एक कुरूप और कर्कषा स्त्री से हुआ । उनकी पत्नी से बिलकुल निभ न पाई । वह उनसे लड़-झगड़ कर अपने मैके चली गई । इस घटना का वर्णन करते हुए उन्होंने अपने मित्र मुंशी दया-नारायण को लिखा, "बिरादरम, अपनी बीती किससे कहूँ । ज़ब्त किये-किये कोफ्त हो रही है ।...औरतों ने एक-दूसरे को जली-कटी सुनाई ।...बीबी साहबा ने अब ज़िद पकड़ी कि मैं यहाँ न रहूँगी मैके जाऊँगी ।...मैं उनसे पहले ही खुश न था, अब तो सूरत से बेज़ार हूँ । ग़ालिबन् अबकी की जुदाई दायमी साबित हो । खुदा करे ऐसा ही हो । मैं बिना बीबी के रहूँगा ।"[१]

धनपतराय का बाल्यकाल बड़ा ही संघर्षपूर्ण रहा । भरण-पोषण की समस्या उन्हें प्रतिक्षण चिन्तित बनाए रखती । दिवंगत माँ की स्मृति उन्हें सर्वदा कचोटती रहती । विमाता के कोप ने उन्हें सदैव ही दुःखी रखा । विवाह सम्बन्ध में भी उन्हें केवल कटुता मिली ।

सन् १९०६ में प्रेमचन्द ने दूसरा विवाह किया । यह विवाह उनके लिए एक वरदान सिद्ध हुआ । मुंशी प्रेमचन्द कहते हैं, "मेरी प्रथम पत्नी की मृत्यु १९०४ में हुई । उनके मरने पर मैंने एक बाल-विधवा से विवाह किया और मैं उसके साथ बहुत प्रसन्न हूँ । उसने कुछ साहित्यिक रुचि जागृत कर ली है और कभी-कभी कहानियाँ भी लिखती है । वह एक निर्भय, साहसी, दृढ़ और निष्कपट, ईमानदार तथा अपने दोषों को स्वीकार कर लेने वाली अत्यधिक शालीन स्त्री है । उसने असहयोग आन्दोलन में भाग लिया और जेल गई । मैं

---

१. कलम का सिपाही, ले० अमृतराय;

उसके साथ प्रसन्न हूँ और उससे उस वस्तु की अपेक्षा नहीं रखता जो वह दे नहीं सकती।"[1] वास्तव में उनकी पत्नी शिवरानी देवी उनके लिए एक बहुत बड़ी शक्ति थीं। वे एक अत्यन्त कुशल एवं दक्ष गृहस्वामिनी थीं। उन्होंने प्रेमचन्द को लिखने की प्रेरणा दी। यह बता देना भी अनुचित न होगा कि प्रेमचन्द ने उनसे कैसे विवाह किया। प्रेमचन्द की यह दृढ़ धारणा थी कि एक विधुर व्यक्ति को विधवा से ही विवाह करना चाहिए। अतएव उन्होंने स्वयं ही मुंशी देवीप्रसाद को उनकी विधवा कन्या से विवाह के लिए पत्र लिखा। यह एक बड़ा साहसपूर्ण कार्य था।

कम उम्र में ही प्रेमचन्द को परिवार के भरण-पोषण के दायित्व ने धनार्जन के लिए बाध्य किया। उन्होंने पिता की मृत्यु के दो वर्ष पश्चात् सन् १८९९ में चुनार के एक स्कूल में नौकरी प्रारम्भ की और सन् १९०० में सरकारी नौकरी में लग गये। वह बहराइच के सरकारी स्कूल में अध्यापक नियुक्त हुए। २१ सितम्बर से उन्होंने प्रतापगढ़ के जिला स्कूल में फर्स्ट एडीशनल मास्टर का कार्य सम्भाला। सन् १९१२ में प्रेमचन्द हमीरपुर जिले में शिक्षा विभाग के सब-डिप्टी इन्स्पेक्टर के पद पर नियुक्त हुए। सरकारी नौकरी का सिलसिला सन् १९२१ तक चला। उन्होंने गांधी जी के असहयोग आन्दोलन से प्रभावित होकर इस्तीफा दे दिया। इस्तीफा देने के समय उन्हें १२५ रुपया प्रति मास वेतन मिलता था। उन्होंने अपनी पेंशन का अधिकार भी खो दिया। सरकारी नौकरी की यह बीस वर्ष की अवधि वस्तुतः प्रेमचन्द के साहित्यिक जीवन की प्रगति में बाधक सिद्ध हुई। नौकरी से पृथक होने के पश्चात् प्रेमचन्द ने मनोयोगपूर्वक साहित्यिक सेवा आरम्भ की। सरकारी नौकरी करने के पूर्व प्रेमचन्द ने केवल एक उपन्यास 'असरार ए मआबिद' लिखा था। १९०१ में उन्होंने 'प्रताप चन्द्र' समाप्त किया था, पर वह प्रकाशित न हो सका। नौकरी करते हुए उन्होंने तीन उपन्यास लिखे। इस समय का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास 'सेवासदन' है।

सन् १९२३ में प्रेमचन्द ने आर्थिक संकटों का सामना करते हुए सरस्वती प्रेस की स्थापना की। उन्होंने अपनी सारी जमा-पूंजी इस प्रेस में लगा दी, पर इसके बावजूद उन्हें इसमें घाटा ही सहना पड़ा। १९३० में 'हंस' और १९३३ में 'जागरण' का सम्पादन प्रारम्भ किया। असहयोग आन्दोलन में श्री

---

१. डॉ० इन्द्रनाथ मदान को लिखा हुआ प्रेमचन्द का पत्र, दिनांक ७ सितम्बर, १९३५।

सम्पूर्णानन्द के जेल जाने पर प्रेमचन्द ने 'मर्यादा' के सम्पादन का भी कार्य सम्भाला । इसी समय उन्होंने स्कूली बच्चों के लिए बहुत-सी पुस्तकें लिखीं तथा बहुत-सी पुस्तकों का अनुवाद और संक्षिप्तीकरण हिन्दी में किया । इनमें से कुछ हैं गाल्स्वर्दी की 'सिल्वर बाक्स', 'स्ट्राइफ' और 'जस्टिस', सरशार का 'फ़िसाना ए आज़ाद' तथा टाल्स्टाय की कहानियाँ आदि ।

बम्बई की अजन्ता सिनेटोन कम्पनी ने उन्हें ठेके पर अपनी फिल्मों की पट-कथाएँ लिखने को बुलाया, परन्तु यहाँ का जीवन उनको ज़रा भी अच्छा न लगा । सन् १९३०-३२ के आसपास महालक्ष्मी सिनेटोन लि० ने उनके 'सेवा सदन' (बाज़ारे हुस्न) की फिल्म बनाई, परन्तु यह फिल्म पूर्ण रूप से असफल सिद्ध हुई । कलम का बादशाह फिल्मी जीवन से समझौता न कर पाया । इसी समय उन्होंने अपने मित्र श्री जैनेन्द्र को लिखा—"लेखक कलम का बादशाह क्यों न हो, यहाँ डायरेक्टर की अमलदारी है, उसके राज्य में उसकी हुकूमत नहीं चल सकती । हमने व्यवसाय खोला है, धन कमाना हमारी गरज़ है । जो चीज़ जनता माँगेगी, वह हम देंगे । इसका जवाब यही है—अच्छा साहब, हमारा सलाम लीजिए । हम घर जाते हैं । वही मैं कर रहा हूँ । मैं और कुछ कर सकता हूँ, चाहे वह बेगार ही क्यों न हो, इसलिए चला जा रहा हूँ । मैं जो प्लाट सोचता हूँ उसमें आदर्शवाद घुस आता है और कहा जाता है उसमें एण्टर-टेनमेन्ट वैल्यू नहीं होती । इसे मैं स्वीकार करता हूँ ।"[1]

प्रेमचन्द ने जीवन में कभी भी उन परिस्थितियों से समझौता नहीं किया जिनके कारण वह अपनी साहित्य सेवा में पूरी तरह ईमानदार न रह पाते । सरकारी नौकरी का बन्धन उन्होंने तोड़ दिया । फिल्मी जीवन में भी उन्हें खोखलापन मिला । अलवर के महाराज ने जब उन्हें अपने यहाँ एक पद पर रखना चाहा तो उन्होंने अपनी असमर्थता प्रकट की । ४०० रुपये की नौकरी मोटर-बंगले के सहित भी उन्हें अपने पथ से विचलित न कर सकी । उन्होंने सोचा कि रियासत की नौकरी उनकी स्वाधीनता में बाधक बन जाएगी । उन्हें यह गवारा न था कि अपनी जनता की सेवा का आदर्श इस नौकरी के कारण छोड़ना पड़े । जब संयुक्त प्रान्त के गवर्नर ने प्रेमचन्द को 'राय साहब' की पदवी देने की इच्छा प्रकट की तो प्रेमचन्द का दो टूक जवाब था, यदि जनता मुझे राय साहब की पदवी दे तो मुझे सहर्ष स्वीकार है परन्तु सरकार द्वारा दी गयी

---

१. कलम का सिपाही, लेखक अमृतराय;

पदवी की मुझे तनिक भी इच्छा नहीं है ।[1] प्रेमचन्द के कुछ मित्र और प्रसंशक उन्हें कौंसिल के चुनाव में खड़ा करना चाहते थे, पर प्रेमचन्द ने कहा मेरा काम कौंसिल में जाने का नहीं, बल्कि वहाँ जाने वालों की समालोचना करने का है ।

सन् १९३६ में कुछ नौजवान लेखकों, जैसे मुल्कराज आनन्द और सज्जाद ज़हीर ने मिलकर लंदन में भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना की । प्रेमचन्द ने उसका स्वागत करते हुए जनवरी १९३६ में लिखा—"हमें यह जानकर सच्चा आनन्द हुआ कि हमारे सुशिक्षित और विचारशील युवकों में भी साहित्य में एक नई स्फूर्ति और जागृति लाने की धुन पैदा हो गयी है । लंदन में 'दि इंडियन प्रोग्रेसिव राइटर्स असोसिएशन' की इसी उद्देश्य से नींव डाली गयी है और उसने जो अपना मैनिफेस्टो भेजा है, उसे देखकर यह आशा होती है कि अगर यह सभा अपने इस नये मार्ग पर जमी रही तो साहित्य में नवयुग का उदय होगा ।"[2] इसी वर्ष कांग्रेस अधिवेशन के अवसर पर प्रगतिशील लेखक सम्मेलन करने का प्रस्ताव रखा गया और उसका सभापतित्व करने का अवसर भी मुंशी जी को प्राप्त हुआ । उन्होंने अपने व्याख्यान में साहित्य के सत्यम्-शिवम् और सुन्दरम् तत्व की सुन्दर व्याख्या की थी ।

जीवन के अन्तिम दिनों में प्रेमचन्द जलोदर से पीड़ित रहे । उन्हें लगातार खून के दस्त आते थे । ८ अक्तूबर, १९३६ को उन्होंने पुण्य भूमि काशी में अपनी इहलीला सदैव के लिए समाप्त कर दी ।

□□

---

१. प्रेमचन्द घर में, श्रीमती शिवरानी देवी, पृ० १६१;

२. कलम का सिपाही, पृ० ६०७-६०८;

२ | प्रभात

प्रभाव

□

प्रेमचन्द के व्यक्तित्व पर पड़े हुए प्रभावों का सही-सही मूल्यांकन एवं विश्लेषण कर सकना कठिन है। प्रभाव प्राय: विलक्षण और बड़े उलझे हुए रूप में काम करते हैं। अतएव इस सम्बन्ध में जो भी प्रयास किया जाय, उसे क्रमबद्ध होना चाहिए, अन्यथा अध्ययन से कोई लाभ नहीं होगा। लेखक को पग-पग पर अपने को बचाए रखना पड़ता है, प्रमाण के लिए उसे लिखित प्रमाण उपस्थित करने पड़ते हैं। एक साहित्यिक व्यक्ति के ऊपर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करने के लिए बहुत सावधानी से अनुसन्धान करने की आवश्यकता होती है। एक ओर वाह्य प्रभाव तथा दूसरी ओर लेखक के मस्तिष्क की आन्तरिक क्रियाशीलता में गहरी समानता ही प्रत्येक प्रकार की मनोवैज्ञानिक जाँच का मुख्य आधार है। वास्तविकता यह है कि साहित्यिक व्यक्ति के रूप में प्रेमचन्द के व्यक्तित्व निर्माण में ये वाह्य प्रभाव बहुत काम करते हैं। इस समय जिन प्रभावों की हम व्याख्या करेंगे प्राय: उनके संकेत प्रेमचन्द की कृतियों में ही मिल जाते हैं।

एक दूसरी असुविधा, जो एक लेखक को होती है वह, यह है कि प्रभावों का अध्ययन तिथि क्रम से नहीं किया जा सकता, जबकि प्रभावों का क्रमबद्ध अध्ययन स्वयं एक अत्यन्त कठिन कार्य है। यहाँ पर हमारा प्रयास प्रेमचन्द पर पड़े हुए विदेशी लेखकों और धार्मिक तथा सामाजिक आन्दोलनों के विभिन्न प्रभावों का उद्घाटन करना होगा।

प्रेमचन्द उस समय उत्पन्न हुए थे जब भारत में एक महान् परिवर्तन हो रहा था। वे उस समय पैदा हुए थे जब हमारा देश कुछ प्रगतिशील और कुछ प्रतिक्रियावादी प्रभावों में जकड़ा हुआ था। उनका जीवनकाल भारत के इतिहास में एक राजनीतिक क्रांति और सामाजिक तथा धार्मिक उथल-पुथल का युग था। इसका प्रभाव उन पर निश्चय ही पड़ा। 'साहित्यकार बहुधा अपने देश-काल से प्रभावित होता है। जब कोई लहर देश में उठती है, तो साहित्यकार के लिए उससे अविचलित रहना असंभव हो जाता है और उसकी विशाल आत्मा अपने देश-बंधुओं के कष्टों से विकल हो उठती है एवं इस तीव्र विकलता में वह रो

उठती है, पर उसके रुदन में भी व्यापकता होती है। वह स्वदेश का होकर भी सार्वभौमिक रहता है।'[1]

एक अर्थ में लगभग प्रत्येक महान् लेखक उन शक्तियों की ही देन है जो समाज में काम करती हैं, प्रेमचन्द भी उसके अपवाद नहीं हैं। उन्होंने उन सभी शक्तियों को ग्रहण किया, किन्तु साथ ही, उन्होंने अपनी कल्पना शक्ति, अपने शिल्प कौशल और अपनी प्रगतिशीलता के प्रदर्शन में सदा ही अपने व्यक्तित्व पर अधिक बल दिया है। उस युग के समाज को शासित करने वाली लगभग सभी शक्तियाँ, धारायें अथवा प्रवृत्तियाँ उनकी कृतियों एवं उनके व्यक्तित्व में पाई जाती हैं। परन्तु इस प्रकार का अध्ययन बहुत ही व्यापक और विस्तृत होगा, अतएव केवल उन्हीं प्रभावों की चर्चा यहाँ विस्तारपूर्वक की गई है, जिनके प्रति प्रेमचन्द स्वयं जागरूक थे अथवा जो स्वयं ही उनकी कृतियों में उद्घाटित हो गए हैं। इसके अतिरिक्त, कलाकार प्रेमचन्द ने सामाजिक और राजनीतिक विषयों में अपना एक विशेष मत व्यक्त किया है। इस प्रकार अनुसंधान का यह क्षेत्र अधिक विशिष्ट और सुस्पष्ट हो जाता है।

पूर्व आध्यात्मिकता का आगार रहा है, जबकि पश्चिम सदा ही भौतिकता का सेनानी रहा है। भारत ने भौतिकता के विरुद्ध आध्यात्मिकता की प्रतिष्ठा का सदैव नेतृत्व किया है, जिसके कारण विवेकशील जगत आज भी भारत के प्रति विशेष रुचि रखता है। पुरातन युग से ही भारत आध्यात्मिकता का उपदेश देता रहा है। यहाँ तक कि उसकी राजनीति और साहित्य में भी आध्यात्मिकता का ही रंग है। गांधी जी ने सत्य एवं अहिंसा के सिद्धांतों को प्रचलित कर राजनीति को भी अध्यात्ममय बना दिया। टैगोर ने भी अपने मानवतावादी दृष्टिकोण में पूर्व और पश्चिम के विरोधी मतों के समन्वय का प्रयास किया है। मानव जाति एक है और सब भाई-भाई हैं।

प्रेमचन्द पर अधिक महत्वपूर्ण प्रभावों में आर्यसमाज के आन्दोलन का प्रभाव विशेष ज्ञात होता है। आर्य समाज आन्दोलन हिन्दू सुधारवादी आन्दोलन है जिसको स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सन् १८७५ में प्रारम्भ किया था। इस आन्दोलन का लक्ष्य हिन्दू धर्म का सुधार करना और उसके उस प्राचीन रूप की पुनर्प्रतिष्ठा करना था जो उत्तरकालीन व्यर्थाडम्बरों से मुक्त हो। वेदों की पुनर्प्रतिष्ठा ही उनके उपदेशों का मूल उद्देश्य था। उनका विचार था कि वेद

---

१. हंस, अप्रैल १९३२, पृ० ४०;

अद्वैतवाद की शिक्षा देते हैं । उन्होंने मूर्तिपूजा का खंडन किया है । उन्होंने गाय की पवित्रता की भी घोषणा की जो वैदिक सिद्धान्त नहीं है । उन्होंने घोषित किया कि जाति जन्म पर नहीं वरन् कर्म पर आधारित है और कोई भी व्यक्ति, जो वेदों का अध्ययन करता है और उनके उपदेशों के अनुसार चलता है, ब्राह्मण हो सकता है । यह एक ऐसा मत है जो उत्तरी भारत के निम्न वर्गों में अधिक प्रचलित हुआ । इनकी पूजा का अर्थ है मूर्तिपूजा और पुजारी-महन्तों की स्थिति की शून्यता ।[1] दयानन्द के मुख्य उपदेशों का सार निम्नलिखित है :

क. ईश्वर केवल एक है । केवल उसकी ही उपासना करनी चाहिए और उसकी उपासना आध्यात्मिक रूप से करनी चाहिए मूर्ति पूजा के रूप में नहीं ।

ख. चारों वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं ।

ग. वेद पुनर्जन्म और कर्म (सिद्धान्त) की शिक्षा देते हैं ।

घ. पुनर्जन्म से छुटकारा मिलना ही मोक्ष है ।[2]

इन सिद्धान्तों के द्वारा आर्य समाज ने हिन्दू धर्म में विद्यमान दोषों और धार्मिक अन्ध विश्वासों से युद्ध किया । इसी प्रकार ब्रह्म समाज ने बहुदेववाद, मूर्तिपूजा और बहुपत्नीवाद के विरुद्ध भी मोर्चा लिया था । यथार्थ में, जैसी कि आशा की जाती थी, आर्य समाज में भी दो मत हो गए, प्रथम वे लोग थे जो गुरुकुल मत के मानने वाले थे और ब्रह्मचर्य के वैदिक आदर्शों और धार्मिक सेवा का प्रचार करते थे, दूसरे ऐसे लोग थे जो आधुनिक प्रकार की शिक्षा संस्थाओं के माध्यम से आवश्यकतानुसार आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता के प्रचार द्वारा समाज का परिष्कार करना चाहते थे । शहीद स्वामी श्रद्धानन्द और नेता लाला लाजपतराय क्रमशः इन दोनों मतों के प्रसिद्ध प्रचारक थे ।

आर्य समाज आन्दोलन अध्ययन का एक विस्तृत विषय है । परन्तु प्रेमचन्द का अध्ययन करते समय हमें केवल यह देखना है कि इस आन्दोलन से वे कहाँ तक प्रभावित रहे हैं । इसलिए हमने यहाँ पर केवल उसकी प्रकृति, उसके मुख्य धार्मिक विषय और आर्य समाज मत की दोनों शाखाओं की ही संक्षिप्त चर्चा की है ।

प्रेमचन्द आर्य समाज मत से प्रभावित थे इससे कोई असहमत नहीं हो सकता । प्रेमचन्द ने स्वयं कहा है कि, "मैं तो आर्य समाज को जितनी धार्मिक

---

१. पापुलर हिन्दुइज्म, ले० ओ० माले, पृ० २२६;

२. माडर्न रिलीजस मूवमेंट्स् इन इंडिया, ले० फर्कुहर;

संस्था समझता हूँ उतनी ही तहजीबी (सांस्कृतिक) संस्था भी मानता हूँ। कौमी जिन्दगी की समस्याओं को हल करने में उसने जिस दूरदर्शिता का सबूत दिया है, उस पर हम गर्व कर सकते हैं। हरिजनों के उद्धार में सबसे पहले आर्य समाज ने कदम उठाया। लड़कियों की शिक्षा की जरूरत को सबसे पहले उसने समझा। वर्ण-व्यवस्था को जन्मगत न मानकर कर्मगत सिद्ध करने का सेहरा उसके सिर है। जातीय भेद-भाव और खान-पान के छूत-छात और चौके-चूल्हे की बाधाओं को मिटाने का गौरव उसी को प्राप्त है। यह ठीक है कि ब्रह्म-समाज ने इस दिशा में पहले पदार्पण किया पर वह थोड़े-से अंग्रेजी पढ़े-लिखों तक ही सीमित रहा। इन विचारों को जनता तक पहुँचाने का बीड़ा आर्य समाज ने ही उठाया। अन्धविश्वास और धर्म के नाम पर किये जाने वाले हजारों अनाचारों की कब्र उसने ही खोदी, यद्यपि मुर्दे को उसमें दफ़न न कर सका और अभी तक उसकी विषैली दुर्गन्ध उड़-उड़कर समाज को दूषित कर रही है। समाज के मानसिक और बौद्धिक धरातल को आर्य समाज ने जितना उठाया है, शायद ही भारत की किसी अन्य संस्था ने उठाया हो।"[1] इस सम्बन्ध में उनकी पत्नी का कथन है कि प्रेमचन्द स्वामी दयानन्द से प्रभावित थे, लेकिन चूँकि शहीद स्वामी श्रद्धानन्द और नेता लाला लाजपत राय हमारे सामने इन दोनों मतों के प्रसिद्ध व्याख्याता के रूप में आते हैं, अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्रेमचन्द लाला लाजपत राय के मतानुयायी थे।

आर्य समाज आन्दोलन का प्रभाव उनकी कृतियों पर भी देखा जा सकता है। प्रेमचन्द ने कायाकल्प (पर्दए-मजाज) नाम से एक उपन्यास लिखा था। इस उपन्यास का नायक चक्रधर है। आर्य समाज के मूल तत्वों को ध्यान में रखते हुए कोई भी सरलता से यह देख सकता है कि प्रेमचन्द ने चक्रधर में एक आर्य समाजी नेता का चरित्र चित्रित किया है। चक्रधर एक विद्वान व्यक्ति है। वह सदा ही हिन्दू मुस्लिम एकता का पक्ष लेता है। वह गोवध के विरुद्ध उपदेश देता है, उसका प्रधान तर्क यह है कि एक पशु के लिए कम से कम मनुष्य का रक्त न बहाया जाना चाहिए।

चक्रधर एक ऐसी कन्या से विवाह कर लेता है जो मेले में खो गई थी। वह उसके माता-पिता के विषय में और यहाँ तक कि उसके विषय में भी कुछ नहीं जानता था। यह विवाह उसके पिता की अनुमति के बिना ही हो गया

---

१. साहित्य का उद्देश्य, प्रेमचन्द, पृ० १८६-८७;

था। कम से कम हिन्दुओं में, किसी आर्य समाजी को छोड़कर, बहुत कम लोग ऐसे होंगे जो इन परिस्थितियों में विवाह करें। यहाँ तक कि उनकी कुछ कहानियों और उपन्यासों में भी आर्य समाज का प्रभाव ढूँढ़ा जा सकता है, यद्यपि वह इतना स्पष्ट नहीं है, उदाहरणार्थ रंगभूमि (चौगाने हस्ती) की नायिका मिस सोफिया का चरित्र। मिस सोफिया एक ईसाई परिवार में उत्पन्न हुई थी, परन्तु वह अपनी माँ और पितामह के कट्टरपन्थी धर्म से घृणा करती है। उसका विश्वास था कि धर्म केवल कर्मकांडों और धार्मिक विधि-विधानों तक ही सीमित है। दूसरी ओर वह ऐसे विचार-दर्शनों पर विश्वास करती है जो आर्य समाज के मत से समता रखते हैं। परन्तु फिर भी निश्चयपूर्वक इस पर बल नहीं दिया जा सकता कि वह आर्य समाज मत में दीक्षित हो चुकी थी। इस प्रकार के और भी बहुत से चरित्र उनकी कृतियों में मिलते हैं।

आर्य समाजियों के एक वर्ग ने एक आन्दोलन चलाया था जिसे शुद्धि आन्दोलन कहते थे। स्वाभाविक रूप से यह बड़ा कट्टरपन्थी आन्दोलन था और उस समय की हिन्दू-मुस्लिम तनातनी के फलस्वरूप ही इसका जन्म हुआ था। यद्यपि आर्य समाजियों ने ख्वाजा हसन निज़ामी और उनके साथियों द्वारा चलाए हुए मुसलमानों के 'तबलीग' आन्दोलन के प्रतिउत्तर के रूप में इस आन्दोलन को प्रारम्भ किया था तथापि इसे उस समय के उदार बुद्धि व्यक्ति पसन्द नहीं करते थे। उन्होंने कहा भी था—"मुझे इस तहरीक से सख्त इख्तलाफ़ है।"[1]

दिसम्बर, १९१० में इलाहाबाद में होने वाली नेशनल (राष्ट्रीय) कान्फ्रेंस के कार्यक्रम में निर्धारित सिफारिशों में हम प्रेमचन्द के दृष्टिकोण का एक पूर्ण चित्र पाते हैं। प्रेमचन्द के दृष्टिकोण का इससे अधिक पूर्ण और सही चित्र हमें अन्यत्र कहीं नहीं मिलता।

'नेशनल सोशल कान्फ्रेंस' का संगठन और उसका सर्वप्रथम अधिवेशन सन् १८८८ में मद्रास में हुआ था। इसके वास्तविक नेता श्री एम० जी० रानाडे थे जो बड़े संकोचशील थे और जहाँ तक सम्भव होता था सामने न आकर पृष्ठभूमि में ही रहते थे। सर टी० माधवराव ने पहली कान्फ्रेंस का सभापतित्व किया और उसके बाद इन्दौर राज्य के भूतपूर्व प्रधानमन्त्री एवं मद्रास प्रेसीडेंसी के एक हिन्दू रायबहादुर रघुनाथ राव ने महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण

---

१. प्रेमचन्द और गोर्की, ले० शची रानी गुर्टू, पृ० २६;

किया । ये रानाडे से अवस्था में बड़े थे ।[1]

ऐसा प्रतीत होता है कि दिसम्बर १६१० में इलाहाबाद की कान्फ्रेंस में प्रेमचन्द ने भी भाग लिया था । कान्फ्रेंस के कुछ मुख्य ध्येय और लक्ष्य निम्न-लिखित हैं :

१. स्त्रियों की शिक्षा की उन्नति की जाय ।
२. यह कान्फ्रेंस बहुत बल देकर इस बात की सिफारिश करती है कि माता-पिताओं को इस बात से सहमत कराने का प्रत्येक सम्भव प्रयत्न किया जाय कि वे अपने पुत्रों का विवाह २५ वर्ष और पुत्रियों का विवाह १६ वर्ष की अवस्था से पूर्व न करें ।
३. इस कान्फ्रेंस का यह मत है कि अब समय आ गया है कि पर्दा प्रथा को समाप्त करने का कदम उठाया जाना चाहिए ।
४. दलित वर्गों की नैतिक, भौतिक और सामाजिक अवस्था को ऊँचा उठाया जाय ।
५. नवयुवती विधवाओं की दयनीय स्थिति का सुधार हो । प्रत्येक प्रान्त में नये विधवाश्रम खोल कर अथवा उनकी स्थिति दृढ़ करके, विधवाओं को औद्योगिक शिक्षा देकर और जो पुर्नविवाह करना चाहती हैं उन्हें बेरोक-टोक ऐसा करने की सामाजिक अनुमति होनी चाहिए ।
६. विदेशी भारतीयों के पुनर्प्रवेश पर लगे हुए सभी प्रतिबन्ध हटा दिए जायें ।[2]

कान्फ्रेंस की यह सिफारिशें फ़र्कुहर की पुस्तक से उद्धृत की गई हैं, जो भारत के आधुनिक धार्मिक आन्दोलनों के सम्वन्ध में एक मान्य अधिकारी लेखक माना जाता है । निस्सन्देह उसने इन सिफारिशों की एक लम्बी सूची दी है परन्तु यहाँ केवल वही उद्धृत की गई हैं जिनका सम्बन्ध प्रेमचन्द से है । इन सिफारिशों पर एक दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि मुंशी प्रेमचन्द ने प्रगतिशील विचारों वाले व्यक्ति के रूप में बहुत ही उत्साहपूर्वक इन सिफारिशों में योग दिया । प्रेमचन्द की कृतियों में इन सिफारिशों में से प्रत्येक की पुष्टि पाना सम्भवतः वहुत रुचिकर न होगा । इतना कहना ही पर्याप्त है कि ये सिफा-रिशें ही प्रेमचन्द के उपन्यासों और कहानियों के विषय अथवा मूल प्रयोजन का निर्माण करती हैं ।

---

१. **मार्डन रिलीजस मूवमेंटस् इन इन्डिया, फर्कुहर;**
२. **वही;**

अन्त में, जिन दूसरे धार्मिक ग्रंथों ने प्रेमचन्द के विचारों को यथार्थ में प्रभावित किया, वे हैं पवित्र कुरान और श्रीमद्भगवद्गीता । ये प्रभाव आत्मा अथवा परमात्मा से सम्बन्धित दार्शनिक विचारों के रूप में नहीं हैं, वरन् वास्तव में उन्होंने इन ग्रंथों से कुछ विशेष सिद्धांत, आदर्श और गुण ग्रहण किए । इन ग्रंथों का ध्येय मनुष्य के विचारों को प्रकाश की ओर ले जाना, मनोभावनात्मक एकीकरण को अधिक व्यवस्थित करना और अन्त में इस प्रयास में है कि एक व्यक्ति के पास जो भी सर्वश्रेष्ठ है उसे भी वह दूसरों को प्रदान करे । उन्होंने कुरान शरीफ भी पढ़ा था । वह पवित्र कुरान की शिक्षाओं से इतना अधिक प्रभावित थे कि उन्होंने अल-फतिहा और कुल-हो अल्लाह नाम के दो सुराह कंठस्थ कर लिये थे ।[1]

कुरान शरीफ के अतिरिक्त वह कर्बला की दुःखद घटना से भी प्रभावित ज्ञात होते हैं, जो मुसलमानों के अनुसार बलिदान और सत्य का प्रतीक है । इस बलिदान का महत्व प्रदर्शित करने के लिए प्रेमचन्द ने केवल एक नाटक ही नहीं लिखा वरन् इस विषय पर उन्होंने कुछ लेख भी लिखे हैं । इसके अतिरिक्त उनकी निस्वार्थ त्याग और बलिदान की भावना उनकी समस्त कृतियों में विद्यमान है ।

जहाँ तक हिन्दू धार्मिक ग्रंथों का सम्बन्ध है, उनके विचारों में श्रीमद्भगवद्-गीता के कुछ श्लोकों का गहरा, परन्तु स्पष्ट, प्रभाव परिलक्षित होता है । प्रेमचन्द का जीवन आत्मसंयम का जीवन था । नीचे उद्धृत पत्र में उन्होंने वही उपदेश दिया है जो गीता के इन श्लोकों में निहित है :—

> **सुख दुःखे समेकृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ।**
> **ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापम्वाप्स्यसि ।।२, ३८।।**
> **ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते ।**
> **आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ।।५, २२।।**

'ज़माना' के सम्पादक मुंशी दयानारायण निगम के पुत्र की मृत्यु पर जो संवेदना का पत्र प्रेमचन्द ने उन्हें लिखा था उसकी तुलना उपरोक्त श्लोकों से करने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है :—

"संसार को रंगमंच अथवा क्रीड़ा स्थल के समान समझना चाहिए ।

---

१. जमाना (कानपुर) के प्रेमचन्द अंक (पृष्ठ २१२) में सैयद मकबूल हुसैन का लेख;

इस क्रीड़ा स्थल पर वही व्यक्ति प्रशंसा का पात्र है जो न तो जीतने पर प्रसन्न होता है और न हारने पर दुखी।"[1]

हमने श्रीमद्भगवद्गीता का उल्लेख किया है क्योंकि रंगभूमि (चौगाने हस्ती) में उपन्यासकार ने ईसा मसीह और भगवान् कृष्ण की तुलना की है। गोशाए आफ़ियत (प्रेमाश्रम) में गीता का भाव सर्वोपरि है क्योंकि उसमें गायत्री और ज्ञानशंकर जैसे चरित्र हैं। ज्ञानशंकर भी भगवान कृष्ण का भक्त बन जाता है।

संक्षेप में, प्रेमचन्द के विचारों के निर्माण में महत्वपूर्ण अंग धार्मिक प्रभाव है। अन्य धार्मिक प्रभाव हैं, ब्रह्म समाज और सनातन धर्म। ब्रह्म समाज विशेष रूप से बंगाल के हिन्दू समाज के पुनर्निर्माण में एक बहुत शक्तिशाली धार्मिक आन्दोलन रहा है। वह पूर्व के अध्यात्मपरक जीवन मार्ग के साथ योरोप की आधुनिक संस्कृति के समन्वय का प्रयास था। ब्रह्म समाज सम्प्रदाय से प्रेमचन्द ने स्त्रियों से सम्बन्धित प्रगतिशील विचार ग्रहण किए। प्रेमचन्द की स्त्रियाँ भी पुरुषों के कंधे से कंधा मिलाकर संघर्ष पथ पर अग्रसर होती हैं, कहीं-कहीं तो वे पुरुषों से आगे बढ़कर उनका पथ-प्रदर्शन और नेतृत्व भी करती हैं। ...... यह एक विशेष रूप से उल्लेखनीय तथ्य है कि प्रेमचन्द के पुरुष पात्रों की अपेक्षा उनके स्त्री पात्रों में असन्तोष और संघर्ष की भावना अधिक प्रबुद्ध है। सुमित्रा से लेकर धनिया तक प्रेमचन्द के सभी नारी पात्रों में एक अपूर्व सामाजिक साहस और राष्ट्रीय चेतना का क्रमिक विकास मिलता है।[2]

प्रेमचन्द को प्रभावित करने वाले देश के विभिन्न धार्मिक आन्दोलनों की चर्चा करने के बाद हम उस युग के सामाजिक जीवन को निर्मित करने वाले राजनीतिक आन्दोलनों की चर्चा पर आते हैं।

प्रेमचन्द सन् १८८१ में अर्थात् भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के जन्म के चार वर्ष पूर्व पैदा हुए थे। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना सन् १८८५ में एलन ओक्टावियन ह्यूम द्वारा हुई। प्रेमचन्द और कांग्रेस दोनों ही लगभग साथ-साथ बढ़े। दोनों की यौवनावस्था के पूर्व ही दोनों में एक दूसरे के प्रति

---

१. **जमाना (कानपुर, प्रेमचन्द अंक), पृ० ६७, दयानारायण निगम को लिखा हुआ प्रेमचन्द का पत्र।**

२. **प्रेमचन्द और गांधीवाद, लेखक श्री रामदीन गुप्त, पृष्ठ १३७।**

घनिष्टता बढ़नी प्रारम्भ हो गई । यद्यपि प्रारम्भ में, ऐसा नहीं प्रतीत होता कि वे कांग्रेस के नियमित सदस्य थे, फिर भी, उनकी कहानियाँ कांग्रेस के ध्येय के प्रति सहानुभूति से पूर्ण थीं । ऐसा सम्भव है कि राजनीतिक क्रियाकलापों में वे खुले रूप से भाग न ले सके हों क्योंकि उनका सम्बन्ध सरकारी नौकरी से था, परन्तु हमें उनकी कृतियों अथवा कार्यों और कथनों में ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता जिसे राष्ट्र अथवा कांग्रेस विरोधी कहा जा सके । प्रेमचन्द कहते हैं, "मेरा सम्बन्ध किसी पार्टी से नहीं है ।"[1] परन्तु 'ज़माना' के सम्पादक कहते हैं, "अन्त में सरकारी नौकरी छोड़ने के बाद वे सरकार के एक नियमित असह-योगी बन गए ।"[2] अतः ऊपर उद्धृत पत्र के अनुसार यह स्पष्ट है कि प्रेमचन्द किसी पार्टी के सदस्य नहीं थे, परन्तु सरकारी नौकरी छोड़ने के बाद वे कांग्रेस संगठन में प्रविष्ट हुए । अब वे उससे केवल सहानुभूति रखने वाले ही नहीं थे ।

धीरे-धीरे वे विभिन्न महान् शक्तियाँ जो कांग्रेस में संयुक्त हो चुकी थीं एक दूसरे के प्रति घोर विरोधी बन गईं । सन् १९०७ में कांग्रेस में फूट पड़ने के पहले कांग्रेस दो मिली-जुली शक्तियों, यथा नरम दल वालों और राष्ट्रीय दल वालों, का शिविर था ।[3] कुछ विध्वंसकारी कारणों ने सामाजिक और धार्मिक प्रत्याभिगमन का मार्ग खोल दिया । इसका परिणाम यह हुआ कि सूरत में होने वाली कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठक में फूट पड़ गई । एक दल का नेतृत्व तिलक और उनके साथियों ने किया और दूसरा दल गोखले और उनके अनुयाइयों का था । ये दल क्रमशः राष्ट्रीय और नरम दल का प्रतिनिधित्व करते थे, जो गरम दल और नरम दल के नाम से जनता में प्रसिद्ध थे । इक्स्ट्रीमिस्ट अथवा गरम दल शब्द का व्यवहार आधुनिक प्रयोग में करना ठीक नहीं, क्योंकि पं० जवाहर लाल नेहरू अपनी आत्मकथा में लिखते हैं, "सामाजिक रूप से यदि कहा जाय तो १९०७ में भारतीय राष्ट्रीयता का पुनर्स्थापन निश्चय ही प्रतिक्रियावादी था ।"[4] उस युग में महत्व प्राप्त करने वाली ऐतिहासिक शक्तियों के विवाद में पड़ने की हमें कोई आवश्यकता नहीं, परन्तु विचार करने से इतना निष्कर्ष अवश्य निकाल सकते हैं कि मुंशी प्रेमचन्द की सम्पूर्ण

---

१. प्रेमचन्द का दिनांक १७ फरवरी, १९२३ का पत्र, 'जमाना' (प्रेमचन्द अंक), पृ० १०२ ।

२. वही, पृ० १०३ ।

३. हिस्ट्री आफ इंडियन नेशनल कांग्रेस, पट्टाभिसीतारमैया ।

४. आत्मकथा, पं० जवाहर लाल नेहरू ।

सहानुभूति तिलक दल के साथ थी । मदनगोपाल भी कहते हैं कि "स्वभाव से वे (प्रेमचन्द) राष्ट्रीय कांग्रेस के गरम दल के अनुयायी थे ।" यह वाक्य हमें पं० जवाहर लाल नेहरू के अपने पिता पं० मोतीलाल नेहरू के प्रति कहे हुए एक वाक्य का स्मरण दिलाता है, "वे एक सशक्त विचारों वाले, प्रबल अभिलाषाओं वाले, अत्यधिक स्वाभिमानी और महान् इच्छा शक्ति वाले व्यक्ति थे, वे नरम ढंग से बहुत दूर थे ।" अपने इस स्वभाव के बावजूद भी पं० मोतीलाल नेहरू ने १६०२ में नरम दल वालों का समर्थन किया, जब कि प्रेमचन्द ने "नरम दल वाले गोखले को नहीं वरन् गरम दल वाले तिलक के पक्ष में ही मत दिया ।"[१] जो उनके स्वभाव के अनुकूल था

प्रेमचन्द और तिलक के राजनीतिक विचारों में एक महत्वपूर्ण मतभेद भी था । उस भेद को भी जान लेना चाहिए । प्रेमचन्द तिलक द्वारा चलाए गए दो आन्दोलनों के घोर विरोधी थे, प्रथम था 'एज आफ कन्सेंट बिल' के विरुद्ध चलाया हुआ आन्दोलन और द्वितीय था गोरक्षा समाज के पक्ष में चलाया हुआ आन्दोलन । केवल इसी स्थिति में प्रेमचन्द को पूर्ण रूप से समझा जा सकता है । तिलक से उपरोक्त दोनों बातें निकाल देने का अर्थ आधुनिक आशय में होता है गरम दल का समर्थक व्यक्ति । प्रेमचन्द के ऐसे ही विचार थे ।

इस विषय का अधिक विस्तृत अध्ययन करने के लिए और उसका पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए कि कौन-कौन-सी राजनीतिक शक्तियाँ प्रेमचन्द ने ग्रहण कीं, हम तिलक के घोषणा पत्र का उल्लेख करते हैं । इस घोषणा पत्र पर एक दृष्टिपात कर लेना यहाँ परमावश्यक है, क्योंकि प्रेमचन्द को इसमें अनेकानेक विषयों से सम्बन्ध रखने वाला एक रचनात्मक कार्यक्रम मिला ।

यह घोषणा पत्र दो शीर्षकों में विभक्त किया गया है और काफी लम्बा है, अतएव यहाँ पर केवल उन्हीं बातों का उल्लेख किया गया है जिन्होंने सम्भवत: प्रेमचन्द को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया है ।

'साम्राज्य' शीर्षक के अन्तर्गत निम्नलिखित धाराएँ आती हैं :

२ । श्रमिक, कृषक और उद्योगी वर्गों के लिए उनके श्रम फल के एक उचित भाग की सुरक्षा; एक निम्नतम वेतन, पूँजी और श्रम का समान आधार पर सम्बन्ध और इस कार्य के लिए उपयुक्त संगठनों को बढ़ावा देना ।

५ । रेलों का राष्ट्रीयकरण और विधान निर्माण द्वारा रेलवे चुँगी को

---

१. प्रेमचन्द, ले० मदनगोपाल ;

नियमित करना जिससे औद्योगिक विकास को सहायता मिले और उनकी कार्य प्रणाली में विद्यमान सुविधाएँ देने और पक्षपात करने की भावना का उन्मूलन हो ।

९ । राष्ट्रीय एकता को ऐसे साधनों द्वारा बढ़ावा देना, जैसे सम्पूर्ण भारत के लिए एक राष्ट्रभाषा की स्थापना और विभिन्न धार्मिक मतावलम्बियों, विशेषकर हिन्दू-मुसलमानों, के सम्बन्धों को सुधारना ।

१० । भाषा के आधार पर प्रान्तों का पुनर्गठन ।

'प्रान्तीय' शीर्षक के अन्तर्गत निम्नलिखित धारायें हैं :

४ । वेठ, बेगार और सर्वराई का पूर्ण रूप से निषेध ।

५ । देशभाषा के माध्यम से, जहाँ तक सम्भव हो सके, ऊँची शिक्षा दी जाय ।

७ । शासन और न्याय सम्बन्धी अधिकारों सहित गाँव पंचायतों की पुनर्स्थापना ।

यहाँ यह बताना आवश्यक है कि यही वे बातें हैं जिन्होंने प्रेमचन्द को इस प्रकार की समस्याओं से सम्बन्धित उपन्यास और कहानियाँ लिखने की प्रेरणा प्रदान की । प्रेमचन्द कभी भी एक महान् उपन्यासकार अथवा कहानी लेखक न हो पाते यदि वे इन विषयों को अपनी कृतियों का विषय न बनाते । उनकी शैली को देखकर यथार्थ में, यह कहा जा सकता है कि वे उपन्यासों और कहानियों के रोमांटिक लेखक के रूप में ही प्रसिद्ध होते, इससे अधिक नहीं, परन्तु उस युग में विद्यमान वस्तु-तथ्यों की गतिविधियाँ मुख्य रूप से एक विस्तृत और विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण से देखने के कारण ही आज उनका नाम स्थायी और अमर है । उनके विषयवस्तु के चयन ने उनके लिए भारतीय साहित्य के इतिहास अथवा भारतीय संस्कृति के इतिहास में एक सुनिश्चित एवं अमर स्थान सुरक्षित कर दिया है । संस्कृति के इतिहास में उनकी देन महान् है, क्योंकि शायद ही किसी लेखक की कृतियों में इस महान् उप-महाद्वीप (भारत) की ग्राम्य संस्कृति का इतना सच्चा और यथार्थ चित्रण हमें उपलब्ध हो जैसा कि प्रेमचन्द की कृतियों में मिलता है ।

प्रेमचन्द ने एक बार लिखा था कि वह क्रियाशील व्यक्ति नहीं हैं । उनका यह कथन सन्देहयुक्त है । वे एक कर्मण्य और कर्मठ पुरुष थे । वे तिलक के घोषणापत्र के सिद्धान्तों के केवल अनुयायी ही नहीं थे वरन् अपने भावों अथवा विचारों को यथार्थतः कार्य रूप में परिणत भी कर देते थे । इसका केवल यही

अर्थ नहीं है कि उन्होंने इन विषयों पर बहुत-सी कहानियाँ लिखीं अथवा कथानकों की रचना की वरन् जब भी सम्भव हुआ है वे वास्तविक रूप से कर्म संघर्षों में भी प्रविष्ट हुए। यदि कर्मशीलता अथवा कर्मठता से प्रेमचन्द का आशय ही देश के स्वातन्त्र्य संग्राम में कार्यरत सैनिक के रूप में भाग लेना होता तो निस्सन्देह प्रेमचन्द महात्मा गांधी अथवा पं० नेहरू की भाँति कर्मठ व्यक्ति नहीं थे। परन्तु यदि सिद्धान्त और कार्य की एकलयता को हम कर्मठ और क्रियाशील समझें तो हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि वे एक क्रियाशील व्यक्ति थे। अपनी कृतियों द्वारा संघर्ष में भाग लेने के अतिरिक्त उनका एक विधवा से विवाह करना, सरकारी नौकरी को ठुकरा देना तथा अन्त में असहयोग आन्दोलन में भाग लेना उनकी प्रगतिशीलता, क्रियाशीलता एवं कर्मठता के उदाहरण हैं। प्रायः सभी महापुरुष अपने मत एवं विचारों के प्रति पूर्णतया ईमानदार एवं सच्चे होते हैं। प्रेमचन्द इसके अपवाद नहीं थे। वे भी अपने दृष्टिकोण और विश्वास में बड़े ईमानदार थे। अपने विचारों को वे कार्य रूप में परिणत करने के लिए सदैव लालायित रहते थे।

महात्मा गांधी के आह्वान पर प्रेमचन्द ने सरकारी नौकरी ठुकरा दी जिस पर वे बीस वर्षों तक काम कर चुके थे। हमें यहाँ इस बात से कोई प्रयोजन नहीं कि उनका यह कार्य उचित था अथवा अनुचित परन्तु हमें तो मुख्य रूप से उन पर कार्य करने वाली शक्तियों के विश्लेषण से ही प्रयोजन है। इन शक्तियों का विश्लेषण करने के लिए उस युग का संक्षिप्त इतिहास दे देना अत्यावश्यक हो जाता है।

सन् १९०७ में नरम दल और राष्ट्रीय दल के जिस विरोध का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, वह आगे चलकर १९१६ में लखनऊ की कान्फ्रेंस में समाप्त हुआ। हिन्दुओं और मुसलमानों में हुए समझौते के कारण इस कान्फ्रेंस का विशेष महत्व है। दूसरी अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना, जिसका उल्लेख कांग्रेस के इतिहास में हुआ है, इस प्रकार है: "१९ जनवरी, १९१९ को रौलट रिपोर्ट प्रकाशित होने के बाद १६ फरवरी, १९१९ को सुप्रीम लेजिस्लेटिव कौंसिल में सर विलियम विन्सेंट द्वारा रौलट बिल प्रस्तुत किए गए। इनमें से दूसरा बिल तो गिर गया परन्तु मार्च १९१९ के तृतीय सप्ताह में प्रथम पास हो गया। गांधी जी ने इस परिस्थिति का मुकाबला सत्याग्रह आन्दोलन द्वारा करने की घोषणा की, यदि रौलेट सिफारिशों को बिल का रूप दिया गया।"[1]

१. हिस्ट्री आफ कांग्रेस, पट्टाभिसीतारमैया, पृ० २७२;

अत्यन्त शीघ्र ही स्थिति और बिगड़ गई और जलियांनवाला बाग के भयंकर हत्याकांड से देश का हृदय काँप उठा ।

इसके अतिरिक्त स्वराज्य के पक्ष में और पंजाब के हत्याकांड के विरोध में जनता की आवाज ने इस महान् नेता के निर्णयों को और अधिक बलशाली बना दिया । प्रेमचन्द ने भी इस आन्दोलन में भाग लिया । सरकारी नौकरी से त्याग-पत्र देने के बाद वे एक नियमित असहयोग आन्दोलनकारी बन गए । प्रेमचन्द ने असहयोग आन्दोलन में क्यों भाग लिया इसके कारण नीचे दिए जा रहे हैं और इनसे हमें प्रेमचन्द के विचारों का मूल ज्ञात होता है । वर्किंग कमेटी के सेशन में असहयोग सम्बन्धी प्रस्ताव पास हुआ था और यह प्रस्ताव महात्मा गांधी द्वारा प्रस्तुत किया गया था । इसकी मुख्य बातें थीं : पूर्ण स्वराज्य की माँग विदेशी माल का बहिष्कार, कौंसिलों-अदालतों और कालेजों का बहिष्कार । प्रेमचन्द जैसे जबरदस्त दृष्टिकोण वाले व्यक्ति पर इसका बड़ा प्रभाव पड़ा और इसीलिए उन्होंने नौकरी छोड़ दी । वे जेल नहीं गए परन्तु इस समय वे अपने महान् उपन्यास गोशाए आफ़ियत (प्रेमाश्रम) की रचना कर रहे थे । हाँ, उनकी पत्नी इस अवसर पर प्रथम बार जेल गईं । अन्य राजनीतिक मतवादों की अपेक्षा प्रेमचन्द महात्मा गांधी के अहिंसात्मक सत्याग्रह को अधिक पसन्द करते थे ।

गांधी जी के व्यक्तित्व ने प्रेमचन्द को अत्यधिक प्रभावित किया । इस महान् नेता से उनका सम्पर्क दो प्रकार से था । १६२२ में वे महात्मा गांधी से स्वयं गोरखपुर में मिले थे । उसके बाद से महात्मा गांधी के लेखों और भाषणों में बहुत रुचि रखने लगे । बाद में हिन्दुस्तान की समस्या पर विचार करने के लिए वे गांधी जी द्वारा वर्धा बुलाए गए । इस भेंट का प्रभाव यह हुआ कि प्रेमचन्द गांधी के दर्शन से बहुत प्रभावित हुए । प्रेमचन्द स्वयं स्वीकार करते हैं, "मैं महात्मा गांधी को सबसे बड़ा मानता हूँ । उनका भी उद्देश्य वही है कि मज़दूर और किसान सुखी हों । वह इन लोगों को आगे बढ़ाने के लिए आन्दोलन मचा रहे हैं । मैं लिखकर उनको उत्साह दे रहा हूँ । महात्मा गांधी हिन्दू-मुसलमानों की एकता चाहते हैं, तो मैं भी हिन्दी और उर्दू को मिला कर के हिन्दुस्तानी बनाना चाहता हूँ ।"[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रेमचन्द पर गांधी के व्यक्तित्व और दर्शन का

१. प्रेमचन्द घर में, श्रीमती शिवरानी देवी ।

प्रभाव अवश्य ही पड़ा, पर केवल इसी आधार पर उन्हें गांधीवादी कहना उचित नहीं है। एक ईमानदार साहित्यकार का युगपुरुष से प्रभावित होना स्वाभाविक था। लोकहित उनका उद्देश्य था और इसके लिए उन्हें गांधी के तरीके पसन्द आये। उन्होंने कहा था कि "मैं कम्युनिस्ट हूँ किन्तु मेरा कम्युनिज्म केवल यह ही है कि हमारे देश में जमींदार, सेठ आदि जो कृषकों के शोषक हैं, न रहें। मैं महात्मा जी के चेंज आफ हर्ट के सिद्धान्त में विश्वास रखता हूँ। इस प्रकार जमींदारी मिटेगी, यह मानता हूँ। ज़मीन किसान की होगी। मैं गांधीवादी नहीं हूँ, केवल गांधी जी के चेंज आफ हर्ट में विश्वास करता हूँ।"[१]

वे चाहते थे कि सबका भला हो। ऐसा आदर्श समाज हो जिसमें सभी को समान अवसर प्राप्त हो। उन्हें क्रान्ति से चिढ़ नहीं थी अगर वह क्रान्ति अन्ततोगत्वा बहुजनहिताय हो।[२] यही कारण है कि मार्क्सवादी लोग प्रेमचन्द में 'विश्वबन्धुत्व की भावना की लहर...जो मार्क्सवादी विश्वासों के लिए आवश्यक है'[३] देखते हैं। विश्वबन्धुत्व और लोक-कल्याण की भावना के कारण विभिन्न आलोचकों ने उन्हें अपने-अपने ढंग से समझने का प्रयास किया। प्रेमचन्द ने अपने युग और उसकी समस्याओं से पूर्ण तादात्म्य स्थापित कर लिया था। उनके युग में अनेकों उतार-चढ़ाव आए और वह उनसे समयानुसार प्रभावित भी होते रहे। यही कारण है कि उनके साहित्य में स्थायित्व नहीं है। अगर हम प्रेमचन्द के साहित्य के विकास के इस तत्व को नजर अन्दाज कर देगें तो हम कलाकार के व्यक्तित्व को समझने में अपने को असमर्थ पायेंगे। "वस्तुतः प्रेमचन्द के साहित्य की आत्मा इतनी व्यापक है कि उसमें गांधीवाद, प्रगतिवाद इत्यादि सभी सामाजिक विचारधाराओं के प्रगतिशील तत्वों का सहज समावेश है।"[४]

उस समय इस प्रकार की जो चेतना थी, वह भारतवर्ष में केवल बुद्धिवादी वर्ग के अग्रणी लोगों तक ही सीमित थी। वह एक नवीन युग का प्रभाव था और उस समय जन-शक्तियाँ अत्यधिक बलशाली थीं। इस चेतना ने देश में एक नवीन प्रकार की जागृति उत्पन्न कर दी और यह केवल भारतीय साहित्य ही नहीं वरन् राजनीति और अर्थशास्त्र में भी प्रवेश कर गई थी। इसी युग में

१. प्रेमचन्द एक अध्ययन, ले० डॉ० राजेश्वर गुरु, पृ० १०१;
२. २६ दिसम्बर, १९३४ को डॉ० इन्द्रनाथ मदान को लिखे गये पत्र का आशय;
३. प्रेमचन्द, डॉ० त्रिलोकी नारायण दीक्षित, पृ० २१;
४. प्रेमचन्द और गांधीवाद, ले० रामदीन गुप्त, पृ० ४५;

हमारे देश के महान् साहित्यिक विद्वान रवीन्द्रनाथ टैगोर रूस से लौटे थे। वे अपने साथ जीवन पद्धति के सम्बन्ध में नये विचार और नये आदर्श लेकर आये थे, जिनसे भारतीय अभी तक अपरिचित थे। महान् विचारक सर मुहम्मद इकबाल ने भी कुछ विदेशी प्रभाव ग्रहण किए जिनके कारण उनके लेख और उपदेश पर्याप्त सीमा तक ऊँचे उठ गये। इसी प्रकार भारतवर्ष का यह महान् मनोविज्ञानी लेखक प्रेमचन्द भी इन शक्तियों से प्रभावित हुआ।

भारतीय बौद्धिक चेतना वाले व्यक्ति भी अपने युग के महान् बुद्धिमान लोगों के सीधे सम्पर्क में आये। जिन लेखकों और विचारकों का सबसे अधिक प्रभाव इनके मानस पर हुआ उनमें थोरो, रोम्यां रोलां, विक्टर ह्यूगो, टाल्स्टाय, मैक्सिम गोर्की, माइकेल, शोलो खोव इत्यादि प्रमुख हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि जीवन के प्रारम्भिक भाग में प्रेमचन्द को टाल्स्टाय ने प्रभावित किया था और उन्होंने केवल उनकी कहानियों का अनुवाद ही नहीं किया वरन् मानवतावाद के उस सन्देश का उपदेश भी दिया जिसको टाल्स्टाय ने इतने कलापूर्ण ढंग से प्रसारित किया था। श्री मदनगोपाल जी लिखते हैं, "टाल्स्टाय और प्रेमचन्द दोनों ही समान आदर्शों से प्रेरित हुए थे। बौद्धिक रूप से प्रेमचन्द इस महान् रूसी के सच्चे शिष्य थे जिसका प्रभाव प्रेम-चन्द पर बहुत स्पष्ट है। दोनों ने ही भूमि पुत्र और साधारण मानवों को अपनी रचनाओं का पात्र बनाया है। दोनों ही ने सफलतापूर्वक कहानियाँ लिखीं और बाल मनोविज्ञान में दोनों ही की अद्भुत पहुँच थी। दोनों ही सुधारक और इतिहासज्ञ थे।"[1] परन्तु मदनगोपाल जी दोनों में अन्तर भी बताते हैं, "प्रेमचन्द ने, जो टाल्स्टाय के सिद्धान्तों के सदैव अनुयायी रहे, भारत जैसे जो मुख्य रूप से एक कृषि प्रधान देश है, के बड़े पैमाने पर औद्योगीकरण का विरोध किया।"[2]

हम यह भी अनुभव करते हैं कि प्रेमचन्द टाल्स्टाय के सिद्धान्तों के मानने वाले थे। यहाँ तक कि महात्मा गांधी ने भी महान् काउंट टाल्स्टाय का ऋण स्वीकार किया है। यह आश्चर्य की बात लग सकती है कि दूसरे लेखकों से अधिक टाल्स्टाय ने भारतीय लेखकों को पर्याप्त सीमा तक प्रभावित किया है। टाल्स्टाय की शिक्षाओं का सार निम्नलिखित है :—

---

१. प्रेमचन्द, ले० मदनगोपाल, पृ० ६०;

२. वही, पृ० ७७;

(१) जो भी अपने भाई से क्रुद्ध होगा न्याय के सम्बन्ध में वह भय की स्थिति में रहेगा, अतएव प्रत्येक परिस्थिति में अपने क्रोध को रोको, चाहे उसका उद्दीपन अथवा न्यायतर्क कुछ भी क्यों न हो।

(२) किसी भी स्त्री को वासनात्मक दृष्टि से देखने का अर्थ अपने मन में उसके साथ व्यभिचार करना है, अतएव अपनी काम सम्बन्धी इच्छाओं को दबाए रहो।

(३) कभी भी कसम न खाओ, किसी भी शासन करने वाले अधिकारी के प्रति आज्ञाकारिता की शपथ न लो, मस्तिष्क और चेतना शक्ति के पूर्ण स्वातन्त्र्य की रक्षा करो।

(४) बुराई का बदला न लो, किसी प्रकार भी नहीं, न तो शक्ति के प्रयोग द्वारा और न वैधानिक रीतियों के द्वारा।

(५) अपने शत्रुओं से भी प्रेम करो, उनसे भी जो तुम्हारे देश के शत्रु हैं।

काउंट टाल्स्टाय बन्धुत्व भाव, क्रोधहीनता, आत्मा की स्वतन्त्रता, अहिंसा आदि पर विशेष बल देते हैं। आदर्श नैतिकता के प्रति यह बिल्कुल एक नवीन दृष्टिकोण है। प्रेमचन्द ने इन विचारों को ग्रहण किया। चौगाने हस्ती (रंगभूमि) का नायक सूरदास समय-समय पर इन सभी संदेशों का उपदेश दिया करता है। भारतीय और रूसी उपन्यासकारों के मत में समानता दिखाने के लिए एक और उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

शिक्षा के सम्बन्ध में टाल्स्टाय के विचार उनके जीवनी लेखक ने इन शब्दों में प्रस्तुत किए हैं : "शिक्षा को वे वहीं तक अच्छा समझते हैं जहाँ तक वह अपने पड़ोसियों की सेवा के योग्य हमें बना सके, परन्तु 'प्रगति' के प्रकाशन के रूप में यदि यह हमें अपने पड़ोसी को दास बनाने की प्रेरणा देती है तो शिक्षा हानिकारक है।" इस कथन की तुलना हम प्रेमचन्द के कथन से कर सकते हैं जो उन्होंने रंगभूमि की एक पात्रा मिस सोफिया के कथन द्वारा व्यक्त किया है, जिसमें उसने बताया है कि शिक्षा अवांछित व्यक्ति उत्पन्न करती है जब कि प्रकृति अच्छे स्वभाव वाले व्यक्तियों को जन्म देती है।

इन दोनों मतों में बहुत कम अंतर है। टाल्स्टाय के समान शिक्षा के सम्बन्ध में प्रेमचन्द की धारणा भी भिन्न थी। शिक्षा केवल भरण-पोषण का एकमात्र साधन ही नहीं हो सकती वरन् इसका लक्ष्य उससे कुछ ऊँचा भी है। प्रेमचन्द ने प्रेम, दया, क्षमा, परोपकार, अहिंसा, त्याग, अपरिग्रह, आत्मशुद्धि

को शिक्षा भी टाल्स्टाय से पायी थी। उसी प्रभाव में 'सेवामार्ग' और 'उपदेश' जैसी नीतिकथाएँ भी उन्होंने लिखीं, जिनमें सेवा और परोपकार को ही सबसे बड़ी सिद्धि बताया गया है। सच तो यह है कि उपर्युक्त गुण प्रेमचन्द के स्वगत थे, टालस्टाय के प्रभाव ने तो केवल नींव को सुदृढ़ बनाया था। इन्हीं गुणों और आदर्शों को गांधी ने राजनीति में व्यावहारिक प्रयोग में लाकर प्रेमचन्द की आस्था को और बल प्रदान किया। टाल्स्टाय के जीवन-दर्शन और गांधी के व्यावहारिक प्रयोग से विश्वस्त प्रेमचन्द भी अपने चरित्रों की सोयी हुई आत्मा को जगाते हैं। मानव स्वभाव की नैसर्गिक उत्कृष्टता पर प्रेमचन्द को उतना ही विश्वास था जितना गांधी या टाल्स्टाय को था।

रूस के प्रथम श्रेणी के लेखकों में से मैक्सिम गोर्की भी एक था। उसकी असामयिक मृत्यु हो गई। प्रेमचन्द को मैक्सिम गोर्की की मृत्यु से बड़ा धक्का पहुँचा क्योंकि वे उसकी महानता पर विश्वास करते थे। इस दुखद समाचार के मिलने के एक दो दिन बाद तक प्रेमचन्द बेचैन रहे। श्री मदनगोपाल इन दोनों लेखकों की समता और तुलना की ओर इंगित करते हुए कहते हैं कि इस प्रकार का दूसरा रूसी लेखक मैक्सिम गोर्की है। स्वाधीनता और क्रांति के लिए जिसकी कामना प्रेमचन्द की कामनाओं के समान है। दोनों ही पीड़ितों की आवाज हैं और दोनों ही ने आवश्यक परिवर्तन का पक्ष लिया है। दोनों ही की दृष्टि विस्तृत है। परन्तु जहाँ गोर्की क्रांति (रचना) पर अधिक बल देते हैं, वहाँ प्रेमचन्द एक शांतिमय विकास को पसन्द करते हैं।

गोर्की का रंगमंच बाजार और कारखाना है, और प्रेमचन्द का रंगमंच गाँव। दोनों ही अपने समय का अंकन करने वाले लेखक हैं। एक अपने समय के प्रबल क्रांतिकारी का शिष्य और लेफ्टिनेंट था और दूसरा एक दृढ़ शांतिवादी का अनुयायी। गोर्की के 'मदर' (माँ) उपन्यास की विषयवस्तु प्रेमचन्द के 'कर्मभूमि' के समानान्तर ही है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रेमचन्द के व्यक्तित्व का निर्माण करने वाली शक्तियाँ विविध थीं। वे एक अत्यधिक पढ़ने वाले असाधारण पाठक थे। वे शुद्ध आदर्शवादी अथवा मानवतावादी लेखकों की रचनाओं की अपेक्षा प्रगतिवादी कहे जाने वाले लेखकों को पढ़ना अधिक पसन्द करते थे। जिन विद्वानों की चर्चा ऊपर हो चुकी है उनके अतिरिक्त गाल्स्वर्दी, अनातोले फ्रांस और जार्ज बर्नार्ड शा उनकी रुचि के अन्य लेखक थे। ये प्रेमचन्द को विशेष प्रिय थे। इनमें से प्रायः सभी ने परिश्रमशील मानवता का पक्ष ग्रहण किया है

अथवा समाज के दुर्गुणों का भंडाफोड़ किया है। इस प्रकार इन लेखकों ने प्रेमचन्द की पढ़ने की भूख को शांत किया और साथ ही उन्हें पर्याप्त प्रेरणा भी दी।

हमें यह सोचकर बहुत खेद होता है कि उन्हें अपने जीवन काल के इन पचास वर्षों में अत्यन्त संघर्षपूर्ण जीवन व्यतीत करना पड़ा। उनकी विमाता का क्रूर दुर्व्यवहार, पन्द्रह वर्ष की अल्पावस्था में ही एक कुरूप स्त्री से उनका विवाह और उनकी अत्यधिक निर्धनता जिसके कारण परिवार एवं समाज में उन्हें पग-पग पर विपत्तियों का सामना करना पड़ा। इन सभी बातों ने उनके व्यक्तित्व को निखार कर अनुशासित बना दिया और उनकी कृतियों के लिए आधारभूत सामग्री एकत्र करने में योग दिया। प्रारम्भ में जीवन अथवा जीवन की समस्याओं के प्रति उनका दृष्टिकोण न्यूनाधिक्य रूप से मानवतावादी रहा है।

३ | कृतियों का तिथिवार अध्ययन

कृतियों का तिथिवार अध्ययन

□

किसी लेखक के अध्ययन की अनेक विधियाँ होती हैं। उन लेखकों की सृजन शक्तियों के विकास का अध्ययन, जिन्होंने विभिन्न विषयों पर अनेक पुस्तकें लिखी हैं, सम्यक् रूप से तभी हो सकता है, जब समाज में पाई जाने वाली शक्तियों का समुचित विश्लेषण तथा उनकी कृतियों में प्रकट होने वाले लेखक के व्यक्तित्व का ठीक-ठीक मूल्यांकन किया जाय। प्रेमचन्द ने अनेक ग्रन्थों की रचना की। उन्होंने ३५ वर्ष तक साहित्य सृजन किया और जीवन के सब अंगों पर तथा व्यक्ति एवं समाज पर प्रकाश डाला। उनकी कृतियों के अध्ययन करने का सबसे वैज्ञानिक ढंग उनकी रचनाओं का तिथिक्रम से अवलोकन करना ही होगा।

प्रेमचन्द का साहित्यिक जीवन १९०१ से आरम्भ हुआ। १७ जुलाई १९२६ को दयानारायण निगम को लिखे अपने पत्र में वह स्वीकार करते हैं—सन् १९०१ से लिटरेरी ज़िन्दगी शुरू की। रिसाला 'जमाना' में लिखता रहा। कई साल तक मुतफ़र्रिक मज़ामीन लिखे। १९०४ में एक हिन्दी नाविल 'प्रेमा' लिख कर इन्डियन प्रेस से शाया कराया।[1] १४ वर्ष की अवस्था में ही उन्होंने 'होनहार बिरवान के चिकने चिकने पात' नामक एक नाटक लिखा। श्री मदन गोपाल के मतानुसार १९ वर्ष की अवस्था में इन्होंने अपना प्रथम उपन्यास प्रतापचन्द लिखा था[2] लेकिन वे फिर कहते हैं कि यह उपन्यास १९०१ में लिखा गया पर प्रकाशित नहीं हो सका। प्रेमचन्द का प्रथम प्रकाशित उपन्यास असरारे मआबिद था, जो ८ अक्टूबर १९०३ से १ फरवरी १९०५ तक बनारस के एक उर्दू साप्ताहिक 'आवाज़-ए-खल्क' में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुआ। श्री दयानारायण निगम के अनुसार 'हम खुर्मा व हम सवाब' प्रेमचन्द का प्रथम उपन्यास था। मुंशी प्यारेलाल शकीर का भी विश्वास था कि 'हम खुर्मा व हम सवाब' प्रेमचन्द का प्रथम उर्दू उपन्यास था।[3] अमृतराय भी इस सम्भावना को अस्वीकार नहीं करते कि 'हम खुर्मा व हम सवाब' १९०० के आस-पास लिखा गया हो। पर

---

१. 'कलम का सिपाही' से उद्धृत, पृ० ६१;
२. प्रेमचन्द, ले० मदन गोपाल, पृ० १८;
३. ज़माना (प्रेमचन्द अंक), पृ० ८८;

वे भी इसके प्रकाशन काल को सन् १६०६ ही मानते है । इन प्रमाणो के आधार पर 'हम खुर्मा व हम सवाव' को प्रेमचन्द का प्रथम उर्दू उपन्यास मान सकते है । यह उपन्यास सन् १६०७ मे हिन्दुस्तानी प्रेस लखनऊ मे छपा और इसके प्रकाशक बाबू महादेव प्रसाद वर्मा (पुस्तक विक्रेता अमीनाबाद लखनऊ) थे । प्रेमचन्द का प्रथम हिन्दी उपन्यास 'प्रेमा' था ।

यह असम्भव है कि सब पुस्तको का तिथिवार क्रम दिया जा सके क्योकि कभी-कभी ऐसा होता है कि किसी कृति की रचना पहले हो जाती है किन्तु छपती वह देर मे है । कुछ पुस्तको पर छपने की तिथि ही नही मिलती । इसके अतिरिक्त भिन्न-भिन्न व्यक्तियो की दी हुई तिथि भी भिन्न होती है । 'जमाना' का प्रेमचन्द अक एक तिथि देता है, श्री मदन गोपाल दूसरी तिथि देते है और श्रीमती शिवरानी एक अन्य तिथि देती हें । हमने प्रकाशन की ठीक-ठीक तिथि का पता लगाने का प्रयास किया है । अन्त मे यह कहना आवश्यक समझते है कि नीचे की दी हुई तिथियाँ प्रकाशन की तिथियाँ है, लिखने की तिथियाँ नही । साहित्य के विद्यार्थी का सम्बन्ध पुस्तक के लिखने की तिथि से अधिक होता है । किन्तु हमे तो प्रकाशन की तिथियाँ ही मालूम हो सकी है और वे भी कभी-कभी विश्वसनीय नही हैं । उर्दू उपन्यासो की सूची इस प्रकार है —

१ **असरारे मआबिद** ८ अक्तूबर १६०३ से १ फरवरी १६०५ तक बनारस के उर्दू साप्ताहिक 'आवाज ए खल्क' मे क्रमश प्रकाशित ।

२ **प्रतापचन्द्र** १६०१ मे लिखा गया किन्तु कभी प्रकाशित नही हुआ । (—मदन गोपाल)[1]

३ **हम खुर्मा व हम सवाव** १६०७ मे हिन्दुस्तानी प्रेस लखनऊ से मुद्रित । प्रकाशक बाबू महादेव प्रसाद वर्मा बुक सेलर्स अमीनाबाद लखनऊ ।[2]

---

१ हमने इस उपन्यास 'प्रतापचन्द्र' के विषय मे प्रेमचन्द के आत्मज श्री श्रीपत राय से बातचीत की किन्तु उन्होने श्री मदनगोपाल की सूचना के साधन पर आश्चर्य प्रकट किया । उन्हे इसका कोई ज्ञान न था । श्री दयानारायण निगम को भी इसका ज्ञान न था । यह कभी प्रकाशित न हुआ और इस बात का भी ध्यान रखना है कि यह उनके प्रारम्भिक प्रयत्नो का फल था । अतएव हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इस उपन्यास का कोई विशेष साहित्यिक महत्व न था ।

२ प्रेमचन्द ने 'हम खुर्मा व हम सवाव' का अनुवाद हिन्दी मे भी

४. **किशना** : संभवतः १६०७ में बनारस मेडिकल हाल प्रेस से प्रकाशित हुआ।

५. **जलवए ईसार** : १६१२ ई० में इंडियन प्रेस इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित।

६. **बाजार ए हुस्न** : १६१४ ई० में प्रकाशित।

७. **गोशए आफियत** : १६२२ में दारुल इशात पंजाब द्वारा प्रकाशित।

८. **चौगाने हस्ती** : सन् १६२७ में दारुल इशात पंजाब द्वारा प्रकाशित।

९. **पर्दा ए मजाज** : १६२८ ई० में लाजपत राय एंड सन्स लाहौर द्वारा प्रकाशित।

१०. **निर्मला** : १६२६ ई० में लाहौर से प्रकाशित।

११. **गबन** : १६३० में लाहौर से प्रकाशित।

१२. **मैदान ए अमल** : १६३२ ई० में जामे मिलिया दिल्ली से प्रकाशित।

१३. **गोदान** : १६३८ ई० में सरस्वती प्रेस द्वारा प्रकाशित।

हिन्दी उपन्यासों की सूची निम्नलिखित है :—

१. **प्रतिज्ञा** : १६२७, बेवा का अनुवाद।

२. **वरदान** : १६२१, जलवए ईसार का हिन्दी रूपान्तर।

३. **सेवासदन** : १६१६, बाज़ारे हुस्न का अनुवाद।

४. **प्रेमाश्रम** : १६२१, गोशए आफ़ियत का अनुवाद।

५. **निर्मला** : १६२५-१६२६, उर्दू में भी वही नाम।

६. **रंगभूमि** : १६२५, उर्दू में चौगाने हस्ती।

७. **कायाकल्प** : १६२६, पर्दए मजाज़।

८. **अहंकार** : १६२६, अनातोल फ्रांस के 'थायस' का भारतीय परिवेश में रूपान्तर।[1]

९. **गबन** : १६३१, उर्दू में भी वही नाम।

किया और इसका नाम 'प्रेमा' रखा (—जमाना, प्रेमचन्द अंक, पृष्ठ १८) किन्तु उसी अंक के पृष्ठ २५२ पर लिखा है कि 'बेवा' के अनुवाद का नाम पहले प्रेमा था और प्रकाशित भी हुआ। मि० निगम (प्रेमचन्द अंक, पृ० ८६) लिखते हैं कि बेवा प्रेमचन्द के प्रथम उपन्यास प्रतिज्ञा का अनुवाद है।

१. क़लम का सिपाही, ले० अमृतराय, परिशिष्ट १, पृ० ६५५।

१०. **कर्मभूमि** : १६३२, मैदाने अमल ।

११. **गोदान** : १६३६, गऊदान ।

१२. **मंगलसूत्र** : १६४८, अपूर्ण उपन्यास ।

उन रचनाओं की सूची जिनमें लेखक ने अपना नाम नबावराय दिया है :—

१. हम खुर्मा व हम सबाव

२. रूठी रानी

३. किशना

४. जलवए ईसार

५. प्रेमा

यह अभी तक अनिश्चित है कि प्रेमचन्द ने कितनी लघु कथाएँ लिखीं। प्रेमचन्द का अनुमान था कि उन्होंने लगभग दो सौ लघु कथाएँ लिखीं । नजीर काकोरी का अनुमान है कि प्रेमचन्द ने ३५० लघु कथाएँ लिखीं । लीडर में छपे एक लेख में श्री टंडन ने बताया है कि प्रेमचन्द लिखित लघु कथाओं की संख्या तीन सौ से अधिक है । श्री अमृतराय ने 'कलम का सिपाही' के परिशिष्ट दो में कुल दो सौ चौबीस कहानियों की एक सूची दी है । फारसी लिपि में लिखी हुई कहानियों की संख्या के जानने का प्रयास हमारा भी रहा है । भिन्न-भिन्न संकलनों में प्रकाशित लघु कथाओं की संख्या लिखकर हमने जोड़ी है जो इस प्रकार है ।

क्रम संख्या १

सोजे वतन और सैर दरवेश : यह गयलानी एलेक्ट्रिक प्रेस लाहौर में मुद्रित हुई और शाह साहब गयलानी द्वारा प्रकाशित हुई । १६२६ ई० में इनका द्वितीय संस्करण छपा ।

१. दुनिया का सबसे अनमोल रत्न

२. शेख मखमूर

३. यही मेरा वतन है

४. स्ले मातम

५. दुनिया और हुब ए वतन

६. सैर दरवेश

योग : ६ कहानियाँ;

क्रम संख्या २

प्रेम बत्तीसी प्रथम भाग : प्रथम संस्करण जमाना प्रेस कानपुर ने प्रकाशित किया और द्वितीय संस्करण दारुल इशात लाहौर ने प्रकाशित किया ।

१. सिर पुर ग़रूर
२. जुगनू की चमक
३. राजपूत की बेटी
४. निगाह ए नाज़
५. बेटी का धन
६. धोखा
७. पछतावा
८. शोलए-हुस्न
९. अनाथ लड़की
१०. पंचायत
११. सौत
१२. बाग एसहर
१३. मज़-ए-मुबारक
१४. कुर्बानी
१५. दफ्तरी
१६. दो भाई

योग : १६ कहानियाँ;

प्रेमबत्तीसी भाग २ : यह दारुल इशात, पंजाब, लाहौर द्वारा सन् १९२८ में प्रकाशित हुआ।

१. बज़्रे यापथ
२. बूढ़ी काकी
३. बैंक का दिवाला
४. ज़ंजीर-ए-हवस
५. सौतेली माँ
६. मिशाल ए हिदायत
७. खंजर ए वफा
८. खाब-ए-परेशाँ
९. राहे खिदमत
१०. हज्ज ए अकबर
११. आत्माराम
१२. ईमान का फैसला

१३. फ़तह
१४. दुर्गा का मंदिर
१५. खून-ए-हुरमत
१६. इसलाह

कुल योग : १६ + १६ = ३२ कहानियाँ;

क्रम संख्या ३

प्रेम चालीसी भाग १ गलानी एलेक्ट्रिक प्रेस बुक डिपो, लाहौर द्वारा प्रकाशित ।

१. मंतर
२. कशमकश
३. खाना बर्बाद
४. कुफ्र
५. त्रिशूल
६. बोहिनी
७. दरोग़ा की सैर गुजश्त
८. इस्तीफ़ा
९. इन्तिकाम
१०. इनसान का मुकद्दम फर्ज़
११. मंदिर
१२. रामलीला
१३. दीनदारी
१४. चूड़ी
१५. इल्ज़ाम
१६. कज्ज़ाकी
१७. आँसू की होली
१८. सुहाग का ज़माना
१९. देवी
२०. कौम का खादिम

योग : २० कहानियाँ;

प्रेम चालीसी भाग २

१. दो सखियाँ

२. हिर्ज-ए-जान
३. माँ
४. मजबूरी
५. लैला
६. मज़ार-ए-उल्फ़त
७. अभागिन
८. जिहाद
९. देवी
१०. हसरत
११. चकमा
१२. जन्नत की देवी
१३. अफ़ू
१४. बन्द दरवाज़ा
१५. जलूस
१६. इम्तहान
१७. सज़ा
१८. घास वाली
१९. बीबी से शौहर
२०. पूस की एक रात

कुल योग : २०+२०=४० कहानियाँ;

क्रम संख्या ४

प्रेम चालीसी भाग १ : दारुल इशात, लाहौर द्वारा प्रकाशित ।

१. ममता
२. विक्रमादित्य
३. बड़े घर की बेटी
४. रानी सारन्धा
५. राजहठ
६. राजा हरदौल
७. नमक का दरोगा
८. आलम ए बेअमल
९. गुनाह का अग्निकुंड

१०. बेग़रज़ मोहसिन
११. श्राह ए बेकस
१२. अल्लाह

योग : १२ कहानियाँ;

प्रेम पचीसी भाग २

१. ख़ून ए सफ़ेद
२. सिर्फ़ यह आवाज़
३. अन्धेर
४. बांका ज़मींदार
५. तिरिया चरित्र
६. अमृत
७. शिकारी राजकुमार
८. कर्मों का फ़ल
९. मुनावा
१०. मुहर्रम
११. अमावस की रात
१२. ग़ैरत की कटारी
१३. मंज़िल ए मक़सूद

कुल योग : १३ + १२ = २५ कहानियाँ;

क्रम संख्या ५

दूध की कीमत । सन् १९३७ में उस्मत बुक डिपो, दिल्ली से प्रकाशित ।

१. दूध की कीमत
२. कुसुम
३. अक्सीर
४. यादगार
५. सुकून-ए-कल्ब
६. रियासत का दीवान
७. वफ़ा का देवता
८. दो बहनें
९. ज़ाविया निगाह

योग : ९ कहानियाँ;

क्रम संख्या ६

ज़ाद-ए-राह । १६३६ में हाली पब्लिशिंग हाउस (किताब घर, दिल्ली) द्वारा प्रकाशित ।

१. वफ़ा की देवी
२. आशियाँ बरबाद
३. जाद-ए-राह
४. मिस पद्मा
५. होली की छुट्टी
६. घर खुदा का
७. नूर
८. लाटरी
९. डामुल का क़ैदी

योग : ९ कहानियाँ;

क्रम संख्या ७

ख़ाक ए परवाना :

१. नादान दोस्त
२. नग़मा ए रूह
३. सत्याग्रह
४. नज़र ए आतशीन
५. बड़े बाबू
६. अजीब होली
७. दावत
८. फ़िक्रे दुनिया
९. खुशदिल
१०. माँगे की घड़ी
११. तालीफ़
१२. कज़ान
१३. मिलाप
१४. ख़ाक ए परवाना

योग : १४ कहानियाँ;

क्रम संख्या ८

वारदात । प्रथम संस्करण १६३७ ई० में मकतूबे जामिया द्वारा प्रकाशित हुआ । द्वितीय संस्करण सन् १६३८ में प्रकाशित हुआ ।

१. शिकवा शिकायत
२. मासूम बच्चा
३. बदनसीब माँ
४. शान्ती
५. रोशनी
६. मालकिन
७. नई बीवी
८. गुल्ली डंडा
६. स्वाँग
१०. इंसाफ की पुलिस
११. गम नदारी बाज़ रंज
१२. मुफ्त करम दस्तूर
१३. कातिल की माँ

योग : १३ कहानियाँ;

क्रम संख्या ६

फिरदौस ए ख्याल १६२६ ई० में इंडियन प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित हुआ ।

१. तौबा
२. अफ़ू
३. मुरीदी
४. नेक बख्ती के ताजियाने
५. राह ए नजात
६. डिग्री के रुपये
७. नज़ूल ए बर्क
८. भाड़े का टट्टू
६. भूत
१०. सवा सेर गेहूँ

११. तहज़ीब का राज़
१२. लैला

योग : १२ कहानियाँ;

क्रम संख्या १०

ख्वाब ओ ख्याल लाजपत राय एंड सन्स द्वारा प्रकाशित ।

१. नख्ल ए उम्मीद
२. नोक झोंक
३. मूंठ
४. शुद्धि
५. शतरंज की बाजी
६. इबरत
७. शिकस्त की फतह
८. दस्ते गैब
९. दावत ए शिराज़
१०. माया ए तफरीह
११. फ़लसफी की मौत
१२. खुदी
१३. लाल फीता
१४. सती

योग : १४ कहानियाँ;

क्रम संख्या ११

आखिरी तोहफ़ा । यह नारायन दत्त सैगल (लाहौरी दरवाजा, लाहौर) द्वारा सन् १९३८ में प्रकाशित ।

१. आखिरी तोहफ़ा
२. जेल
३. वफा की देवी
४. तुलू ए मुहब्बत
५. शिकार
६. अदीब की इज्जत
७. कातिल
८. सती

९. डिमांस्ट्रेशन
१०. बयत
११. दो बैल
१२. आखिरी हीला
१३. नजात

योग : १३ कहानियाँ;

क्रम संख्या १२

देहात के अफ़साने । दारुल इश्यात पंजाब (लाहौर) के तत्वावधान में प्रथम संस्करण सन् १९३९ ई० में प्रकाशित हुआ ।

१. पंचायत
२. बांका जमींदार
३. अन्धेर
४. मिशाल ए हिदायत
५. वेगर्ज मोहसिन
६. बड़े घर की बेटी
७. बागे सहर
८. बेटी का धन
९. आहे बेकस
१०. कुरबानी
११. खून सफेद
१२. पछतावा

योग : १२ कहानियाँ;

कुल योग :

६+३२+४०+२५+९+९+१४+१३+१२+१४+१३+१२
= १९९ कहानियाँ;

इन १९९ कहानियों में वे कहानियाँ भी सम्मिलित हैं जिनकी पुनरावृत्ति दो भिन्न संकलनों में हुई है ।

तदुपरांत उन कहानियों की सूची आती है जिनमें भिन्न-भिन्न संकलनों से पुनरावृत्ति हुई है :

	संकलन सं० १	संकलन सं० २
१. बड़े घर की बेटी	प्रेम पचीसी	देहात के अफ़साने

२. बेगरज मोहसिन	प्रेम पचीसी	देहात के अफसाने
३. आह ए बेकस	,,	,,
४ अन्धेर	,, (भाग २)	,,
५. बाका जमीदार	,,	,,
६. बानी का धुवा	प्रेम बतीसी (भाग १)	,,
७ पछतावा	,, ,,	,,
८. पचायत	,, ,,	,,
९. बग ए सहर	,, ,,	,,
१०. गुरबानी	,, (भाग २)	,,
११. मिशाल ए हिदायत	,, ,,	,,
१२ उफ़	प्रेम चालीसी (भाग २)	फिरदौस ए ख्याल
१३. लैला	,, ,,	,,
१४. खून सफेद	प्रेम पच्चीसी	देहात के अफसाने
१५ वफा की देवी	आखिरी तोहफा	जाद ए राह
१६ खुदी	खाब ओ ख्याल	खाक ए परवाना
१७. सती	आखिरी तोहफा	खाब ओ ख्याल

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सत्रह कहानियाँ लघु कथाओ के भिन्न-भिन्न उर्दू सकलनो मे दुहराई गई है। देहात के अफसाने मौलिक सकलन नही है। इसमे बारह कहानियाँ है और सब अन्य भिन्न-भिन्न सकलनो से उद्धृत की गई हैं। इस प्रकार उर्दू की लघु कथाओ की सख्या (१९९ – १७ =) १८२ हुई।

इस सम्बन्ध मे दो बाते और बतलाना है। सर्वप्रथम यह है कि देवी नामक एक कहानी ऐसी है जो प्रेम पचीसी भाग एक और प्रेम चालीसी भाग दो मे भी है। दोनो कहानियो का एक ही नाम होने के आधार पर हमे यह न समझना चाहिए कि दोनो एक ही है। दोनो भिन्न-भिन्न कथाये है, केवल शीर्षक एक ही है। प्रेमचन्द की सबसे पहली कहानी 'दुनिया का सबसे अनमोल रतन' १९०७ मे प्रकाशित हुई। यह जमाना मे प्रकाशित हुई। 'दो बहने' नाम की अन्तिम कहानी उर्दू पत्रिका 'असमत' मे अक्तूबर सन् १९३६ ई० मे प्रकाशित हुई।

प्रेमचन्द ने १३ उपन्यास तथा १८२ कहानियो के अतिरिक्त 'कर्बला' और 'रूहानी शादी' नामक दो नाटक भी लिखे। प्रेमचन्द जी ने इन्हे पढने के

लिए लिखा था, रंगमंच के लिए नहीं । परन्तु यह नाटक अधिक लोकप्रिय न हो सके, जिसका कारण यह है कि रंगमंच पर आने पर अच्छे नाटक की लोकप्रियता बढ़ती है । रूहानी शादी की अपेक्षा कर्बला अधिक सुन्दर साहित्यिक कृति है । इस नाटक का मुख्य उद्देश्य हिन्दू और मुसलमानों में एकता का भाव जागृत करना था । उसका एक हिन्दू पात्र सहस राय भी कर्बला के युद्ध क्षेत्र में लड़ता है । किन्तु प्रेमचन्द के इस नाटक में इतिहास से सम्बन्धित कुछ गलत बातों का समावेश हुआ है । अतएव इसकी बड़ी कटु आलोचना हुई ।

□□

उपन्यास : एक अध्ययन

□

रालफाक्स का कथन है, "उपन्यास हमारे आधुनिक मध्यमवर्गीय सामाजिक जीवन की महाकाव्यात्मक व्याख्या है, जो इस समाज के यौवन काल मे ही अपनी पूर्ण उच्चता को प्राप्त होती है और ऐसा प्रतीत होता है कि वर्तमान मध्यमवर्गीय समाज के पतन का प्रभाव इस पर भी पड़ा है।"[1] ये पक्तियाँ वास्तव मे उपन्यास के सम्पूर्ण इतिहास का दिग्दर्शन कराती है। साहित्य की एक शैली के रूप मे उपन्यास का विकास अभी नवीन ही है। अग्रेजी उपन्यास साहित्य के इतिहास से ज्ञात होता है कि साहित्य का यह अग उन्नीसवी शताब्दी मे विशेष प्रचलित हुआ। 'उपन्यास का स्वरूप' एक अत्यत गतिशील धारणा है। कथा-साहित्य के प्रारम्भिक दिनो से अब तक उपन्यास अपने बहुत-से मौलिक गुणो को परित्यक्त करता रहा है और बहुत-सी नवीन धारणाओ को ग्रहण करता रहा है। उदाहरणत नवीन जागृति की धारा अथवा यथार्थवाद इत्यादि। आज उपन्यास के स्वरूप सम्बन्धी हमारी धारणा बहुत कुछ ससार के सर्वोत्तम आधुनिक उपन्यासो के अध्ययन पर आधारित है उदाहरणत डान क्विगजोटे, गार्गेन्टा एन्ड पेन्टाग्रुएल, राबिन्सन क्रूसो, जोनाथन वाइल्ड, वार एन्ड पीस, वुदरिंग हाइट, दि वे आफ आल फ्लेश तथा कुछ अन्य उपन्यास। उपन्यास का वर्तमान स्वरूप भी परिवर्तन की कृपा पर आश्रित है और इसके भावी स्वरूप के सम्बन्ध मे निश्चित रूप से कुछ भी कहना असम्भव है।

बहुत समय तक साहित्य की शैली के रूप मे उपन्यास हिन्दी और उर्दू दोनो ही मे अज्ञात था। उर्दू मे कथा-वर्णन का सबसे प्राचीन उदाहरण 'दखनी भाषा' मे कविताओ के रूप मे और आगे चलकर गद्य रोमास (गद्य मे लिखी हुई प्रेम और कविता की कहानियो) के रूप मे मिलता है। यहाँ तक कि उर्दू भाषा के सर्वोत्तम युग मे भी उच्च कोटि के उपन्यासो की रचना नही हुई। उपन्यासो की सख्या तो बहुत बढ गयी परन्तु अच्छे उपन्यास नही रचे

---

१ रालफाक्स : दि नोवेल एन्ड दि पीपुल,

गये। संख्या बाहुल्य की वेदी पर उपन्यास के उत्तम गुणों का बलिदान कर दिया गया। इस क्षेत्र में प्रेमचन्द के नेतृत्व के पश्चात् ही समालोचकों और लेखकों ने उपन्यास की आधुनिक प्रविधि (टेकनिक) की ओर गम्भीरतापूर्वक ध्यान देना आरम्भ किया। हिन्दी साहित्य में भी ऐसी ही स्थिति थी। लाला श्रीनिवासदास का लिखा हुआ 'परीक्षागुरु' हिन्दी का सबसे पहला उपन्यास माना जाता है। इसमें विषय का यथार्थ प्रतिपादन हुआ है। हिन्दी भाषा के इस अंग का विकास प्रेमचन्द, विशम्भर नाथ कौशिक, प्रताप नारायण मिश्र, श्रीवास्तव, बेचन शर्मा उग्र और सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के समय में हुआ। कौशिक जी का 'माँ' नामक उपन्यास प्लाट की रचना में महत्वपूर्ण है। उग्र जी ने 'चन्द हसीनों के खतूत' में कथा पत्र प्रणाली (एपिस्टलेरी मैथड) का प्रयोग किया है। निराला जी का 'अप्सरा' मनोवैज्ञानिक चरित्र और चित्रण के विश्लेषणात्मक अध्ययन का एक प्रयास है।[1] इन्द्रनाथ मदान के कथन से यह स्पष्ट है कि साहित्य के एक अंग के रूप में उपन्यास भारत के लिए प्रायः पूर्णरूपेण विदेशी देन है। इसमें सन्देह नहीं कि साहित्य का यह अंग समय के साथ काफी आगे बढ़ गया है। हिन्दी और उर्दू की कुछ श्रेष्ठतम कृतियाँ अंग्रेजी तथा अन्य किसी भाषा के साहित्य की कुछ श्रेष्ठतम कृतियों के समकक्ष रखी जा सकती हैं।

इस प्रकार साहित्य में उपन्यास अभी हाल की ही उपज है, परन्तु संसार के समस्त साहित्यों में कल्पनामूलक कथा एवं उपन्यास दो विभिन्न शब्द हैं। दोनों के ढाँचे और शिल्प-विधि के बारे में भ्रम नहीं होना चाहिए। इस अर्थ में कल्पनामूलक कथा का क्षेत्र इतना विस्तृत है कि उपन्यास भी इसके अन्तर्गत आ जाता है परन्तु साहित्य के अंग के रूप में उपन्यास का बिल्कुल भिन्न अर्थ है। साहित्य के एक अंग के रूप में उपन्यास आकार की रचना को प्रभावित करने वाले समस्त महत्वपूर्ण अंशों अथवा स्वरूप निर्माण के सम्पूर्ण तत्वों के साथ-साथ अवयव उद्भावना की ओर भी संकेत करता है, उन तत्वों का, जिनके कारण उपन्यास को साहित्य में स्थान प्राप्त हुआ है। यहाँ पर उनका वर्णन करना विषय परिवर्तन की ओर ले जाएगा।

इन दोनों शब्दों का अर्थ शब्दकोश के अनुसार जान लेना आवश्यक है। कल्पनामूलक कथा का अर्थ असत्यता है और उपन्यास का अर्थ है : काल्पनिक वृत्तान्त, जिसका उद्देश्य मनोवेगों, विशेषकर प्रेम सम्बन्धी मनोवेगों, के विश्लेषण

---

१. डॉ० इन्द्रनाथ मदान, माडर्न हिन्दी लिटरेचर;

का प्रदर्शन है ।[1] आज उपन्यास का अर्थ बहुत विस्तृत हो गया है और साहित्य इन ऊपर दिये हुए अर्थों को ग्रहण नहीं करता । इसके अतिरिक्त, इन दोनों शब्दों (विशेषकर उपन्यास) के निश्चयात्मक लक्ष्य और मूल्यांकन अत्यन्त जटिल हो गये हैं ।

ई० एम० फार्सटर के अनुसार कल्पनामूलक कथा और उपन्यास का भेद कहानी और कथावस्तु का भेद है । कहानी घटनाओं का वर्णन है जो कार्य-कारण सम्बन्ध पर अधिक बल देती है । राजा मर गया और तब रानी मर गयी, यह एक कहानी है । राजा मर गया और तब रानी भी उसके शोक में मर गयी, यह एक कथावस्तु है । उपन्यास में कथा का जिज्ञासामूलक वर्णन होता है । कहानी और कथावस्तु में भेद है । कहानी किसी का आधार निर्माण कर सकती है, लेकिन कथावस्तु एक उच्च प्रकार का सम्पूर्ण तत्व होता है ।[2]

अतएव दैनिक जीवन, वह जैसा भी यथार्थ में हो, वास्तव में दो प्रकार का होता है और हमारे व्यवहार से भी दो प्रकार की निष्ठा प्रकट होती है । मैंने उसे पाँच मिनट देखा, क्योंकि वह इस योग्य थी । यहाँ एक ही वाक्य में दो प्रकार की निष्ठा का आभास होता है । इस प्रकार कहानी जीवन का चित्रण करती है । उच्चकोटि का उपन्यास भी मूल्यों के साथ जीवन का चित्रण है ।

'राजा मर गया और तब रानी मर गयी' कहना तर्कशास्त्र के दो स्वीकृत साध्यों के समान है । यह कथन कि 'राजा मर गया और तब शोक के कारण रानी मर गयी' साहित्य से सम्बन्ध रखता है । उस मृत्यु के कारण, जिसने रानी को सदा के लिये राजा से अलग कर दिया, रानी को इतना दुख हुआ कि उसकी भी मृत्यु हो गयी । इसी साहित्यिक आकर्षण के कारण ही अंग्रेजी में कहा गया है—

"नावेल हैज़ ए पैटर्न लाइक ए कारपेट ऑर ए रिद्म लाइक ए ट्यून ।"

यह कहना अनुचित न होगा कि उपन्यास की समानता एक रंग-बिरंगे सुन्दर कालीन से की जा सकती है । उसका उतार-चढ़ाव एक सुन्दर स्वर लहरी के समान ही होता है ।

अतएव यह कहा जा सकता है कि उपन्यास में भलीभाँति विकसित शिल्प विधि, कथा, काल, स्थान, दर्शन, जीवन के मूल्य आदि होते हैं, जब कि कल्पना-

---

१. कंनसाइज आक्सफर्ड डिक्शनरी ।

२. ई० एम० फार्सटर, ऐस्पेक्टस् आफ नावेल ।

मूलक कथा का इन तत्वों से कोई प्रयोजन नहीं है। कल्पना प्रभूत रचना में इनमें से किसी को स्थान नहीं मिलता। ज्यों ही एक काल्पनिक रचना में चरित्र-चित्रण और पूर्व निर्धारित कथावस्तु पर जीवन की वास्तविक झाँकी का प्रदर्शन होता है वैसे ही यह रचना उपन्यास का रूप ग्रहण कर लेती है। बिना इन गुणों के कोई रचना काल्पनिक रचना या गल्प के स्तर से ऊपर नहीं उठ पाती।

उपन्यास के मुख्य अंगों की विवेचना इतनी जटिल रही है कि उनकी व्याख्या करना कठिन है। भिन्न-भिन्न व्यक्ति भिन्न-भिन्न उत्तर देंगे और सब पर विचार करना लगभग असम्भव है। किन्तु डब्लू० एच० हडसन और ई० एम० फार्सटर की उपन्यास की परिभाषा में उसके तत्वों की सम्यक विवेचना की गयी है। इन्हीं दो लेखकों के निर्णयों के आधार पर विचार करना पर्याप्त होगा। ये दोनों विद्वान उच्चकोटि के समालोचक हैं और हम उनकी पुस्तकों से कुछ उदाहरण देकर अपना मत प्रकट करेंगे।

उपन्यास का ढाँचा बड़ा जटिल होता है। इसी कारण उपन्यास साहित्य की सबसे जटिल शाखा है। इसके लिए न केवल एक बड़ी पृष्ठभूमि की आवश्यकता है बल्कि रचना कौशल और उचित सन्तुलन बनाए रखने की योग्यता की भी। रचना और संतुलन की योग्यता कहानी का ताना-बाना बुनने के लिए आवश्यक है। हम साहसपूर्वक कह सकते हैं कि वह व्यक्ति जो कथावस्तु की उद्भावना कर सकते हैं उपन्यासकार होते हैं। यह कथन बहुत अस्पष्ट प्रतीत होता है। उपन्यासकार केवल वह नहीं है जो एक कथावस्तु की उद्भावना कर ले, अपितु उपन्यासकार वह है जो उस कथावस्तु को उपन्यास के ढाँचे में ढाल सके। उद्देश्य रूपी शक्ति ही कथानक रूपी पोत को संचालित करती है। वस्तुतः कथानक एक उच्च कोटि के जीव तत्व के समान है। कथानक घटनाओं का वृत्तांत है जिसमें कारण-कार्य सम्बन्ध पर अधिक बल दिया जाता है। डब्लू० एच० हडसन ने कथानक को दो वर्गों में बाँटा है : अ. शिथिल या असम्बद्ध कथानक और आ. सम्बद्ध कथानक। असम्बद्ध (शिथिल) कथानक में पात्रों तथा घटनाओं में किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं होता। सम्बद्ध कथानक में उल्लिखित घटनाओं तथा पात्रों में सुस्पष्ट सम्बन्ध होता है। शिथिल कथानक में विभिन्न घटनायें तथा परिस्थितियाँ नायक के चारों ओर घूमती रहती हैं। सम्बद्ध कथानक में भिन्न-भिन्न घटनायें किसी सुनिश्चित कथानक की अभिन्न अंग होती हैं।

मुख्य कथानक तथा भिन्न घटनायें हमें उपन्यास के ढाँचे का ज्ञान कराती हैं। किसी भी कथानक में कुछ पात्र अधिक महत्वपूर्ण होते हैं और कुछ कम।

घटनायें इन्हीं पात्रों के चारों ओर केन्द्रित रहनी चाहिए। पात्रों के कार्य, व्यवहार और विचारों के साथ कथावस्तु भी आगे बढ़ती जाती है। कथावस्तु के विकास में चरित्र-चित्रण की समस्या आती है। इन पात्रों में हमारी कल्पना के अनुसार वास्तविकता होनी चाहिए। वे काल्पनिक होते हुए भी जीवन्त होने चाहिए। उपन्यासकार को पात्र उस समाज से चुनने चाहिए जिसमें वह रहते हैं। उनकी क्रियायें और प्रतिक्रियायें एक साधारण मनुष्य की भाँति होनी चाहिए। पात्रों द्वारा अपने को वातावरण के अनुकूल ढालने में हमें जीवन के उस संघर्ष का दिग्दर्शन होना चाहिए जिसका सामना हम सबको करना पड़ता है। पात्रों के जीवन के विकास में भिन्न-भिन्न अवस्थायें होनी चाहिए, क्योंकि विकास जीवन का सामान्य नियम है। यदि कथाकार किसी पात्र के कुछ असाधारण व्यवहार का चित्रण करना चाहता है तो उसे उसी के अनुसार परिस्थितियों का सृजन करके उसका औचित्य सिद्ध करना चाहिए। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि पात्रों का व्यवहार उपन्यास की घटनाओं के अनुसार होना चाहिए।

पात्रों के दो भेद हो सकते हैं : प्रथम समतल और द्वितीय वृत्ताकार। समतल पात्र की रचना किसी एक विचार या गुण के चतुर्दिक होती है। प्रेमचन्द के समतल पात्रों पर हम छठे अध्याय में विचार करेंगे। वृत्ताकार की कसौटी यह है कि उसमें हमें प्रभावपूर्ण ढंग से चकित करने की क्षमता होनी चाहिए। वर्तमान साहित्यिक रुचि के लोग समतल पात्रों की अपेक्षा वृत्ताकार पात्र अधिक पसन्द करते हैं।

कथानक और पात्र में परस्पर सम्बन्ध होता है। कथोपकथन के विकास में हमें इस सम्बन्ध का आभास मिलता है। कथोपकथन की सहायता से ही कथानक का विकास होता है। कथोपकथन वास्तविक, उपयुक्त तथा नाटकीय होना चाहिए। इसे कहानी का सजीव तत्व कहना चाहिए। संवादों को कथानक की वास्तविक आवश्यकताओं का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए।

कहानी को समय और स्थान में चलना चाहिए। हडसन के शब्दों में "पात्रों को कहीं और किसी काल में कार्य संपादन करके दुःख उठाना चाहिए और इस प्रकार हमारे सामने एक दृश्य और कार्य आ जाता है।" 'कार्य' के कारण ही स्थान और समय का परिवर्तन होता है। उपन्यास में 'कार्य' ही आकर्षण का केन्द्र होता है।

लेखक तीन रूपों में से किसी भी रूप में कहानी कह सकता है। इसे हम उसकी प्रस्तुत करने की कला कह सकते हैं। लेखक इन तीन रूपों में से किसी

को अपना सकता है—१. इतिहासकार का ढंग अर्थात् घटनाओं का उल्लेख बाह्य पर्यवेक्षक के रूप से; २. वह प्रथम पुरुष में लिख सकता है, अपने को नायक या नायिका मान कर; ३. पत्र लेखन प्रणाली। उपन्यासकार का व्यक्तित्व ऐसा होना चाहिए कि वह सब प्रकार के पात्र तथा सब प्रकार की घटनाओं का समुचित रूप से सृजन कर सके। इसी कारण उपन्यासकार की कला सबसे कठिन है।

उपन्यास का ढांचा पूरा हो गया। किन्तु बिना किसी जीवन-दर्शन या जीवन की समालोचना के कथानक कथानक नहीं है। उपन्यासकार को जीवन के दार्शनिक अंग पर अवश्य प्रकाश डालना चाहिए। कथा-साहित्य के समस्त तत्वों में उसके जीवन के दर्शन का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। पर्सी ल्यूबहाक का कथन है कि उपन्यास जीवन का चित्र है।[1]

जीवन एक यथार्थ है। अन्य कलाकारों की भांति उपन्यासकार जीवन की पद्धतियों पर विचार करता है। वह जिन लोगों के सम्पर्क में आता है उनकी सभी भावनाओं, प्रयोजनों, विचारों आदि का अध्ययन एवं उनका विश्लेषण करता है और तब अपनी रचनाओं में उन सबसे सजीव चित्र खींचता है। कलाकार का सूक्ष्म निरीक्षण, जीवन के अनुभव, उसकी भावनाएँ तथा उसके विश्वास एवं धारणा पात्रों की सहायता से जीवन की कहानी को अंतिम रूप देते हैं। उपन्यासकार के विषय में हम उसके किसी पात्र अथवा जीवन के उल्लेख की विधि जान सकते हैं। सभी महान् उपन्यासकार जीवन की समस्याओं के प्रति सजग और सतर्क विचारक रहे हैं, और वे अपनी रचनाओं में अपने व्यक्तित्व का परिचय भी देते हैं।

जो कुछ ऊपर लिखा जा चुका है उससे उपन्यास का विस्तृत अध्ययन नहीं होता। यदि हम कानून की शब्दावली का प्रयोग करें तो हम कह सकते हैं कि हमारा प्रयास केवल अपराधारोपण का रहा है न कि विवाद पर ध्यान देकर निर्णय देने का। यद्यपि हमारा प्रयास उपन्यास की पूर्ण व्याख्या करने में अपर्याप्त है तो भी यह आगे के विचार के लिए पृष्ठभूमि का काम देगा।

हमने साहित्य के एक अंग के रूप में उपन्यास के स्वरूप निर्धारण का प्रयास किया है। अब हम उस कसौटी का अवलोकन करेंगे जिससे अच्छे उपन्यास के गुणों का निर्धारण हो सके। अच्छे उपन्यास का मूल्यांकन पाठक की रुचि तथा

---

१. दि क्रैफ्ट आफ फिक्शन, पर्सी ल्यूबहाक।

मन पर निर्भर करता है। हडसन का कथन है कि कोई उपन्यास वास्तव में तभी महान् होगा जब उसकी नींव उन बातों पर विस्तार एवं गहराई से डाली गई हो जो मानव जाति के संघर्ष तथा भाग्य पर प्रभाव डालती हों।[1] संक्षेप में लेखक यह बतलाना चाहता है कि एक महान् उपन्यास ऐसी अभिव्यक्ति है जो मानव जाति के सामान्य अनुभवों का चित्र हमारे सामने उपस्थित करती है। हडसन का यह दृष्टिकोण ठीक है। फार्सटर यह नहीं बताते कि एक उपन्यास वास्तव में महान् क्यों होता है। यद्यपि वह यह कहते हैं कि टाल्स्टाय के समान कोई अंग्रेजी उपन्यासकार महान् नहीं है। टाल्स्टाय ने मनुष्य के घरेलू तथा वीरोचित जीवन का पूर्ण चित्र हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। दोस्तोंवेस्की के समान किसी अंग्रेजी उपन्यासकार ने मनुष्य की अन्तरात्मा का उतना गहराई से उद्घाटन नहीं किया है। मार्सेल प्रोउस्ट की भाँति किसी देश का कोई भी उपन्यासकार आधुनिक काल की चेतना का इतना सफल विश्लेषण नहीं कर सका है। इनकी विजय के सम्मुख हमें रुकना ही पड़ेगा। अंग्रेजी की कविता किसी से कम नहीं है। यह परिमाण तथा गुण में अग्रणी है। किन्तु अंग्रेजी का कथा-साहित्य वैसा नहीं है। उसकी रचनाएँ सर्वोत्तम नहीं हैं। इसे अस्वीकार करने पर हम प्रान्तीयता के दोषी हो जाते हैं।[2] फार्सटर के अनुसार महान् उपन्यासकार वही कहा जा सकता है जिसमें टाल्स्टाय, दोस्तोवेस्की और मार्सेल प्रोउस्ट के गुणों का सम्मिश्रण हो। दूसरे शब्दों में फार्सटर के अनुसार एक महान् उपन्यास में तीन विशेषताएँ होनी चाहिए: १. मानव जीवन का सच्चा चित्र; २. मानव आत्मा की खोज और ३. आधुनिक काल की नव चेतना का चित्रण।

निःसन्देह एक कुशल उपन्यासकार में इन तीन गुणों का होना अत्यावश्यक है। सच तो यह है कि फार्सटर का प्रयास रूस के इन महान् साहित्यकारों की उत्कृष्टता, अंग्रेजी के उपन्यासकारों की समानता में सिद्ध करना है। परन्तु उसके द्वारा बताए गुणों को सामान्य रूप से उपन्यास की उत्कृष्टता की कसौटी नहीं माना जा सकता। इसका कारण यह है कि प्रत्येक उपन्यास न्यूनाधिक रूप में मनुष्य के जीवन की झाँकी, उसकी अन्तरात्मा तथा काल का चित्र हमारे सम्मुख रखता है। कलाकार की महानता इन तीन गुणों के स्वरूप को समझने और इनका अपनी रचना में उचित और कलात्मक ढंग से समावेश करने में है।

---

१. इन्ट्रोडक्शन टु दि स्टडी आफ लिटरेचर, हडसन;

२. ऐस्पेक्ट्स आफ दि नावेल, ले० ई० एम० फार्सटर;

जब मनुष्य के आन्तरिक और बाह्य जीवन का ताना-बाना समय की चेतना के साथ बुना जाता है तब उपन्यास मनुष्य के जीवन की आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति करने वाली एक जीवित शक्ति बन जाता है।

रेल्फ फाक्स की निम्नलिखित पंक्तियाँ विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं क्योंकि वह उपन्यास पर एक सत्यान्वेषक और विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण से विचार करता है। सत्रहवीं शताब्दी में महान् उपन्यासों की रचना नहीं हुई किन्तु उस शताब्दी में ऐसे दार्शनिकों का जन्म हुआ जिनके कारण आगामी शताब्दी में महत्वपूर्ण कार्य हुए। इन कारणों से मैं इस अनुभव से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता कि अँग्रेजी-दर्शन में अठारहवीं शताब्दी सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। अंग्रेजी दर्शन की उत्पत्ति हमारे देश में मध्यम वर्ग की क्रान्ति के कारण हुई थी और यह अत्यधिक भौतिकवादी थी। भौतिकवाद ग्रेट ब्रिटेन का सच्चा बेटा है। 'ऐसा मार्क्स का कथन है।' अंग्रेज दार्शनिक डन्स स्काट्स ने कहा 'पदार्थ सोच नहीं सकता।' प्रथम भावनावादी वर्कले ने लाक के दर्शन को पलट दिया, जिस प्रकार कि स्टर्न ने रेबेलीज़ के पदार्थवाद को तथा सरवेन्टीज़ की कल्पना को भावमय कर दिया था।

रेबले और सरवेन्टीज़, जो कि उपन्यास के वास्तविक नींव डालने वाले थे, अपने बाद में आने वाले व्यक्तियों की अपेक्षा इस आशय में अधिक भाग्यशाली थे क्योंकि वे उस नये समाज में नहीं रहते थे जिसके आगमन का उन्होंने उद्घोष किया था। वे संक्रान्ति काल के व्यक्ति थे, वे लोग क्रान्ति के झंझावातों के शिशु थे। इन तूफानों ने मध्ययुगीन सामन्तवादी शक्ति को ध्वस्त कर दिया था।

उपन्यास एक अस्त्र था, ऐसा नहीं कि केवल राजनीतिक प्रपत्र (पैम्फलेट) के रूप में कार्य करने वाला अस्त्र, वरन् अपने जन्म और आरम्भिक स्वास्थ्यपूर्ण वृद्धि के प्रथम चरण में उपन्यास ऐसा अस्त्र था जिसके द्वारा मध्यमवर्ग के कल्पनाशील प्रतिनिधियों ने नए स्त्री-पुरुष और समाज का परीक्षण किया, जिसमें वे रहते थे। १८वीं शताब्दी के लेखकों के लिए यह बड़ी महत्वपूर्ण बात है।[1]

उपन्यास के अध्ययन के लिए ये पंक्तियाँ हमें बिल्कुल नया दृष्टिकोण प्रदान करती हैं। रेल्फ फाक्स का कथन है कि अपने प्रारम्भ काल में उपन्यास उस जीवन के चित्र थे जो कि पुरुष और स्त्री मध्यम वर्ग के नये जीवन

---

१. दि नावेल एन्ड दि पीपुल, रेल्फ़ फाक्स;

में बिता रहे थे। यह समाज सामन्तवाद के बाद के काल का समाज था। बहुत काल तक उपन्यास का यही स्वरूप रहा। जब मध्य वर्ग में पतन के चिह्न साधारण जन को भी दृष्टिगोचर होने लगे तब इस साहित्यिक रूप ने नया मार्ग ग्रहण किया। रेल्फ फाक्स ने आगे कहा है कि इस पर हमारे समय के मध्यम वर्ग का प्रभाव पड़ा है। उसके मतानुसार यह कहा जा सकता है कि एक महान् उपन्यास उस काल का स्पष्ट चित्र खींचता है, जिसमें लिखा जाता है। दूसरी बात यह है कि एक महान् उपन्यास के समक्ष एक महान् उद्देश्य भी हो।

एक अच्छे उपन्यास की विशेषताओं की यह विवेचना फार्सटर के शब्दों में इस प्रकार की जा सकती है—उन्होंने हमारी रुचियों और अरुचियों को ही उपन्यास की अन्तिम कसौटी माना है। पर सच तो यह है कि हमारी रुचि और अरुचि की भी सामाजिक विवेचना की जा सकती है। उनके कथनानुसार, "जिस प्रकार कि हमारे दोस्तों तथा अन्य किसी की प्रिय वस्तु की परख हमारे उसके प्रति अनुराग द्वारा होती है उसी भाँति उपन्यास की कसौटी भी हमारे उसके प्रति प्रेम के द्वारा होती है।"

इस भूमिका के उपरान्त आधुनिक दो प्रवृत्तियों को बताना आवश्यक है। ये प्रवृतियाँ मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और यथार्थवादी हैं। हम इस बात को अस्वीकार नहीं कर सकते कि मनोवैज्ञानिक विश्लेषण यथार्थवादी विधि के पूर्णतया विपरीत है किन्तु यहाँ हम उन्हें व्यक्तित्व तथा सामाजिक ढंग से पात्रों तथा घटनाओं की ओर देखने के अर्थ में प्रयुक्त कर रहे हैं। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण तथा यथार्थवाद उपन्यास के अध्ययन में उस सीमा तक प्रयुक्त हो सकते हैं जहाँ तक चरित्र-चित्रण तथा कार्य के विकास का सम्बन्ध है। यह स्मरण रखना चाहिए कि मनोवैज्ञानिक विश्लेषण यथार्थवाद की अपेक्षा कम महत्वपूर्ण कार्य करता है। यथार्थवाद शब्द का अर्थ यों तो संकुचित होता है पर जब यह किसी उपन्यास के लेखक या समालोचक की कसौटी बन जाता है तब उसका कार्य अधिक व्यापक हो जाता है। यथार्थवाद उपन्यास के प्रत्येक तत्व पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का क्षेत्र इसलिए संकुचित है क्योंकि इसका मुख्य सम्बन्ध चरित्र-चित्रण की कला से है। चरित्र-चित्रण की कला का क्षेत्र इतना सीमित नहीं, क्योंकि इसमें पात्र का विकास, उसके कार्य और कथोपकथन का समावेश होता है। अतएव चरित्र-चित्रण की कला को छोड़ कर मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का उपयोग उपन्यास के अन्य तत्वों में बहुत कम होता है।

मनोविज्ञानवेत्ताओं के अनुसार, जिनमें प्रत्येक विवरण पर स्वयम् मतैक्य नहीं है, अचेतन किसी मनुष्य के कार्य और व्यवहार पर इस प्रकार शासन करता है कि उसके व्यवहारों का कारण समझना संभव नहीं हो पाता है।

अचेतन के प्रभाव से मनुष्य असाधारण ढंग से सोचता और कार्य करता है। इस अचेतन का ज्ञान तभी हो सकता है जब हमें मनुष्य की आकांक्षाओं, उसकी कुंठाओं तथा दमित यौन भावना की जानकारी हो सके। ऐसे कई दृष्टान्त हैं जब लेखकों ने मनोविश्लेषण में दक्ष हुए बिना या जीवन में अचेतन के प्रभाव का ज्ञान प्राप्त किये बिना ही पात्रों का चरित्र-चित्रण किया है; किन्तु एक समालोचक, जो पात्रों के व्यवहार का अध्ययन करने में दक्ष है, अचेतन के अन्धकार युक्त साम्राज्य के रहस्य को अवश्य बतला देगा। चरित्र-चित्रण में अवचेतन और अचेतन मन का कितनी दक्षता से प्रयोग हुआ है इसका पता एक निपुण समालोचक निश्चित मापदण्डों की सहायता से कर सकता है।

मनोविश्लेषण मानव मस्तिष्क के अवचेतन का अध्ययन है। अंग्रेजी साहित्य में डोरेथी रिचर्डसन और जेम्स ज्वायस उपन्यास में चैतन्य-धारा के आन्दोलन (स्ट्रीम ऑफ कान्शेसनेस मूवमेन्ट) के दो सबसे प्रमुख लेखक हैं। चैतन्य-धारा के सम्बन्ध में बीच ने अपने ग्रन्थ 'ट्वेन्टीएथ सेंचुरी टेकनिक ऑफ फ़िकशन' में बतलाया है कि असामान्य पात्रों के चरित्र-चित्रण के लिए यह एक अत्यन्त उपयोगी विधि है। उपन्यास लेखक को यह पात्र के व्यवहार का क्रमिक विकास समझाने में भी सहायता देती है। यह विधि किसी पात्र के किसी विशेष कार्य का प्रारम्भ और अन्त दिखाती है अथवा किसी स्थिति को पूर्ण रूप से स्पष्ट कर देती है। पात्रों के मन की दशा का स्पष्ट चित्रण भी इसके द्वारा भली भाँति हो सकता है।

उपन्यास के अध्ययन में मनोविश्लेषण की अपेक्षा यथार्थवाद का स्थान अधिक महत्वपूर्ण है। इसका स्वरूप अत्यन्त जटिल है। साधारणतया हम उस कलाकार को यथार्थवादी कहते हैं जो वस्तुस्थिति तथा घटनाओं को उनके यथार्थ रूप में देखता और उनका उसी रूप में उल्लेख कर देता है। परन्तु वस्तुस्थिति को सही परिप्रेक्ष्य में देखना अत्यन्त कठिन है। लेखक को इसके लिए अत्यन्त जटिल मानसिक और भौतिक जगत का निरीक्षण करना पड़ता है जिसमें व्यक्ति, संस्थाएँ, घटनाएँ, कारण और कार्य सम्बन्ध के साथ ही व्यक्ति का प्रकृति और समाज से संघर्ष, उसके दुःख, उसकी यौन इच्छाएँ और शक्ति प्राप्ति की आकांक्षा तथा ऐसी ही अनेकों भावनाएँ और प्रवृत्तियाँ निहित होती हैं और जो लेखक

के मानस को उपन्यास के लिए सामग्री प्रदान करती हैं। यथार्थवाद वस्तुतः जीवन के प्रत्येक अंग का दार्शनिक निरीक्षण करता है।

यथार्थ स्वतः पूर्ण भाव नहीं है। इसका अर्थ यह नहीं है कि लेखक अपने उपन्यास में अंतिम सत्य पर प्रकाश डाले। यदि वह उन नियमों का पता लगाने में सफल होता है जिनका प्रभाव जीवन के विकास तथा संचालन पर पड़ता है और अपनी कहानी की रचना वह इस प्रकार करता है कि मानव-जीवन के क्रिया-कलाप कहानी के विकास में परिलक्षित हो जायँ और यदि वह उस मार्ग की ओर संकेत करे जो सद्भावना और उन्नति की ओर ले जाय और मानव जाति के लिये न्याय तथा सम्मान का मार्ग प्रशस्त करे तो उसकी गणना यथार्थ-वादियों में होगी। जीवन को आत्मनिष्ठ और व्यक्तिनिष्ठ भागों में विभाजित नहीं किया जा सकता।

यथार्थवादी जानता है कि किसी मनुष्य की आर्थिक दशा का प्रभाव उसकी मानसिक दशा तथा समाज पर भी पड़ता है। आर्थिक दशा और मानसिक अवस्था एक दूसरे को प्रभावित करती रहती हैं।

नाटक सम्बन्धी एक पुस्तक से उद्धृत एक अवतरण यथार्थवाद के स्वरूप को भलीभाँति स्पष्ट करता है। "यथार्थवादी साहित्यकार का दृष्टिकोण एक वैज्ञानिक का दृष्टिकोण होता है। एक वैज्ञानिक की ही भाँति यथार्थवादी साहित्यकार भी बौद्धिक या नैतिक रूढ़ियों और पूर्वाग्रह से ग्रस्त नहीं होता। साहित्यकार को जीवन का चित्रण उसी प्रकार करना चाहिए जिस प्रकार एक वैज्ञानिक जीवन का अवलोकन करता है। वैज्ञानिक की ही तरह यथार्थवादी के लिए सम्पूर्ण सृष्टि के लिए मनुष्य भी एक यन्त्र के समान है। उसका व्यक्तित्व, वातावरण और वंश परम्परा से निर्मित होता है। मनुष्य एक मनोभौतिक जीव है। उसका व्यवहार और चरित्र स्वतन्त्र इच्छा शक्ति द्वारा संचालित नहीं होता परन्तु वह उन भौतिक और रासायनिक परिस्थितियों की देन है जिन पर उसका स्वयं कोई नियंत्रण नहीं होता। यथार्थवाद की उच्चतम सीमा तक पहुँच जाने तक उसे नैतिकता से कोई सरोकार नहीं रहता। यथार्थवादी लेखक द्वारा जीवन के चित्रण में वैज्ञानिक विधि की-सी निष्पक्षता होती है। ... राइटिस्ट समा-लोचक वैज्ञानिक दृष्टिकोण को पूर्णतया नहीं अपनाता है और इसलिए उसका दृष्टिकोण उसके चरित्रों के प्रति वस्तुतः भावात्मक होता है और वह उनके चरित्रों के व्यवहार का निर्णय अपने समूह की नैतिकता के आधार पर

करता है ।"[१]

यथार्थवाद की दो शाखाएँ हैं : दाहिनी और बायीं । दाहिनी शाखा के विषय में ऊपर लिखा जा चुका है, परन्तु बायीं शाखा वाले यथार्थवादी सामाजिक यथार्थ में ही विश्वास करते हैं और उनकी कृतियों में उसी की झलक होती है । इस दृष्टिकोण से अब हम भारतीय समाज का संक्षिप्त सर्वेक्षण करते हैं । आज का समाज वर्ग संघर्ष तथा मुट्ठी भर धनिकों के शोषण का प्रतिफल है । यह शक्तियाँ किसी के सामाजिक स्तर और सामाजिक चेतना को निर्धारित करती हैं । पारिवारिक इकाई ही केवल ऐसा अंग है जो किसी व्यक्ति की भावी सफलता या असफलता को निश्चित करती है । उत्पादन तथा वितरण की पद्धति मनुष्य जाति को उन दो वर्गों में विभाजित करती है जो कि एक दूसरे के विरुद्ध मोर्चा लेते हैं । इन दोनों वर्गों की रुचि और अरुचि में काफी अन्तर होता है । उत्पादन के माध्यम में परिवर्तन करने से वर्गों के सम्बन्ध में भी अन्तर आ जाता है । इस प्रकार लोगों के आर्थिक जीवन में परिवर्तन करने से उसके आधार पर निर्मित सामाजिक संगठन तथा संरचना में भी परिवर्तन आ जाते हैं । इस सत्य को जीवन की आर्थिक यथार्थता कहा जा सकता है । यथार्थवादी उपन्यासकार को आर्थिक यथार्थता का ज्ञान होता है ।

काम भावना का चित्रण भी उपन्यास कला के लिए अत्यावश्यक है क्योंकि पात्र कभी-कभी अतिशय काम भावना से ग्रस्त होते हैं तथा कभी ऐसे पात्र भी होते हैं जिनके व्यक्तित्व में इस भावना के उत्कृष्ट स्वरूप की झलक देखने को मिलती है । व्यावहारिक जीवन में प्रेम सम्बन्ध पसन्द नहीं किए जाते हैं । यदि कोई व्यक्ति अपनी प्रेयसी से विवाह कर लेता है तो बिरादरी उसका परित्याग कर देती है । कुंवारी लड़कियों तथा विधवा स्त्रियों का प्रेम प्रसंग भी समाज में बुरा समझा जाता है । प्रेमचन्द ने इन बुराइयों को मिटाने का प्रयास किया है ।

सामाजिक दृष्टिकोण से प्रत्येक भारतीय ग्रामवासी को मर्यादा या आत्म-सम्मान रूपी वरदान प्राप्त है । गाँव के पंचों को सीधे ईश्वर से शक्ति मिलती है । अतएव इनकी आराधना आवश्यक है । एक हिन्दू मरते दम तक हिन्दू संयुक्त परिवार संस्था की रक्षा एवं उसका सम्मान करता है । प्राचीन काल के रिवाजों-परम्पराओं और अर्ध धार्मिक संस्थाओं को इस समय में भी वही

---

१. दि आर्ट आफ ड्रामा, बेन्टले और मिलेट्स, पृ० १४६, १४७;

मान्यता प्राप्त है, जब कि उनमें पूर्ण परिवर्तन की आवश्यकता है। यथार्थवादी दृष्टिकोण से यह उचित नहीं है। यथार्थवादी उपन्यासकार समाज में व्याप्त इन बुराइयों की हँसी उड़ाता है।

अब मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण लिया जाता है। मानव का आत्मप्रधान जीवन मनोविज्ञान की एक विशिष्ट शाखा है। एक उपन्यासकार को, जो यथार्थ-वादी होने का दावा करता है, उसको मनुष्य के मस्तिष्क के कार्य करने के ढंग का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। उसे यह भी जानना चाहिए कि पुरुष या स्त्री के सोचने, अनुभव करने या कार्य करने का क्या ढंग है। उपन्यासकार को वास्तव में मानव स्वभाव का गहन अध्ययन करना चाहिए। उसके अनुभव गहरे तथा उसके अपने निरीक्षणों के परिणाम होने चाहिए। जब तक किसी लेखक को मानव व्यवहार का वास्तविक ज्ञान नहीं होता वह यथार्थ तथा सामान्य चरित्र का सृजन नहीं कर सकता। यदि मानव व्यवहार के ज्ञान के बिना वह किसी चरित्र का सृजन करता है तो उसके पात्र का चरित्र मानव व्यवहार से परे काल्पनिक तथा कृत्रिम होगा।

उपन्यास में जीवन का यथार्थवादी चित्र खींचने के लिये यह आवश्यक है कि उपन्यासकार की विचारधारा में किसी प्रकार का अवरोध या अस्पष्टता न हो। उसके सोचने का ढंग सामान्य तथा बुद्धिमत्तापूर्ण होना चाहिए। उसके उपन्यास में निहित जीवन-दर्शन अथवा समाज के प्रति उसकी आलोचना उचित और तर्कसंगत होनी चाहिए। महान उपन्यासकार वही है, जो जीवन की केवल आलोचना ही नहीं करता बल्कि जीवन सम्बन्धी प्रयोग भी करता है और परिश्रमशील मानव के लिए रहने का अच्छा ढंग भी बतलाता है। फिलिप हेन्डरसन का कथन है, "एक क्रान्तिकारी लेखक का काम केवल यही नहीं है कि वह सम्पूर्ण जीवन को देखे बल्कि वह आधुनिक काल के संघर्षों को समझे और पता लगाये कि मानव जीवन कौन-सा रूप धारण कर रहा है। उसकी दृष्टि एक साधारण लेखक की अपेक्षा पूर्ण तथा सर्वग्राही होनी चाहिए जो इस संसार को अपने व्यक्तित्व से आँकता है।"[1]

जहाँ तक विदेशी भाषाओं के उपन्यास का सम्बन्ध है उनकी समालोचना की कसौटी अब बहुत आगे बढ़ चुकी है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्रेमचन्द के कुछ उपन्यास इस कसौटी पर खरे उतरते हैं। यहाँ यह बताना केवल पुनरुक्ति

---

१. नावेल टु डे, फिलिप हेन्डरसन;

ही होगी कि समालोचना की इस ऊँची कसौटी का क्या अर्थ है। अतः हम केवल उन दो प्रवृत्तियों का उल्लेख करते हैं जिनके अनुसार आजकल उपन्यासों की समीक्षा होती है। प्रकृतिवाद कोई दोष नहीं माना जायगा, यदि यहभाव के आधार पर साहित्य के परीक्षण का परिणाम नहीं है। प्रेमचन्द की बाद की कृतियों के विश्लेषण से पता चलता है कि उपन्यासकार उस बात को महसूस कर रहा है जिसे जेम्स टी० फेरेल समाजवादी यथार्थवाद कहता है।[1] कार्ल रैडेक लिखता है कि सामाजिक यथार्थवाद का अर्थ वास्तविकता जानने में ही नहीं है वरन् यह जानने में है कि यह किस दिशा में गतिशील है। यह समाजवाद विश्व के किसान मजदूरों की विजय की ओर अग्रसर है। कोई रचना समाजवादी यथार्थवादी तब कही जा सकती है जब उन संघर्षों का चित्रण करती है जो कलाकार ने अपने जीवन में देखे और अनुभव किये हैं। मुंशी प्रेमचन्द के लिए यथार्थवादी समाजवाद कोई नई वस्तु नहीं है। ग़ालिब और मौलाना हाली, सर इकबाल तथा जयशंकर प्रसाद और कौशिक आदि पर भी इसका पर्याप्त प्रभाव था। यदि हम प्रेमचन्द के उपन्यासों का अध्ययन उपन्यास-कला की आधुनिकतम कसौटी से करना चाहते हैं, तो उक्त विचार विमर्श अत्यावश्यक है।

□□

१. ए नोट आन लिटरेरी क्रिटिसिज्म, टी० फेरेल ;

६ | प्रेमचन्द के पूर्व उर्दू उपन्यास

प्रेमचन्द के पूर्व उर्दू उपन्यास

कथा-साहित्य की एक विशेष शाखा, जिसे उपन्यास कहते है, अपने आधुनिक रूप मे लगभग दो शताब्दी पुरानी है। परन्तु उपन्यास के विकास के लक्षण स्वय कथा-साहित्य के विकास मे ढूँढे जा सकते है। प्रागैतिहासिक युग की दन्त कथाओ और अलौकिक आख्यानो एव मध्यकालीन प्रेम कहानियो (रोमास) का स्थान अब उपन्यास ने ले लिया है। शाइस्ता अख्तर बानू सुहरावर्दी ने इस परिवर्तन का विश्लेषण इन शब्दो मे किया है —

"जीवन के प्रति अति-यथार्थवादी दृष्टिकोण के परिणामस्वरूप ही उपन्यास अस्तित्व मे आया और जैसा हम देखते है अपने प्रारम्भ से ही वह जनवादी रहा है, क्योकि यह बडे लोगो से सम्बन्धित रोमास की अपेक्षा साधारण का ही वर्णन करता है।"[1] परन्तु प्रश्न यह है कि जीवन के प्रति यथार्थवादी दृष्टिकोण किस प्रकार का हो, क्या वैसा जैसा भारतीयो ने १६ वी शताब्दी मे पश्चिम के सम्पर्क से विकसित किया था, और जो उर्दू उपन्यासो के विकास मे एक महत्वपूर्ण अग कहा जाता है ?

इसमे कोई सन्देह नही कि बीसवी शताब्दी के यथार्थवाद सम्बन्धी विचार उन्नीसवी शताब्दी के यथार्थवाद सम्बन्धी विचारो से बिल्कुल भिन्न हैं। पिछली शताब्दी के मध्य मे हुए विप्लव (क्रान्ति) ने एक वर्ग के लोगो को जीवन के नये रास्तो के प्रति सचेत कर दिया था और यह चेतना बदलती हुई आर्थिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक स्थितियो के अनुभव पर ही आधारित थी। यहाँ की सामन्तीय परम्पराये पश्चिम वालो की व्यापारिक शक्ति से आहत होकर दब-सी गई थी, जो यहाँ बस जाने के लिए आए थे। विप्लव के सघर्षों ने एक नए मध्यम वर्ग को जन्म दिया जो सामन्तीय मध्यम वर्ग से बिल्कुल भिन्न था। इस नये वर्ग ने पश्चिमी सभ्यता और रहन-सहन को अपना लिया था। भारतीय राष्ट्रीय तथा अन्य सुधारवादी आन्दोलनो को भी मध्यम वर्ग के उत्थान मे थोडा-बहुत श्रेय दिया जा सकता है।

अतएव आज का प्रचलित यथार्थवाद और क्रान्ति के बाद नए मध्यम वर्ग

---

१ ए क्रिटिकल सर्वे आफ दि डेवलपमेंट आफ दि उर्दू नावेल ऐण्ड शार्ट स्टोरी, शाइस्ता अख्तर बानू सुहरावर्दी, पृ० ३,

द्वारा प्रतिपादित यथार्थवाद, दो पृथक विचारधारायें हैं। इस प्रकार, भारत में १९ वीं शताब्दी को प्रजातन्त्रीय तत्वों से युक्त पूर्ण यथार्थवादी युग कहना भारतीय इतिहास का अनुचित अध्ययन होगा। वह युग यथार्थवादी था, परन्तु पूर्ण रूप से भिन्न अर्थों में।

जीवन के प्रति एक यथार्थवादी दृष्टिकोण निस्सन्देह एक ऐसा तथ्य है जो उपन्यास के जन्म के लिए जिम्मेदार है, क्योंकि आज का उपन्यास, जीवन के प्रति यथार्थवादी दृष्टिकोण को व्यक्त करने का एक अत्यन्त सुगम साधन है। परन्तु साथ ही यह निश्चित नहीं किया जा सकता है कि यथार्थवादी दृष्टिकोण ही उपन्यास के जन्म का एकमात्र अथवा सबसे महत्वपूर्ण कारण है। राल्फ फाक्स ने बहुत ही स्पष्ट रूप से कहा है, "उपन्यास बुर्जुआ समाज के महाकाव्य का रूप है, और यह हमारे समय के बुर्जुआ समाज के पतन से प्रभावित प्रतीत होता है।"[1] उपन्यास, वर्ग चेतना का अभिव्यक्तिकरण रहा है जिसने बुर्जुआ समाज को प्रभावित किया है। समाज का यह वर्ग अपनी स्थिति को सुरक्षित रखने के लिए, बुराइयों को दूर करने के लिए और कुछ आचार निष्ठा सम्बन्धी तथा नैतिक सद्गुणों को प्राप्त करने के लिए एक सुदृढ़ स्थान चाहता था। "उपन्यास एक शस्त्र था, राजनीतिक प्रचार पुस्तिका के भद्दे आशय के रूप में नहीं, वरन् अपने उद्भव और प्रारम्भिक स्वस्थ विकास के युग में यह एक ऐसा शस्त्र था, जिसके द्वारा सर्वोत्तम, पूर्ण काल्पनिक बुर्जुआ प्रतिनिधि ने नये पुरुष और स्त्री तथा समाज का, जिसमें वह रहता था, परीक्षण किया।"[2] संसार के आर्थिक ढाँचे में, विशेषकर उत्पादन तथा वितरण के तरीकों में होने वाले विस्तृत और सर्वग्राही परिवर्तन ही जीवन और कला के दृष्टिकोण को परिवर्तित करने के जिम्मेदार हैं, इसलिए उपन्यास का उद्भव, मुख्य रूप से मध्यम वर्ग की वर्ग चेतना के अभिव्यक्तिकरण में और गौण रूप से लोगों के जीवन के प्रति यथार्थवादी दृष्टिकोण में निरूपित किया जा सकता है।

जैसे-जैसे समय बीतता गया, उर्दू उपन्यास की शिल्प-विधि (टेक्नीक) के क्षेत्र में भी पर्याप्त विकास हो गया। इस विषय के सुविधापूर्ण अध्ययन के लिए सम्पूर्ण काल को तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं। यह अध्ययन उपन्यासकार के रूप में प्रेमचन्द की कला को उपस्थित करने का एक प्रयास

---

१. नावेल ऐण्ड दि पीपुल, ले० राल्फ फाक्स ;

२. वही ;

मात्र है। उपन्यासकार के शिल्पी रूप और उपन्यास रचना की शिल्प-विधि (टेक्नीक) के गुण दोषों के सम्बन्ध में हम कुछ अच्छे आलोचकों के उद्धरण दे रहे हैं और तभी उपन्यास रचना के विकास का एक आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करना उचित होगा।

१. **प्रथम अवस्था** : १८०० ई० से पूर्व।

२. **द्वितीय अवस्था** : १८०० ई० से १८५७ ई० तक।

३. **तृतीय अवस्था** : १८५७ ई० से १९१४ ई० तक।

सन् १८०० ई० के पूर्व का काल उर्दू उपन्यास के इतिहास में अन्धकार युग कहा जा सकता है। उपन्यास रचना के विकास में इस काल की देन अत्यन्त अल्प है। इस काल का कथा साहित्य प्राचीनता लिए हुए है और रोमांटिक भूतकाल से सम्बन्ध रखता है। यह अधिकांश में फारसी कृतियों से अनुवादित किया गया था और इसका विषय मुख्य रूप से धार्मिक है। इसका अधिकांश कविताओं के रूप में मिलता है क्योंकि उन दिनों गद्य का कोई विकास नहीं हुआ था।

दूसरी अवस्था प्रथम की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है, यद्यपि उपन्यास की शिल्पविधि (टेक्नीक) के विकास में इस काल की भी कोई प्रत्यक्ष देन नहीं है। यद्यपि रूप (रचना) और विषय की विविधता किसी सीमा तक मिलती है फिर भी लेखकों द्वारा तत्वों के दृष्टिकोण में एक अद्भुत एकरूपता है। इस अवस्था के उपन्यासों में आज के औपन्यासिक तत्वों का अभाव है। उनकी कथावस्तु अत्यन्त शिथिल और कहीं-कहीं बहुत उलझी हुई है। उनमें कोई कार्य संकलन (unity of action) नहीं है परन्तु यदि कोई संकलन मिलता भी है तो वह बलात लादा हुआ-सा प्रतीत होता है। घटनाएँ न किसी कारणवश घटित होती हैं और न मुख्य कथावस्तु से उनका कोई सम्बन्ध ही होता है। चरित्र-चित्रण का अभाव भी खटकता है। इन कृतियों का उद्देश्य सिवाय नैतिकता का कुछ उपदेश देने के और कुछ नहीं है। प्रेम और साहस की कथायें और कहानियाँ ही अधिक संख्या में मिलती हैं। इस युग के कथा साहित्य में सर्वप्रसिद्ध कृतियाँ हैं: बाग ओ बहार, आराइश ए महफ़िल, मज़ाहेब ए इश्क (गुलबकावली), दास्तान ए अमीर हमज़ा इत्यादि। फ़िसान-ए-अज़ाएब इस युग की अन्तिम अवस्था की कृति है।[1] ये कहानियाँ उर्दू उपन्यास की अग्रदूत कही जा सकती हैं।

---

१. **बाग़ और बहार** मीर अम्मन देहलवी की १८०१ ई० में लिखी हुई महत्वपूर्ण कृति है। यह कलकत्ता के फोर्ट विलियम कालेज के तत्वावधान में

डॉ० राम बाबू सक्सेना इस काल की उपलब्धियो का वर्णन करते हुए कहते है, "उर्दू की आरम्भिक कहानियाँ या तो फारसी कृतियो अथवा फारसी के माध्यम से सस्कृत कृतियो की अनुवाद हैं अथवा उन्ही के विस्तृत रूपान्तर है।

लिखी गई थी। इसमे भिन्न-भिन्न रूपो मे पाँच कहानियाँ हैं और प्रत्येक कहानी एक-एक फकीर द्वारा कही गई है। पाँचवी, निस्सदेह बादशाह आजाद बख्त की कहानी है। प्रत्येक कहानी स्वतन्त्र और अपने मे पूर्ण है, इसलिए सब कहानियो मे आज़ाद बख्त की उपस्थिति और एक प्रकार की प्रभाव की समता के अतिरिक्त कोई एकता नही है। इसमे अलौकिक तत्वो का भी समावेश है परन्तु इतना अधिक नही कि आधुनिक रुचि के लिए अरुचिकर हो जाय। इसके अतिरिक्त अलौकिक तत्वो का समावेश धार्मिक विश्वासो का परिणाम है। इसके चरित्र (पात्र) जिन्दादिल, मनोरजक और पसन्द किए जाने वाले है।

आराइश-ए-महफिल के लेखक हैदर बक्श हैदरी है, शेर अली अफसोस नही, जैसा कि सुहरावर्दी ने अपनी थीसिस के पृ० १५ पर लिखा है। इसमे एक पृष्ठ मे तीन साहसिक कृत्य है। घटनाएँ असख्य और असम्बद्ध है। इसमें कोई कार्य सकलन नही है। इसमे प्रभाव सकलन का भी अभाव है, जो कथा साहित्य का मूल तत्व है। नायिका हुसन बानू द्वारा नायक मुनीर से पूछे गए कुछ प्रश्न बिल्कुल वाहियात है जैसे शुतुरमुर्ग के अंडे के बराबर बडे मोती का माँगना, अथवा कोह-ए-निदा क्या है ? यह पूछना। इसके कुछ पात्रो में अजगर, परियाँ, दैत्य और जानवर भी है।

दास्तान-ए-अमीर हमजा सम्पूर्ण उर्दू कथा साहित्य मे एक अत्यन्त जनप्रिय पुस्तक रही है। दास्तान-ए-अमीर हमजा उर्दू और फारसी की अधिकाश प्रेम कथाओ और कहानियो का मूल स्रोत है। यह अमीर हमजा के साहसिक कृत्यो की कहानी है। इसमे हजारो घटनाएँ है। कहा जाता है कि दास्तान-ए-अमीर हमजा की अपनी अलग शिल्पविधि (टेक्नीक) है। इसकी कला अथवा शिल्पविधि (टेक्नीक) अलौकिक तत्वो और अद्भुत कल्पना के ढाँचे मे निर्मित एक विशिष्ट शैली है। यदि कोई मानव कल्पना की उडान, उद्भुत प्रेत कल्पना की छलागो अथवा स्वप्नमय अलौकिक तत्वो के अनुभव करने का इच्छुक है, तो उसे दास्तान-ए-अमीर हमजा पढना चाहिए। यह पुस्तक अबाध मानव कल्पना, स्वच्छन्द दिवा स्वप्न अथवा मानव कल्पना की विलक्षण मानसिक स्थिति की एक आश्चर्यजनक उपज है।

ये कहानियाँ असाधारण विभिन्नताओं से युक्त, वीरतापूर्ण, देवी चरित्रों वाली, पौराणिक, सदाचार-नैतिकता सम्बन्धी और भ्रष्ट आचरणों से युक्त हैं, यद्यपि इनका व्यवहार पारम्परिक और परिवर्तन रहित (जड़) रूप में हुआ है। कथा रचना में आबद्ध घटनाएँ और साहसिक कृत्य एक जैसे और नीरस हैं। विलक्षणता प्रत्येक स्थान पर विद्यमान है, पृथ्वी और स्वर्ग के जीव एक दूसरे से स्वतन्त्रतापूर्वक मिलते-जुलते हैं। जादू-टोना, मेसमेरिज्म (प्रेतविद्या) और डाइनों तथा जादूगरनियों के कारनामे इनके मुख्य कार्य हैं। ये कहानियाँ सरल हैं और चरित्र से इनका कोई सम्बन्ध नहीं। ये मुख्य रूप से प्रेमियों के साहसिक कृत्यों, जादूगरों के जादू, शाहजादियों के जादूगरों के साथ भाग जाने और मनुष्य के एकाएक किसी जानवर के रूप में बदल जाने का निरूपण करती हैं। उस काल के सामयिक जीवन की कथाओं का इनमें कदाचित् ही कहीं स्पर्श हुआ हो।"[1]

तृतीय अवस्था के उर्दू कथा साहित्य का विकास, हमारे प्रयोजन के लिए यथार्थ में महत्वपूर्ण है। यद्यपि यह काल डॉ० नज़ीर अहमद के मीरात उल उरोस के प्रकाशन, अर्थात् १८६१ ई० से प्रारम्भ होता है, फिर भी १८५७ ई० से इस युग का प्रारम्भ मानना अधिक वैज्ञानिक होगा, क्योंकि यह वर्ष भारत के इतिहास में एक महान् स्थल चिह्न है। इसी काल में काल्पनिक कथा साहित्य का स्थान उपन्यास ने ले लिया तथा भारतीय उपन्यासकारों ने आधुनिक उपन्यास के सभी तत्वों को मान्यता दी और उनका प्रयोग धीरे-धीरे प्रारम्भ कर दिया।

फिसाना-ए-अजाएब रज्जब अली बेग सरूर की कृति है। यह १८३५ ई० में प्रकाशित हुई थी। परियाँ, दैत्य और जिन्न सहायकों और बाधकों के रूप में हैं, जैसा कि प्रेम कथाओं में उनका ढंग रहा है। फ़िसाना-ए-अजाएब की टेक्नीक के विकास में पशु जगत ने अत्यधिक भाग लिया है। एक तोता कथा प्रारम्भ करता है। नाटकीय चरमावस्था किसी अत्यन्त अलौकिक अथवा असाधारण घटनाओं का परिणाम है। मनुष्य के पुरातन (आदिम) जिज्ञासु भाव का दिग्दर्शन कराया गया है। कहीं-कहीं घटनाएँ अत्यधिक उत्तेजक तथा कामोद्दीपक हैं। फ़िसाना-ए-अजाएब के अधिकांश चरित्र निर्जीव और जड़ हैं। फिर भी, यह कथा अपना एक महत्व रखती है क्योंकि वह उस युग का अच्छा चित्रण करती है।

१. हिस्ट्री ऑफ उर्दू लिटरेचर, ले० राम बाबू सक्सेना;

उर्दू के महान् उपन्यासकार, जिनमें नये रूपों की पूर्णरूपेण अभिव्यक्ति हुई है, डॉ० नज़ीर अहमद, पं० रतन नाथ शरसार और अब्दुल हलीम शरर हैं। इनके अतिरिक्त इन उपन्यासकारों से प्रभावित बहुत-से अन्य उपन्यासकार भी हैं, जिनमें से कुछ के विषय में लिखना अनुपयुक्त न होगा।

डॉ० नज़ीर अहमद (१८३६ ई०-१९१२ ई०)

डॉ० नज़ीर अहमद सबसे पहले उपन्यासकार हैं जिन्होंने उर्दू उपन्यास से अलौकिक तत्वों को निकाल बाहर किया। इसके स्थान पर उन्होंने अपने कथानकों की सामग्री दैनिक जीवन से चुनी। उनकी देन उर्दू कथा साहित्य में महत्वपूर्ण है, विशेषकर इसलिए कि वे ही सर्वप्रथम उपन्यासकार हैं जिन्होंने घरेलू उपन्यासों का प्रारम्भ किया। इस दृष्टि से डॉ० नज़ीर अहमद की तुलना जेन आस्टिन से की जाती है।

डॉ० नज़ीर अहमद के पूर्व, कार्य के विकास अथवा चरित्र के उद्घाटन के लिए उर्दू उपन्यासों में कथोपकथन अथवा संवाद तत्व का प्रयोग बहुत ही कम होता था, परन्तु उन्होंने उसका भरपूर उपयोग किया।

उनके बहुत-से उपन्यास मध्यमवर्गीय मुस्लिम परिवारों का चित्रण करते हैं। उनका प्रयास विशेषकर उस समय की प्रचलित कुरीतियों अथवा घिसी-पिटी प्रथाओं को सुधारना था। ये कुरीतियाँ और कुप्रथायें केवल अस्थायी अथवा बदलती हुई प्रकृति की थीं, परिणामस्वरूप कुछ समय बीतने पर ये लुप्त हो गईं। इसलिए उनके उपन्यासों ने अपना पहले का कुछ आकर्षण खो दिया है, यद्यपि आज भी वे चाव से पढ़े जाते हैं।

उपन्यासकार के रूप में डॉ० नज़ीर अहमद की महानता उनके चरित्र-चित्रण की कला के कुशल निरूपण में निहित है। उनके चरित्र जीवित नर नारियों की भाँति दिखाई देते हैं। वे जीवित हैं, वे साँस लेते हैं, हम उनसे परिचित हैं और उनसे नित्य-प्रति मिलते हैं। परिणामस्वरूप उनका चरित्र, मनोविकास, मनोभाव, प्रेम-रोमांस, दुख-सुख इत्यादि केवल सामान्य ही नहीं वरन् सार्वभौमिक है। उनके चरित्र अंकन में सार्वभौमिकता का स्पर्श है।

उनकी विविध कृतियों में उनका उच्च उपदेशक रूप पूर्ण रूप से विद्यमान है। उनके उपन्यास सामाजिक और शिक्षा सम्बन्धी तत्वों तथा धार्मिक सिद्धान्तों अथवा मत मतान्तरों की उपदेशात्मक व्याख्या करते हैं। डॉ० नज़ीर अहमद के उपदेश आधुनिक पाठक को अच्छे नहीं लगते। वे कथा साहित्य की आधुनिक रुचि के प्रतिकूल हैं।

डॉ० एस० एम० अब्दुल्ला कहते है, "नज़ीर अहमद का मुख्य दोष यह नही है कि वह नैतिकतावादी है, वरन् यह कि उनके चित्र अयथार्थ और अपूर्ण है, उनमे बहुत कुछ ऐसा है जो कृत्रिम है।

"प्रेम तत्व का पूर्ण अभाव और नारी मनोविज्ञान सम्बन्धी अन्तर्दृष्टि की कमी नज़ीर अहमद के उपन्यासो के सबसे बडे दोष है।"[1]

पं० रतननाथ शरशार (१८४६ ई०–१९०२ ई०)

अपने पाठको को प० रतननाथ शरशार का परिचय देने मे हम डॉ० रामबाबू सक्सेना की सहायता लेते है। वह केवल आधुनिक योरोपीय उपन्यास की प्रणाली पर उर्दू उपन्यास की नीव रखने वाले ही नही थे, वरन् वह एक प्रतिष्ठित पत्रकार, एक कुशल लेखक, एक मेधावी व्यग्यकार एव एक अद्वितीय शैलीकार भी थे।[2]

मोटे तौर पर उनके कथानक नित्य-प्रति के जीवन की घटनाओ और तथ्यो पर आधारित हैं। जहाँ तक कथानक के रचना सम्बन्धी विकास का सम्बन्ध है, उसमे क्रमबद्धता और एकता का भाव बहुत ही कम है। घटनाएँ बिना क्रम के, और कारण तथा प्रभाव पर ध्यान दिए बिना ही रख दी गई है। वे कथानक को स्पष्ट करने मे सहायक नही हैं। वे घटनाओ की एक शृखला मे पृथक कडियो के समान है और यही दोष फिसाना ए आज़ाद के औपन्यासिक महत्व को नष्ट कर देता है।[3]

जहाँ तक चरित्र-चित्रण की कला का सम्बन्ध है, ऐसा कहा जाता है कि रतननाथ पहले व्यक्ति है जिन्होने कथा साहित्य मे चरित्र चित्रण की कला का एक नवीन क्षेत्र उदघाटित कर दिया है। रतननाथ अपने चरित्र का अकन करने मे बहुत सफल रहे है।

उनके चरित्र अधिकाशतया व्यग्यात्मक शब्द-चित्र हैं। वे एक अच्छे चित्र शिल्पी नही हैं, परन्तु अपने क्षेत्र की सकीर्ण सीमाओ मे वे एक पूर्ण सफल व्यग्यात्मक शब्द चित्रकार है। उनमे डिकेन्स और थैकरी के गुणो का मिश्रण पाया

---

१ उर्दू प्रोज अडर दि इंफ्लुएन्स आफ सर सैयद अहमद खां, लेखक डॉ० एस० एम० अब्दुल्ला, पृ० १७७, १७९,

२ हिस्ट्री आफ उर्दू लिटरेचर, डॉ० राम बाबू सक्सेना,

३ क्रिटिकल सर्वे ऑफ दि डेवलपमेट ऑफ उर्दू नावेल एण्ड शार्ट स्टोरी, लेखक एस० ए० सुहरावर्दी, पृ० ३२,

जाता है। ऊँचे और नीचे दोनों प्रकार के जीवनों से वे मनुष्य के चरित्र में अद्भुत बातें खोज निकालते हैं और उनमें से हास्य का अक्षय भंडार निकाल कर रख देते हैं। इन चरित्रों को देखकर आप सोच भी नहीं सकते कि इस प्रकार के चरित्र सम्भव भी हैं, बस इतना ही पर्याप्त है कि ये आपको हँसा देते हैं।

अब कोई भी इंकार नहीं करता और यथार्थ में किसी ने कभी सन्देह भी नहीं किया कि रतननाथ शरशार उर्दू उपन्यास के जन्मदाता हैं।

रतननाथ की महान् कृति 'फ़िसाना-ए-आज़ाद' उर्दू साहित्य के नवीन युग के प्रादुर्भाव की उद्घोषणा करने वाली प्रतिक्रियाओं की उपलब्धियों में से एक सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि है। यह सबसे पहली कृति है जो आधुनिक योरोपीय प्रणाली पर लिखी गई है।

यदि लेखक ने इसे कहानी के रूप में परिवर्तित न कर दिया होता तो यह कृति अत्यधिक श्रेष्ठ बन गई होती क्योंकि अच्छे सोचे हुए कथानक और तथ्यों की विचारपूर्ण उपस्थिति के साथ कहानी कहना उनके वश की बात न थी। वे एकान्त और निराली स्थितियों तथा हमारे सामाजिक जीवन के पृथक-पृथक अंशों के अद्वितीय चित्रकार थे, परन्तु वे उन्हें एक में और समानुपातिक पूर्ण के रूप में नहीं मिला सके, वे अपने विभिन्न सूत्रों को लेकर एक सुदृढ़ और सुगठित कथानक नहीं बुन सके।[१]

शरशार की औपन्यासिक उपलब्धियों के मूल्यांकन में हम विशुन नरायन दर के मत से सहमत हैं, परन्तु हम शरशार को उर्दू का प्रथम उपन्यासकार मानने में उनके मत से सहमत नहीं। हम इस बात का पहले ही उल्लेख कर चुके हैं कि डॉ० नज़ीर अहमद सर्वप्रथम उर्दू उपन्यासकार माने जाने चाहिए जिन्होंने अपने प्रारम्भिक उपन्यास शरशार से बहुत पहले लिखे थे। उनकी मुख्य रचनाएँ हैं: फ़िसान-ए-आज़ाद, सैर कुहसार, कड़क धुम, खुदाई, फ़ौजदार, बिछुड़ी दुलहिन तथा जामे शरशार।

अब्दुलहलीम शरर (१८८० ई०-१९२६ ई०)

अब्दुल हलीम शरर ऐतिहासिक उपन्यास के जन्मदाता हैं। उनके उपन्यासों का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है और उनके उपन्यासों में विभिन्न देशों के इतिहास के विभिन्न कालों का वर्णन मिलता है, जैसे धर्म युद्धों के युग का, स्पेन में मूर लोगों के दिनों का, भारत में मुसलमानों के आरम्भिक दिनों का और पूर्व इस्लामिक

---

१. स्पीचेज़ एण्ड राइटिंग्स्, बिशुन नरायन दर;

काल का वर्णन । परन्तु वे युग की भावनाओ को ग्रहण करने मे असफल रहे है । शरर का ढग वास्तव मे एक पत्रकार का ढग है, उपन्यासकार का नही, जिसमे विद्वत्ता, गहन अध्ययन और कल्पना अत्यधिक अपेक्षित गुण हैं ।[1]

शरर ने चरित्र चित्रण की कला की अपेक्षा घटनाओ के वर्णन पर अधिक बल दिया है । उनके उपन्यासो के चरित्रो मे कोई भी गतिशील गुण नही है । वातावरण और परिस्थितियो मे कभी-कभी अन्तर आ जाता है परन्तु चरित्र अधिकाश मे वैसे ही अपरिवर्तित रहते है । उनके उपन्यासो में घटनाएँ स्वाभाविक विकास क्रम मे नही बढती वरन् स्थिति के प्रतिकूल अप्रत्याशित रूप से घटित हो जाती है ।[2]

शरर ने ऐसी घटनाओ को चुना जो रोमास से युक्त व्यक्तित्वो और सम्भावनाओ से पूर्ण थी, परन्तु उनका ज्ञान इतना छिछला था और उनकी कल्पना शक्ति इतनी महान नही थी कि वे हमारे लिए घटनाओ को यथार्थ और पात्रो को जीवित बना सकते ।

शरर की लेखनी से न वह युग और न उस युग के पात्र जीवित हो सके है । सम्भवत जिस उपन्यास मे वे अपने पात्रो के चरित्रो को जीवन देने के समीप पहुँच सके है, वह 'फ्लोरा फ्लोरेडा' है ।

शरर को इसका पर्याप्त अनुभव था कि इतिहास मे कौन-सा युग रोमास से भरपूर है और कौन-सी ऐतिहासिक घटना प्रथम श्रेणी के उपन्यास के लिए सामग्री प्रदान करती है, परन्तु उनके रचना कौशल (टेक्नीक) और उनकी कल्पना तथा विचारो मे समता न थी, और इसीलिए वे अपनी कल्पनाओ को पूर्ण रूप से कागज पर उतार न सके । इसीलिए रग और रोमास से सम्पन्न युगो का चित्रण करते हुए भी उनके उपन्यास प्रारम्भिक अवस्था के अथवा अप्रौढ जान पडते है ।[3]

शरर को न इतिहास का शुद्ध ज्ञान था और न वे सामाजिक जागरण से ही परिचित थे । उनका मुख्य गुण, उनका कहानी कहने का ढग है जो पाठक को अन्त तक पकडे रहता है । अत्यधिक लेखनशील होने के कारण अपने ऊबे हुए क्षणो मे उन्होने कमजोर कथानको को शक्तिहीन और व्यर्थ का विस्तार दिया है ।

---

१ हिस्ट्री ऑफ उर्दू लिटरेचर, राम बाबू सक्सेना,

२ वही,

३. पीएच० डी० थीसिस, सुहरावर्दी, पृ० ७६,

उनकी मुख्य रचनाएं हैं : दिलचस्प फिरदौस-बरी, ऐय्यामे अरब, हुस्न का डाकू, मन्सूर मोहना तथा जवाले-बुग़दाद ।

अब्दुल हलीम शरर मुंशी प्रेमचन्द के बुजुर्ग समसामयिक थे । मुंशी प्रेमचन्द का साहित्यिक जीवन १६०१ ई० से प्रारम्भ होता है । १६०७ ई० और १६०८ ई० में उनके कुछ उपन्यास प्रकाशित हुए । वह एक अथवा दो दशकों के पश्चात् ही उपन्यास सम्राट् के नाम से पुकारे जाने लगे । अतएव प्रेमचन्द की औपन्यासिक कला के मूल्यांकन के लिए यह आवश्यक नहीं कि उर्दू साहित्य के सभी उपन्यासकारों को लिया जाय । फिर भी, दो और उपन्यासकारों, मिर्ज़ा मोहम्मद हादी रुसवा और मिर्ज़ा मुहम्मद सईद का भी उल्लेख किया जा सकता है ।

हादीहसन रुसवा[1] का उमराव जान अदा सम्भवत: आधुनिक उपन्यासों में सर्वोत्तम है । यद्यपि मनोविज्ञान के दृष्टिकोण से इसमें गहराई कम है फिर भी यह अपने में अत्यन्त परिपूर्ण उपन्यास है । अथवा केवल इसी में कल्पना के अनुकूल रचना शैली का प्रयोग मिलता है । मिर्ज़ा रुसवा की प्रमुख औपन्यासिक रचनाएँ हैं : उमराव जान अदा, शरीफ़ ज़ाद और ज़ाते शरीफ़ ।

मिर्ज़ा मोहम्मद सईद के ख्वाब-ए-हस्ती और यस्मीन के साथ उर्दू में विश्लेषणात्मक उपन्यास का प्रवेश हुआ । उसने इस अभागी पीढ़ी के समझने और विश्लेषण करने का प्रयास किया था, जोकि एक सभ्यता की सन्ध्या और दूसरी के सुदूर भासित होने वाले भोर के बीच में अपने को पा रही है अथवा जो दो ऐसे संसारों के बीच खोई हुई है, जिसमें एक मृत हो चुका है और दूसरा अभी उत्पन्न होने को है ।[2]

प्रेमचन्द ने 'मेरी पहली रचना' नामक लेख में लिखा है—"उस समय मेरी उम्र कोई तेरह साल की रही होगी । हिन्दी बिल्कुल न जानता था । उर्दू उपन्यास पढ़ने का उन्माद था । मौलाना शरर, पं० रतन नाथ सरशार, मिर्ज़ा रुसवा, मुहम्मद अली उस समय के सर्वप्रिय उपन्यासकार थे । इनकी रचनाएँ जहाँ मिल जाती थीं वहाँ स्कूल की याद भूल जाती थी और पुस्तक समाप्त करके ही दम लेता था ।...पंडित रतन नाथ सरशार से तो मुझे तृप्ति ही न होती थी । उनकी

---

१. सही नाम मिर्ज़ा मोहम्मद हादी रुसवा है, हादी हसन रुसवा नहीं जैसा कि सुहरावर्दी ने लिखा है ।

२. सुहरावर्दी की पीएच० डी० थीसिस, पृ० १७४;

सारी रचनाएँ मैंने पढ डाली ।"[1] प्रेमचन्द का साहित्यिक जगत से परिचय शेख सादी, शरर, सरशार, रुसवा, हकीम मुहम्मद अली तथा रशीद उल खैरी की कृतियो द्वारा हुआ था ।

शेख सादी के जीवन दर्शन का प्रेमचन्द पर बडा गहरा प्रभाव पडा था । उन्होंने 'महात्मा शेखसादी' नाम की एक पुस्तक भी लिखी थी । प्रेमचन्द के जीवन दर्शन पर शरर का प्रभाव नकारात्मक ढग से पडा था । उनके उपन्यासो को पढकर प्रेमचन्द ने जो कुछ भी ग्रहण किया, वह थी शरर की उपन्यासो द्वारा फैलने वाली साम्प्रदायिक वैमनस्यता से बच कर चलने की शिक्षा ।[2] सरशार के साहित्य का प्रेमचन्द पर अवश्य ही बडा गहरा प्रभाव पडा है । प्रेमचन्द के उपन्यासो मे भी सरशार की भाँति मद्य निषेध, स्त्री शिक्षा तथा पर्दा का विरोध आदि देखने को मिलता है । इस प्रभाव के बावजूद प्रेमचन्द और सरशार के जीवन दर्शन मे कुछ महत्वपूर्ण अन्तर भी दिखते हैं । प्रेमचन्द और सरशार दोनो ही ने अपने युग के समाज का चित्र अवश्य खीचा है परन्तु जहाँ एक ओर सरशार का उद्देश्य समाज की बुराइयो का दिग्दर्शन कराना है वहाँ दूसरी ओर प्रेमचन्द का दृष्टिकोण सुधारवादी था ।

मिर्जा मुहम्मद हादी रुसवा और प्रेमचन्द के साहित्य मे मात्र इतनी साम्यता है कि दोनो ने ही उपन्यास को युग का साहित्यिक इतिहास ग्रथ माना है ।[3] मौलाना रशीद उल खैरी प्रेमचन्द के समसामयिक उपन्यासकार थे । दोनो ने ही अपनी पैनी दृष्टि से समाज की कुरीतियो का दिग्दर्शन कराया है । दोनो का ही दृष्टिकोण सुधारवादी था ।

उपन्यास शिल्प का विकास और उन्नति

अब हम इस युग मे उपन्यास शिल्प के विकास और उन्नति का सार प्रस्तुत करते हैं । जहाँ तक उपन्यास का सम्बन्ध है उर्दू साहित्य अब तक पर्याप्त सम्पन्न हो चुका था । प्राचीन कथा साहित्य का स्थान आधुनिक योरोपीय ढग के उपन्यास ने ले लिया था । उपन्यास के बहुत-से प्रकार अस्तित्व मे आ चुके थे, उदाहरणार्थ (क) घरेलू उपन्यास, (ख) ऐतिहासिक उपन्यास, (ग) कार्य प्रधान उपन्यास, (घ)

---

१ कुछ विचार, पृ० ७०-७१,

२. प्रेमचन्द के जीवन दर्शन के विधायक तत्व, ल० डॉ० कृष्ण चन्द्र पाण्डेय, पृ० ८८,

३. वही, पृ० ९०,

विश्लेषणात्मक उपन्यास। परन्तु शिल्पविधि (टेक्नीक) अथवा उपन्यासो के क्षेत्र के दृष्टिकोण से प्रत्येक प्रकार के उपन्यास की निश्चित मान्यता बहुत बाद मे हुई।

कथानकों के गुण मे भी एक महान् विकास हुआ। राजसी (शाही) व्यक्तित्व, अतिरजित प्रेम-प्रसग, स्वच्छद साहसिक कृत्य अथवा विश्वास से परे भाग्य के खेल धीरे-धीरे उपेक्षित किये जाने लगे। कथा सामग्री अधिक जीवन-सयुक्त, जीवन-तद्वत और पसन्द की जाने वाली रखी जाने लगी। परन्तु अब सम्पूर्ण रूप से कथानको मे मध्यम वर्गीय परिवारो की कुछ समस्याओ, उलझनो और प्रेम-प्रसगो का निरूपण होने लगा। अति प्राकृतिक तत्वो का निस्सन्देह ही परित्याग कर दिया गया, परन्तु धर्म और शुद्ध आदर्शवाद उपन्यासो का फैशन बन गया। यह धार्मिकता भारत मे मुस्लिम शासन के पतन के बाद मुस्लिम सभ्यता के पुनरुत्थान की प्रतिबिम्ब थी।

उपन्यास के तत्व के रूप मे **चरित्र** को उर्दू उपन्यासकारो के हाथो पूर्णत न्याय प्राप्त हुआ। चरित्र के आरम्भ, विकास और अन्त का बहुत अच्छा निर्वाह हुआ। चरित्र को इस सम्बन्ध मे अगर थोडी हानि पहुँची तो वह उसके उद्घाटन मे। चरित्र का उद्घाटन अधिकतर कथोपकथनो और कार्यों द्वारा हुआ है। लेखको ने चरित्रो के विचारो, भावनाओ और कार्यो का सूक्ष्म परीक्षण, आलोचन अथवा विश्लेषण बहुत ही कम किया है। सक्षेप मे कह सकते है कि चरित्रो का कोई भी मनोवैज्ञानिक चित्रण पाठको के समक्ष उपस्थित नही किया गया, यदि कोई है भी तो वह छिछला और मशीनवत् अर्थात् कृत्रिम और निर्जीव है।

कथोपकथन की शिल्पविधि का पूर्ण रूप से उपयोग हुआ है। उपन्यास के इस तत्व का प्रयोग हमारे उपन्यासकारो ने सफलतापूर्वक किया है। कथोपकथन के सभी गुण यथा, वाक्चातुर्य, हास्य और व्यग्योक्ति हमारे उपन्यासो मे मिलते हैं। कथोपकथन और उपन्यास के रचनात्मक विकास का सम्बन्ध शरशार और वजीर अहमद मे विशेष रूप से देखने योग्य है।

यह उर्दू साहित्य मे उपन्यास लेखन का ज्योतिर्मय पक्ष है। अब इसके तमाच्छादित पक्ष का अवलोकन कीजिए।

जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है, अधिकाश कथानक मध्यम वर्ग के जीवन का चित्रण करते हैं। किसानो और मजदूरो के जीवन के चित्रण का कोई प्रयास नही किया गया। चरित्र चित्रण की कला को हानि पहुँची, क्योकि उनके

विचारों, भावनाओं और कार्यों का मनोवैज्ञानिक ढंग से अध्ययन करने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया। उपन्यासकारों ने केवल पात्रों के बाह्य जीवन का ही निरूपण किया उनके आन्तरिक जीवन तक वे पहुँचे ही नहीं। इसलिए चरित्रों के जीवन उथले ढंग से उपस्थित किए गए हैं।

उर्दू उपन्यास का विकास जिस महान् दोष से ग्रसित हुआ, वह था उपन्यास के स्वाभाविक रचनात्मक विकास की ओर से उर्दू उपन्यासकारों का उदासीन होना। यह रचना सम्बन्धी विकास, वास्तव में अकारण नहीं था, वरन् एकता या तो बलात लाद ली गई थी अथवा उपन्यास के इस तत्व का उपयोग बड़े भद्दे और मोटे तौर पर किया गया था। एकता एक अच्छे उपन्यास का सार तत्व है। एकता का तत्व ही ऐसा तत्व है जो एक उपन्यास के विकास को अनुशासित करता है और इसी से कुशल लेखक के कला शिल्प और कौशल का परिचय मिलता है। इस तत्व का उपयोग भिन्न-भिन्न लेखकों ने बहुत भिन्न-भिन्न रूप से किया है, परन्तु एक उपन्यास की विभिन्न कथाओं में एकता किस प्रकार सुरक्षित रखी जाय इसका सबसे अच्छा ढंग यह है कि किसी भी रूप में वह बनावटी न दिखाई दे, वरन् स्वाभाविक प्रतीत हो। उप-कथानक अथवा विभिन्न घटनाओं के साथ एक स्वाभाविक सम्बन्ध या क्रम बना रहे, यही इस तत्व का सर्वोत्तम निरूपण है।

इन उपन्यासकारों का कोई उद्देश्य अथवा जीवन दर्शन नहीं था जिसे वे अपने उपन्यासों में उपस्थित करते। कुछ उपन्यासकार इस आशय में धार्मिक कहे जा सकते हैं कि वे सुधारवादी थे, और इसीलिए वे इस बात से सन्तुष्ट थे कि कुछ दूषित कुरीतियाँ और प्रथायें समाज से निकाल दी गई थीं। कथानकों के प्रसंगों के सम्बन्ध में उनका दृष्टिकोण सीमित था। इनमें से अधिकांश ने अपने ही वर्ग के सम्बन्ध में लिखा। उन्होंने यह नहीं सोचा कि सम्पूर्ण रूप से मानवता का जीवन एक उपन्यास के लिए उपयुक्त विषय हो सकता है और इसी से ये उपन्यासकार एक जीवन दर्शन नहीं उपस्थित कर सके। ये केवल सुधारवादी ही बने रहे और ये वह नहीं दे सके जिसकी इनसे आशा की जाती थी। तुलना के लिए हम टाल्स्टाय का उपन्यास 'वार ऐंड पीस' देख सकते हैं जिसका क्षेत्र इतना विस्तृत और व्यापक है कि वह मानवीय क्रियाकलापों के सम्पूर्ण क्षेत्र को आच्छादित कर लेता है और इतिहास के दर्शन की थीसिस के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है।

उर्दू में उपन्यास का विकास विलम्ब से होने के कारण ये दोष स्वाभाविक थे और इतने अल्प समय में इससे अच्छा विकास सम्भव भी नहीं था। भारतीय समाज का सम्पूर्ण राजनीतिक और सामाजिक ढाँचा हिल चुका था और हमारे लेखकों का कोई क्रान्तिकारी अथवा दार्शनिक दृष्टिकोण न होने के कारण वे जीवन के प्रति सुधारवादी और संकीर्ण बुद्धि दृष्टिकोण से आगे जाने में असफल रहे। उनकी अपने वर्ग की सीमायें और बन्धन थे तथा पुरानी परिपाटियों के प्रति उनकी श्रद्धा-भक्ति थी, अतएव वे जीवन का उसकी सम्पूर्णता और सम्पन्नता के साथ चित्रण न कर सके। यह कार्य प्रेमचन्द के लिए छोड़ दिया गया था।

प्रेमचन्द का हिन्दी साहित्य जगत से परिचय उर्दू के ही माध्यम से हुआ जिसमें उन्होंने लिखना प्रारम्भ किया था। प्रेमचन्द के पूर्व भी हिन्दी में कई उपन्यास लिखे जा चुके थे परन्तु उपन्यास कला का सर्वाङ्गीण विकास सर्वप्रथम प्रेमचन्द में ही दिखाई देता है। हिन्दी में सर्वप्रथम उपन्यास श्रीनिवासदास का 'परीक्षागुरु' ही माना जाता है। उसके बाद बाबू राधाकृष्ण दास ने 'निःसहाय हिन्दू' और पंडित बालकृष्ण भट्ट ने 'नूतन ब्रह्मचारी 'तथा' सौ अजान एक सुजान' नामक छोटे-छोटे उपन्यास लिखे। इसके पश्चात् बहुत दिनों तक बंगला-उपन्यास के अनुवाद का सिलसिला चलता रहा। पहले मौलिक उपन्यास लेखक, जिनके उपन्यासों की सर्वसाधारण में धूम हुयी वे, थे काशी के बाबू देवकीनन्दन खत्री। इन्होंने 'चन्द्रकान्ता सन्तति' नाम के ऐय्यारी उपन्यास लिखे। इन उपन्यासों का इतना स्वागत हुआ कि कितने ही अनपढ़ों और उर्दू पढ़े-लिखे लोगों ने इन उपन्यासों का रसास्वादन करने के लिए ही हिन्दी सीखी। किशोरी लाल गोस्वामी ने छोटे-बड़े मिलाकर लगभग ६५ उपन्यास लिखे। इन्हें साहित्य की दृष्टि से हिन्दी का पहला उपन्यासकार कहना चाहिए।

इसके पश्चात् ही उपन्यास जगत में प्रेमचन्द ने पदार्पण किया। नूतन विकास लेकर आनेवाले प्रेमचन्द जो कर गए वह तो हमारे साहित्य की एक निधि ही है।

□□

६ | प्रेमचन्द उपन्यासकार के रूप में

प्रेमचन्द उपन्यासकार के रूप में

□

प्रेमचन्द के लिखे हुए उपन्यासों के प्लाट अधिकतर ग्रामीण जीवन का ही चित्रण करते हैं। इसके विपरीत बुर्जुआ जीवन के प्रति उन्हें कम रुचि है। ग्रामीण जीवन की तुलना में बुर्जुआ जीवन को वे अधिक पसन्द नहीं करते। इसके कई कारण हो सकते हैं परन्तु औद्योगिक अथवा पूंजीवादी वर्ग की अपेक्षा उनका सामन्तीय परिपाटी का ज्ञान ही, जोकि देश के समाजिक ढाँचे का मूल था जिसमें वह पैदा हुए और बढ़े, इसका मुख्य कारण प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त उनके आरम्भिक जीवन में श्रम और पूंजी का संघर्ष भी ऐसा प्रबल नहीं था। अतः एक सच्चे कलाकार के रूप में उन्होंने केवल उन्हीं विषयों को ग्रहण किया जिनसे वे पूर्णतया परिचित थे और जिनका उन्होंने स्वयं अनुभव किया था। प्रेमचन्द के पूर्व के उपन्यासकारों द्वारा मध्यम वर्ग के जीवन का चित्रण बड़ी कुशलता से हो चुका था। प्रत्येक उपन्यासकार ने अपनी कृतियों में मध्यम वर्ग के जीवन का कोई न कोई पक्ष अवश्य चित्रित किया था। गाँव के लोग धीरे-धीरे अपने अधिकारों तथा उच्च वर्ग द्वारा किए जाने वाले अपने शोषण के प्रति अब जागरूक हो गए थे। यह जागरण उन शक्तियों का परिणाम था जो उन दिनों के भारतीय समाज में क्रियाशील थीं। भारत के उपन्यासकारों में प्रेमचन्द ही ऐसे प्रथम उपन्यासकार थे जिन्होंने जनता के इस जागरण का अनुभव किया।

बहुत-से लेखकों का यह कहना ठीक नहीं कि प्रेमचन्द पहले व्यक्ति थे जिन्होंने सोचा कि एक किसान का जीवन उपन्यास का एक उपयुक्त विषय हो सकता है, बल्कि यह वह जागृति है जिसके प्रति वह पूर्णरूपेण जागरूक थे और जिसने उन्हें अपने कथानकों की रचना के लिए ग्रामीण जीवन से सामग्री एकत्र करने की प्रेरणा दी।

प्रेमचन्द ने यद्यपि समाज के मध्यम वर्ग के जीवन का चित्रण करने का प्रयास किया है परन्तु वह इसमें इतने अधिक सफल नहीं हैं। उनकी सफलता के मुख्य आधार वही उपन्यास हैं जिनमें ग्रामीण जीवन और ग्राम निवासियों का चित्रण है। इसका कारण यह है कि मुंशी जी का उद्भव एवं विकास एक ऐसे परिवार में से हुआ था जिसमें जीवन की मान्यता सामन्ती मूल्यों के माध्यम से आंकी जाती थी। अवस्था की प्रौढ़ता और बुद्धि की परिपक्वता के

साथ-साथ प्रेमचन्द की कला भी पीछे नहीं रही। भारतीय ग्रामों के जीवन के यथार्थ चित्रण में वह सीमित नहीं रही। उनकी कुछ कृतियों में आज के समाज के भिन्न-भिन्न वर्गों के विरोधों का स्पष्ट आभास भी मिलता है। ज़मींदार और काश्तकार, महाजन और कृषक, मुखिया और साधारण ग्रामीण के संघर्ष के चित्र भारतीय ग्राम जीवन के अध्ययन के जीवित चित्र हैं। इस दिशा में प्रेमचन्द की देन कम महत्वपूर्ण नहीं है।

सामन्तीय और बुर्जुआ जीवन के अतिरिक्त उन्होंने एक ओर पूंजीवाद और दूसरी ओर श्रम के निरन्तर होने वाले संघर्ष को भी अंकित करने का प्रयास किया है। इस वर्ग संघर्ष का विश्लेषण उन्होंने रंगभूमि (चौगाने हस्ती) और (कुछ अंशों तक) कर्मभूमि (मैदाने अमल) में किया है। रंगभूमि में वह औद्योगिक अर्थ व्यवस्था के लक्षण, उदाहरणतः श्रमिकों के चरित्र, विशिष्ट गुण एवं आवास व्यवस्था आदि पर प्रकाश नहीं डालते हैं, जिनकी वास्तव में उनसे आशा की जाती थी। फिर भी सामन्तीय अर्थ व्यवस्था के बढ़ते हुए महत्व को बल देने में वे सफल हुए हैं। मि० जान सेवक, जो अपना सिगरेट का कारखाना खड़ा करने के लिए ज़मीन का एक टुकड़ा चाहते थे, केवल अपनी शक्ति के द्वारा उसे उसके वास्तविक स्वामी सूरदास से हड़प लेते हैं। यथार्थ में, जनता इसके विरुद्ध विक्षुब्ध थी, जिसके परिणामस्वरूप सत्याग्रह हुआ, लेकिन लाठी चार्ज और फायरिंग द्वारा वह सब विरोध दबा दिया गया। यह उपन्यास चित्र के केवल एक ही पक्ष का अंकन करता है और वह यह कि पूंजीवाद ने किस भाँति अपनी सत्ता स्थापित की।

इस भाँति हम देखते हैं कि प्रेमचन्द निरन्तर अपने समय के साथ चलते रहे। अपने युग की राष्ट्रीय जागृति में उन्होंने पूर्णरूपेण भाग लिया। उनकी कृतियाँ, विशेष रूप से उपन्यास, महत्वपूर्ण जागृति पर किसी न किसी रूप में स्पष्ट प्रकाश डालते हैं। उपन्यास समाज का चित्र होता है। प्रेमचन्द के उपन्यास भी समाज के जीवन तथा समाज के पूर्ण विवरण को चित्रित करते हैं। इसी कारण प्रेमचन्द की ये रचनाएँ 'सामाजिक उपन्यास' कहलाती हैं और वे ही सामाजिक ढंग के उपन्यासों के सर्वप्रथम रचयिता थे। सामाजिक शब्द इसी कारण अधिक व्यवहृत है क्योंकि समाजशास्त्र दर्शनशास्त्र का वह अंग है जो मानव समाज का वर्णन करता है।[१] इस प्रकार का उपन्यास उर्दू साहित्य में

---

१. कन्साइज़ आक्सफोर्ड डिक्शनरी ;

विश्लेषणात्मक उपन्यास के बाद आता है। प्रेमचन्द जीवन के केवल अध्येता ही नहीं वरन् उसके आलोचक भी थे।

इस प्रसंग में प्लाट के सम्बन्ध में कुछ शब्द और कहे जा सकते हैं। उनके उपन्यास वृत्तान्तिक या विज्ञापक हैं। यह वास्तव में बड़े आश्चर्य की बात है कि बनारस से दूर एक देहात में पैदा होने वाला प्रेमचन्द जैसा एक व्यक्ति पुलिस शासन अथवा भारतीय बन्दीगृहों की दयनीय स्थिति का पूर्ण वृतान्त हमको देता है। उनका ज्ञान सुना-सुनाया नहीं वरन् स्वयं प्राप्त किया हुआ प्रत्यक्ष ज्ञान है। वह पुलिस दारोगा और कलेक्टर का चरित्र चित्रित करते हैं। बहुत से उपन्यासों में मुंशी प्रेमचन्द का मुख्य लक्ष्य पुलिस का सब-इंस्पेक्टर है। रंग-भूमि (चौगाने हस्ती) में वह जेलों की दशा का वर्णन बड़े विस्तारपूर्वक करते हैं। जन-सेवा के इन दो भागों में व्याप्त उच्छृंखल भ्रष्टाचार से वे घृणा करते हैं।

मुंशी प्रेमचन्द ही सर्वप्रथम भारतीय उपन्यासकार हैं जो जन-आन्दोलन का चित्र प्रस्तुत करते हैं। रंगभूमि में एक ओर सूरदास है गाँव की समस्त जनता के साथ और दूसरी ओर अपने पुलिस दल के साथ मि० क्लार्क। अन्त में जनता का दल छिन्न-भिन्न हो जाता है और शान्ति स्थापित हो जाती है। कायाकल्प में हिन्दू और मुसलमान अपने साम्प्रदायिक उन्माद के कारण मार-काट करने के लिए एक मैदान में एकत्र हो जाते हैं। चक्रधर, जो किसी भी दल से सम्बन्धित नहीं है, भीड़ के समक्ष भाषण करता है। वह कहता है 'इस्लाम यह कभी नहीं सिखाता कि दूसरे धर्मों को नीची निगाह से देखा जाय। इस्लाम द्वारा दी हुई इस धार्मिक स्वतन्त्रता के बगदाद, रोम और स्पेन साक्षी हैं।' थोड़ा-सा गड़बड़ होने के बाद स्थिति सामान्य हो जाती है। कलहपूर्ण संघर्ष अधिकतर गुण्डों और दुष्ट लोगों के कार्य होते हैं।

जन-आन्दोलन से सम्बन्धित घटनाएँ इतनी उलझी हुई होती हैं कि उनका वर्णन स्वयं में एक दुष्कर कार्य है। उपन्यासकार के हाथों उनके विशिष्ट उपयोग की अपेक्षा होती है। यह बात ध्यान रखनी चाहिए कि जन-आन्दोलन का चित्रण उपन्यासकार के लिए बड़ा कठिन कार्य है। उपन्यासकार की कला की परीक्षा करते समय एक आलोचक इन परिस्थितियों पर अधिक ध्यान देता है। प्रेमचन्द ने इनका निर्वाह बड़े अच्छे ढंग से किया है, क्योंकि वह समूह-मनोविज्ञान के मर्मज्ञ थे। प्रेमचन्द द्वारा चित्रित जन-आन्दोलन के चित्र बड़े कलात्मक हैं। ऐसे अवसरों पर मुंशी जी ने पूर्ण तटस्थता की नीति अपनायी है। वे अपनी

भावनाओं को प्रकट नहीं होने देते। ऐसी स्थितियों को नियंत्रित करने वाली शक्तियों के बल से वे लिखते हैं। इन स्थितियों का अपना एक वातावरण होता है और जिसने भी इस वातावरण को ठीक से समझ लिया है, वह जनता के विचारों को तत्क्षण ही पढ़ सकता है। प्रेमचन्द के पास समूह के विचारों को पढ़ने की शक्ति थी।

विभिन्न कथानक उपरोक्त घटनाओं के साथ प्रेमचन्द के उपन्यासों का कुछ ज्ञान कराते हैं। हम यह बता चुके हैं कि एकात्मकता का तत्व ही उपन्यास का विकास करता है और वही उपन्यास की सुन्दर शिल्पविधि का जिम्मेदार होता है। प्रेमचन्द समझते थे कि उपन्यासों के रचनात्मक विकास में एकात्मकता का कितना जटिल और मार्मिक रोल होता है। उनके उपन्यासों का आधार बहुत मजबूत और उनकी शिल्पविधि बहुत सुन्दर होती है, परन्तु अन्त विश्वसनीय नहीं होता है।

इस बात का निर्देश हो चुका है कि फिसाना-ए-आजाद में प्रत्येक कथा चित्रात्मक एवं पूर्ण है परन्तु प्लाट के साथ वे इस प्रकार संश्लिष्ट नहीं की गई हैं कि सम्पूर्ण कथा एक प्रतीत हो। निम्न कोटि के उपन्यास का लक्षण प्रायः यह माना जाता है कि वह विभिन्न लघु कथाओं का एक संग्रह होता है। मुंशी प्रेम-चन्द के उपन्यास इन दो लक्षणों से मुक्त हैं। उनके उपन्यास वृक्ष की भाँति बढ़ते हैं और कथानक या उप-कथानक से सम्बन्ध रखने वाली विभिन्न घटनाएँ उस वृक्ष की शाखाओं के समान प्रतीत होती हैं। जहाँ तक एकात्मकता का सम्बन्ध है उनके उपन्यासों में इसकी एक अनोखी विशिष्टता पायी जाती है। प्रेमचन्द ने गाँव के लोगों का तथा साथ ही नगर के (सम्पन्न) बुर्जुआ वर्ग का जीवन चित्रित करने का प्रयत्न किया है। दोनों ही वर्गों की जीवन प्रणाली का अंतर स्पष्ट है, फिर भी उपन्यास इस अंतर का चित्रण करते हैं जिसके परिणाम स्वरूप उपन्यास का रचना सम्बन्धी विकास कभी-कभी नष्ट हो जाता है। यह स्वाभाविक ही है। यह अंतर होते हुए भी मुंशी प्रेमचन्द ने ग्राम्य अर्थ व्यवस्था और नागरिक अर्थ व्ययस्था को एक में मिलाने का यथाशक्ति प्रयत्न किया है। इसका दर्शन उनके कुछ पात्रों, जैसे गोबर, रायसाहब, मिस मालती[1] इत्यादि में होता है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उनके उपन्यासों में कोई एकता नहीं है। जो एकता उनके उपन्यासों में मिलती है वह दोनों प्रकार की जीवन प्रणाली के अंतर के प्रसंग में मिलती है।

---

१. ये गोदान के पात्र हैं।

प्रेमचन्द ने नाटकीय व्यक्तित्वों का चुनाव समाज के प्रायः प्रत्येक वर्ग से किया है। वे एक ऐसे समाज के सृष्टा हैं जिसमें हर प्रकार के स्त्री-पुरुष रहते हैं। प्रेमचन्द चरित्र चित्रण की कला में निपुण हैं। उपन्यास में पात्र से परिचय कराने का ढंग वह जानते हैं। अपने उपन्यास का प्रारम्भ या तो वे वातावरण अथवा ऋतु के वर्णन से अथवा उस समाज के जीवन पर आलोचनात्मक टिप्पणियों से और अधिकतर स्वयं पात्र के ही वर्णन से करते हैं। यदि किसी पात्र का प्रवेश उपन्यास के मध्य में होता है तब भी उसका आगमन स्वाभाविक रूप से होता है। प्रेमचन्द का हर एक पात्र मानव विकास के सभी नियमों का पालन करता है। पात्र समय के साथ ही बढ़ते हैं और फलस्वरूप परिपक्व बुद्धि के चिह्नों का प्रदर्शन भी करते हैं। उनके कार्य, प्रतिकार्य भी बोधगम्य होते हैं। ऐसा बहुत कम मिलता है कि उन्होंने असाधारण पात्रों का चित्रण किया हो, वरन् प्रेमचन्द के पात्रों को अपने जीवन में अनेक संघर्षों का सामना करना पड़ता है। उपन्यासकार पात्रों का उपयुक्त और मनोवैज्ञानिक रूप में चरित्र चित्रित करने में उस समय अत्यन्त सफल हुआ है जब वे संघर्ष का सामना करते हैं।

प्रेमचन्द एक पत्र में लिखते हैं, "मानवीय असफलताओं और सद्गुणों से युक्त एक आदर्श पात्र मेरे प्रत्येक उपन्यास में है। प्रेमाश्रम में ज्ञानशंकर, रंगभूमि में सूरदास ऐसे ही आदर्श पात्र हैं। इसी प्रकार कायाकल्प में चक्रधर, कर्मभूमि में अमर कान्त।"[१] उन्होंने जब यह पत्र लिखा था तब तक गोदान प्रकाशित नहीं हुआ था जिसमें होरी का चरित्र प्रस्तुत किया गया है। जिस अर्थ में प्रेमचन्द ने आदर्श शब्द का प्रयोग किया है उसे देखते हुए इसे भी आदर्श कहा जा सकता है। आदर्श शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त हो सकता है। एक तो जब यह शब्द विशेषण के रूप में प्रयुक्त होता है तब इसका अर्थ अयथार्थ होता है। जब यह संज्ञा होता है तब इसका अर्थ होता है 'बुद्धि द्वारा निश्चित अनुकरण करने योग्य एक धारणा।'[२] प्रेमचन्द ने आदर्श शब्द का प्रयोग द्वितीय अर्थ में ही किया है। साथ ही इससे भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि ऐसी परिस्थितियाँ भी मिलतीं हैं जिनमें ये चरित्र अवास्तविक हो गए हैं। फिर भी

१. डॉ० इन्द्रनाथ मदान की पुस्तक माडर्न हिन्दी लिटरेचर (अंग्रेजी) से उद्धृत, डॉ० मदान को लिखा हुआ दिनांक २६ दिसम्बर, १६३४ का प्रेमचन्द का पत्र।

२. कन्साइज़ आक्सफर्ड डिक्शनरी।

ये परिस्थितियाँ इस सीमा तक नहीं बढ़तीं कि हम प्रेमचन्द के चरित्रों पर अवास्तविकता (अयथार्थता) की छाप लगा दें ।

चाहे हम उनके पात्रों को आदर्श कहें या दृष्टान्त योग्य, हमें यह बात ध्यान रखनी चाहिए कि प्रेमचन्द ने अपने सुधारवादी दृष्टिकोण के कारण सदैव ही उत्तम व्यक्तियों को चुना है । इसी कारण वे किसी विशेष वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं अथवा वे उन सद्‌गुणों के मूर्तिवत् प्रतीक हैं जिनका प्रचार प्रेमचन्द करना चाहते थे । इस अर्थ में भी वे सर्वोत्तम मनुष्य हैं कि प्रेमचन्द की कला उनके नाना भाँति के गुणों से तथा उनकी साधारणता पर असाधारणता से समृद्धि प्राप्त करती है । दूसरे शब्दों में वे जीवन के प्रत्येक धरातल से अपने पात्रों का चुनाव करते हैं और सदा इस बात का ध्यान रखते हैं कि उनके द्वारा अपने मत का भी उद्‌घाटन किया जा सके, साथ ही उनको कलात्मक रूप में प्रस्तुत किया जाय ।

प्रेमचन्द के उत्कृष्ट पात्रों में सहानुभूति का ऐसा बल है जो पाठकों को बर-बस आकृष्ट कर लेता है । उनकी रचनाएँ राष्ट्रवादी भावना से ओत प्रोत हैं और उनका प्रभाव निश्चय रूप से पाठकों पर पड़ता है । उनके पात्र हम लोगों की ही तरह के होते हैं फिर भी उनमें ऐसा आदर्श है जो अनुकरणीय होता है । प्रेमचन्द के उपन्यास एक नेता बनने के इच्छुक व्यक्ति के लिए अध्ययन की अच्छी सामग्री प्रस्तुत करते हैं । जैसे एक वासनात्मक फिल्म नई पीढ़ी के युवकों के चरित्र पर प्रभाव डालती है उसी भाँति प्रेमचन्द के उपन्यास एक व्यक्ति को राष्ट्रीयतावादी बनाने में अत्यन्त सहायक होते हैं, यहाँ तक कि पाठक यदि राष्ट्रीयतावादी है तो वह नेता बनने के स्वप्न देखने लगता है । संक्षेप में उनके पात्र हमारी भाँति ही यथार्थ हैं, फिर भी वे अनुकरण करने योग्य पर्याप्त आदर्शवादी हैं ।

प्रेमचन्द के सर्वोत्तम पात्र प्रायः 'टाइप' या प्रतिनिधि होते हैं । 'टाइप' से यहाँ पर हमारा अभिप्राय उन पात्रों से है, जो अपने युग की विशेष आदर्श उपज हों अथवा वह जो किसी विशेष समय में समाज में काम करने वाली सभी शक्तियों का प्रतिनिधित्व करते हों । उनके बहुत-से अन्य पात्र ऐसे हैं जो साधारण स्त्री-पुरूषों की भाँति व्यवहार करते हैं, परन्तु उनके सर्वोत्तम पात्र टाइप ही हैं । गोदान का होरी नष्ट होती हुई सामन्तवादी परम्परा की एक प्रतिनिधि उपज है । ग्राम्य जीवन की सभी शक्तियों तथा अनुकूल और प्रतिकूल धाराओं का प्रतिनिधित्व होरी पूर्ण रूप से करता है । साथ ही अपने विशिष्ट गुणों से युक्त उसका अपना एक विशेष व्यक्तित्व है । एक टाइप में अपनी निज की कोई स्पष्ट जागरूकता

नहीं होती। यह बहुत कुछ सामाजिक निश्चयात्मकता की उत्पत्ति है । सच तो यह है कि केवल एक प्रकार के चरित्र चित्रण की अपेक्षा एक टाइप का, एक विशिष्ट व्यक्ति का चरित्रांकन अधिक कठिन है । एक टाइप के चित्रण में उपन्यासकार को इस विषय में सावधान रहना पड़ता है कि उस पात्र के व्यक्तित्व में वह युग की लगभग समस्त विशेषताओं तथा उसके सामाजिक स्तर एवं समाज के समस्त लक्षणों का उपयोग कर रहा है, जिससे उस पात्र का सम्बन्ध है ।

अब हम उनके तीन प्रकार के पात्रों का अध्ययन प्रारम्भ करते हैं जिनको वे अनुकरणीय बनाना चाहते हैं अथवा जिनके द्वारा वह सामाजिक संगठन की यथार्थ प्रकृति का उद्घाटन करना चाहते हैं और जिनका प्रतिनिधित्व ये पात्र करते हैं :

क. गोदान का होरी;
ख. रंगभूमि का सूरदास;
ग. रंगभूमि की मिस सोफ़िया;

होरी का चरित्र भारतीय ग्राम्य जीवन से लिया गया है । उसके पास कुछ एकड़ भूमि है । उसके अपने निज के दो बैल हैं, उसकी दो पुत्रियाँ हैं रूपा और सोना और एक पुत्र है गोबर तथा उसकी स्त्री धनिया है । होरी ही गोदान का प्रधान पात्र है ।

वह एक ईमानदार और परिश्रमी किसान था । जीवन-दर्शन के रूप में जो कुछ भी उसने अपने पूर्वजों से प्राप्त किया वह था केवल अपनी मर्यादा की रक्षा का पाठ । सनातन परम्परा से चली आती हुई जीवन यापन की रीति ही मर्यादा है, जिसका पालन करना प्रत्येक स्वाभिमानी ग्रामवासी अपना कर्तव्य समझता है । अपने जीवन की अन्तिम साँसों तक अपनी मर्यादा की रक्षा में होरी सफल रहा । गाँव पंचायत के पंचों के प्रति उसका आदर भाव औरों से भिन्न था। उसका विश्वास था कि पंच में परमेश्वर का वास है । उनकी आज्ञा उसने शिरोधार्य की । वह विश्वास करता था कि जब बिरादरी की इच्छा होगी तभी उसे मुक्ति मिलेगी ।

होरी गऊमाता की परम पवित्रता पर विश्वास करता है । वह सदा सब की सहायता करने को तत्पर रहता है, न केवल अपने भाइयों की ही वरन् गाँव के दूसरे लोगों की भी ।

होरी का जीवन कष्टों और आत्म-सन्ताप से भरा हुआ है । उसने सदा ही आत्मसंयम का जीवन बिताया । पंच, बनिया, महाजन तथा दूसरे अन्य लोगों

ने उसे उत्पीड़ित किया । वेदना और कष्ट के बावजूद भी होरी अपनी स्थिति से सन्तुष्ट था । वह एक अनूठा पात्र था जिसका उद्भव एवं विकास नष्ट होती हुई सामन्तवादी परम्परा से हुआ था । मर्यादा और प्रतिष्ठा पर उसके विश्वास ने तथा उसके भाग्यवाद ने (जिसके साथ भारतीय कृषकों के अन्धविश्वास भी मिश्रित थे) कभी भी होरी को यह सोचने का अवसर नहीं प्रदान किया कि जैसा जीवन वह व्यतीत कर रहा है, उससे भी अच्छा कोई जीवन पथ संसार में सम्भव हो सकता है । इससे ज्ञात होता है कि होरी एक ऐसा पात्र था जो समाज के हिंसक डाकुओं द्वारा पंगु बना दिया गया था । प्रेमचन्द ने ग्राम्य जीवन के विभिन्न शोषक वर्गों से अभिशप्त मानव का सुन्दर चित्र खींचा है ।

इस भाँति का चरित्र ग्राम्य अर्थ व्यवस्था के निम्नतम कोटि के शोषण और उत्पीड़न का पूर्ण अथवा मूर्तिमान स्वरूप है जो आज भी गाँवों में दिख सकता है । होरी का चरित्र इस प्रकार का नहीं है जो सामन्ती युग के प्रारम्भ में अथवा उसके मध्य में पाया जा सके । जब सामन्ती जीवन अपनी पतनावस्था की चरम सीमा तक पहुँच जाता है तभी होरी और उसके पुत्र गोबर के जैसे चरित्रों का उत्पन्न होना संभव है ।

पुलिस को घूस देकर अपने भाई के घर की तलाशी न होने देना उसके जीवन की एक महान विजय है । ऐसा विश्वास वास्तव में होरी की भाग्य विडम्बना ही है । अपनी मर्यादा के नाम पर वह कितना ही धन खर्च कर सकता है । उसे जमींदार के दैवी अधिकार पर विश्वास है । एक किसान के जीवन की वास्तविक समस्या यह नहीं है कि वह अपने दिन-प्रतिदिन के जीवन में इस प्रकार की तुच्छ विजयें प्राप्त करे वरन् उसकी समस्या वास्तव में अपनी आर्थिक स्थिति को सुधारने में और अपने अधिकारों के उपभोग की स्वतन्त्रता प्राप्त करने में है । उसकी तथाकथित विजय वास्तव में उसकी पराजय की घोषणा करती है । उसकी बुद्धि, जो विजय और पराजय का अन्तर समझने में असमर्थ है, उसे अपनी हीन स्थिति के प्रतिकूल विद्रोह करने में बाधा पहुँचाती है ।

मुंशी प्रेमचन्द यथार्थवाद के सिद्धान्त का उल्लंघन करने के लिए दोषी ठहराए जाते यदि उन्होंने गोबर के बिना ही होरी का चरित्र चित्रित किया होता । गोबर में विद्रोह की भावना मूर्तिमान हो उठती है अतः होरी का चरित्र उसके बिना कभी भी पूर्ण न होता । दोनों ही अविभाज्य हैं । ये दोनों एक दूसरे से पृथक नहीं किए जा सकते ।

होरी अपने ऐसे वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है जो अपने अधिकारों और प्राप्त सुविधाओं के प्रति भी जागरूक नहीं था और इन अधिकारों और सुविधाओं के सुरक्षित रखने की रीति और साधनों का भी ज्ञान उसे नहीं था। यही मुख्य कारण है कि इस वर्ग में अब भी वही प्राचीन तत्व प्रमुख और सक्रिय हैं। फिर भी प्रगतिशील शक्तियों ने अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया था, उदाहरणार्थ किसान आन्दोलन, जिसने कि भारतीय कृषकों की सामूहिक भावना से सम्पर्क स्थापित किया। नवयुवकों ने इस नवीन जागरण के प्रति अपने को सचेष्ट करना प्रारम्भ कर दिया था। अतः उनमें विद्रोह की भावना पैदा हो गई, परन्तु अब भी इसका स्वर निर्बल ही था। मुंशी प्रेमचन्द इस नवजागरण से परिचित थे। गोदान के अन्तिम अंश में होरी की मृत्यु हो जाती है। होरी की मृत्यु 'पुराने किसान' या उस वर्ग के प्राचीन तत्व की समाप्ति का प्रतीक रूप है।

गोबर, जो उपन्यास का एक दूसरा विशेष पात्र है, अपने पिता के स्थान पर आता है। परिणामस्वरूप कृषक जीवन की प्राचीन धारणाएँ खतरे में पड़ जाती हैं और एक बड़ा परिवर्तन आता हुआ दिखाई देता है। यह गोदान की सबसे बड़ी विशेषता है।

इसके बाद अब हम सूरदास के चरित्र पर विचार करेंगे। सूरदास रंगभूमि का एक अंधा भिखारी है। उसे उसके गाँव का गांधी भी कहा जा सकता है। वह अत्यन्त वृद्ध और जीर्ण है। उसकी देख रेख करने वाला इस दुनिया में कोई नहीं है। उसकी आँखों की ज्योति यद्यपि चली गई है परन्तु उसमें एक दृष्टा और राजनीतिज्ञ की अन्तर्दृष्टि अवश्य है। सत्य ही उसका मन्त्र है और सत्याग्रह उसका हथियार। उसकी शक्ति का रहस्य उसका जनता का प्रतिनिधि होना है। सूरदास अहिंसा के उपदेश का प्रचारक है। उसकी मृत्यु पर प्रेमचन्द का यह कथन विचारणीय है :

"हाँ, वह साधू न था, महात्मा न था, फरिश्ता न था बल्कि एक हकीर और कमज़ोर इंसान था। मकरूहात दुनियाबी से घिरा हुआ, जिसमें बुराइयाँ भी थीं और भलाइयाँ भी। भलाइयाँ कम थीं, बुराइयाँ बहुत; गुस्सा, हिरस, तलव्वुन, गरूर यह सभी बुराइयाँ उसमें मौजूद थीं। वस्फ सिर्फ एक था, मगर यह सभी कमजोरियाँ उस एक वस्फ से मिलकर नमक की कान में जाकर नमक हो जाने वाली चीजों की तरह खूबियों की शक्ल अख्तियार कर लेती थीं। गुस्सा जायज गुस्सा हो जाता था, हिर्स मुहब्बत बन जाती थी, तलव्वुन जोश की शक्ल में

जाहिर होता था और गुरूर खुद्दारी की सूरत में। वह वस्फ क्या था? हकपरस्ती, इन्साफपसन्दी, ईसार ए नफ्सी या हमदर्दी या उसका जो नाम चाहिए रख लीजिए। ना इंसाफी देखकर उससे न रहा जाता था, ज्यादती उसके लिए नाकाबिले बर्दाश्त थी।"

प्रेमचन्द द्वारा लिखित यह सुन्दर अंश मानव मस्तिष्क की पेचीदगियों का उद्‌घाटन करता है। सूरदास एक साधारण मनुष्य की भाँति था लेकिन उसमें बुद्धि का विलक्षण सन्तुलन था जो किसी के जीवन के शान्त क्षणों में एक विवेकी आलोचक (विवेचक) के रूप में कार्य करता है और जो एक मनुष्य के सद्कृत्यों का कारण होता है। उसका अपना एक व्यक्तित्व है जिसके कारण वह महत्वपूर्ण अवसरों पर उसके प्रदर्शन से अपनेआप को रोक नहीं सकता। यही उसका प्रमुख गुण था।

सूरदास के निम्नलिखित शब्दों में अहिंसा का सन्देश पढ़ा जा सकता है: "भाइयो तुम लोग ऊधम मचाकर मुझे क्यों कलंक लगा रहे हो। आग लगाने से मेरे दिल की आग न बुझेगी। लहू बहाने से मेरा दिल शान्त न होगा। परमात्मा से कहिये मेरा दुख मिटाये। भगवान से विनती कीजिए मेरा संकट हरे। जिन्होंने मुझ पर जुलुम किया है उन लोगों के दिल में दया-धरम जागे। बस मैं आप लोगों से और कुछ नहीं चाहता।"

सूरदास यह विश्वास करता हुआ ज्ञात होता है कि राजनीति में प्रार्थना का प्रयोग एक शक्ति (बल) के रूप में किया जा सकता है। अहिंसावादी सत्याग्रही का यह अन्तिम हथियार है। यह भारतीय राजनीति का बिल्कुल गांधीवादी मार्ग है।

रंगभूमि में जिस जीवन-दर्शन का प्रतिपादन सूरदास करता है वह इस प्रकार है:

"नुक्सान, जीना, मरना, नेकनामी-बदनामी सब तकदीर के साथ हैं, हम तो खाली मैदान में खेलने के लिए बनाए गए हैं। सभी खिलाड़ी मन लगाकर खेलते हैं। सभी चाहते हैं कि हमारी जीत हो। पर जीत तो एक ही की होती है। तो क्या इससे हारने वाले हिम्मत हार जाते हैं? वह फिर खेलते हैं। फिर हार जाते हैं तो फिर खेलते हैं।"

यह एक सच्चे अहिंसावादी सत्याग्रही का मत है। वह एक भाग्यवादी है जिसमें सहनशीलता और दृढ़ इच्छा शक्ति के सद्‌गुणों का समावेश है। एक अहिंसा-वादी सत्याग्रही निस्सन्देह हारता है परन्तु वह पराजय में विश्वास नहीं करता।

सूरदास का चरित्र एक ओर पाशविक शक्ति और दूसरी ओर जनता के आध्यात्मिक प्रतिरोध के संघर्ष का प्रतिनिधित्व करता है । यद्यपि स्पष्ट रूप से लाठी वर्षा और पुलिस फायरिंग के प्रभाव से भीड़ तितर-बितर हो जाती है फिर भी उनका मतैक्य समस्या को और गम्भीर बना देता है । वातावरण में कुछ अधिक खिचाव आ जाता है । एक ईमानदार समालोचक यह निर्णय देने में लेश-मात्र भी संकोच नहीं करेगा कि सूरदास जॉन सेवक के विरुद्ध अपने संघर्ष में सफल रहा । उसको अपनी भूमि से हाथ धोना पड़ा । सूरदास एक अत्यन्त शक्तिशाली व्यक्तित्व वाला मनुष्य है । उसकी अन्तर्दृष्टि खुली हुई थी । वह ऐसा था, जो संसार में रहकर भी संसार का न था, विरागी था, त्यागी था । उसने प्रत्येक अवसर पर अपनी अन्तःकरण की प्रेरणा के अनुसार ही व्यवहार किया, जो उपन्यास की रचना सम्बन्धी विकास के अनुरूप भी था । उदाहरणार्थ जब सुभागी को गाँव के छोकरों ने तंग किया अथवा जब सूरदास के झोपड़े में आग लगा दी गई तब सूरदास के चरित्र की यही विशेषताएँ बड़ी सरलता के साथ उद्घाटित होती हैं ।

चर्चा के योग्य एक अन्य पात्र मिस सोफिया रंगभूमि में एक नारी पात्र है । वह एक लज्जाशीला तरुणी है । उसके नेत्र बड़े और सुन्दर हैं । उसका छरहरा शरीर ऐसा प्रतीत होता है मानो फूलों की पंखड़ियों से बनाया गया हो । उसकी आकृति साक्षात् विनम्रता और लज्जा की प्रतिमूर्ति है । कितनी सुन्दर है वह ? वह नारी के समस्त पार्थिव सौन्दर्यों का अतिक्रमण कर जाती है । वह विनय से प्रेम करती है और विनय उससे, परन्तु उसने विवाह नहीं किया । नायक पुलिस की गोली का शिकार होता है और नायिका नदी में डूबकर मर जाती है । कथा समाप्त हो जाती है । इसकी समाप्ति दुःखान्त होती है । परन्तु इस दुःखान्त कथा का भी एक उज्ज्वल पहलू है । सोफिया कहती है कि धर्म वहाँ बाधक होता है जहाँ प्रेम का लक्ष्य विवाह होता है, परन्तु वहाँ नहीं जहाँ प्रेम त्याग के लिए होता है । विनय कहता है कि जब कोई उसके समीप पहुँचता है तो मृगतृष्णा तो मरु-स्थल में परिवर्तित हो जाती है । उसके लिए मिस सोफिया एक जीवित आदर्श है । उसके प्रेम का आनन्द वह केवल अपने भावों और विचारों में पाता है । उसे भय था कि किसी दिन वह सोफिया द्वारा तिरस्कृत न किया जाए, क्योंकि वह अपने सच्चे स्वरूप को छिपाने में कब तक समर्थ रहता । यदि वह सोफिया को प्राप्त कर लेता तो जीवन में कोई आनन्द शेष नहीं रहता तथा वह अपनी समस्त प्राप्तियों और आराधनाओं से वंचित हो जाता ।

मिस सोफिया निष्कपटता, सेवा और त्याग की साकार प्रतिमा है। मुंशी प्रेमचन्द का एक आदर्श है जो वे प्रत्येक नारी में चाहते हैं। यह आदर्श इस प्रकार है कि नारी त्याग, सेवा और पवित्रता की साकार मूर्ति है।[1] मिस सोफिया की ओर सिंहावलोकन करने पर पाठक को एक ऐसी नारी मिलती है जिसकी तुलना उसकी पत्नी, बहन या मां से नहीं हो सकती परन्तु उसकी यह तीव्र इच्छा होती है कि उनमें से कोई उसके समान हो।

यदि किसी समाज की भौतिक स्थितियाँ श्रीमती एनीबीसेंट जैसा चरित्र उत्पन्न कर सकती हैं तो एक उपन्यासकार की कल्पना मिस सोफिया के चरित्र की उद्भावना भी कर सकती है। कुछ लोगों की धारणा है कि श्रीमती एनीबीसेंट के व्यक्तित्व से ही प्रभावित होकर मिस सोफिया के चरित्र का प्रादुर्भाव हुआ है।

मुंशी प्रेमचन्द द्वारा चित्रित कुछ आदर्श चरित्रों की चर्चा चरित्र-चित्रण की कला के संदर्भ में हमने की है, परन्तु विस्तार से नहीं केवल उदाहरण रूप में ही, जैसे, विनय अथवा अमरकान्त के चरित्रों का उल्लेख नहीं हुआ और न किसी नारी पात्र की ही चर्चा हुई है। प्रेमचन्द ने एक बड़ी संख्या में आदर्श चरित्रों का चित्रण किया है और उनमें से सबके साथ पूर्ण न्याय बरता है। एक आदर्श चरित्र दूसरे आदर्श चरित्र का प्रतिबिम्ब नहीं है, वरन् उनका स्वतन्त्र प्रादुर्भाव हुआ है। प्रत्येक का अपना निजी व्यक्तित्व है। प्रथम तो उन्होंने अपने ये आदर्श चरित्र जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से चुने हैं और दूसरी बात यह कि एक आदर्श चरित्र दूसरे के गुणों से भिन्न है। चक्रधर कायाकल्प में इसी प्रकार का एक आदर्श चरित्र है और सूरदास की चर्चा हो ही चुकी है। इन दोनों व्यक्तित्वों का सावधानी से विश्लेषण करने के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि सूरदास ने अपने जन सम्बन्धी एकीकरण के साथ जीवन के भौतिक गोचर पदार्थों का पूर्णत्व प्राप्त कर लिया था, जबकि चक्रधर अभी उसी पथ का राही है। सूरदास एक सन्त अथवा महात्मा है जबकि चक्रधर की विचारधारा उस ओर झुकती दिखाई दे रही है। अन्त में चक्रधर साधु हो गया, परन्तु सूरदास फिर भी एक सन्त और साथ ही साथ एक सांसारिक बुद्धिवाला व्यक्ति बना रहा। दूसरे शब्दों में, सूरदास गुरु है और चक्रधर उसका शिष्य। यह विभिन्नता (अंतर) स्पष्ट ध्यान देने योग्य है। यह वास्तव में बड़ा सूक्ष्म अन्तर है।

---

१. डॉ० इन्द्रनाथ मदान को लिखा प्रेमचन्द का ता० ७.६.१६३५ का पत्र, जो डॉ० मदान के माडर्न हिन्दी लिटरेचर में प्रकाशित हुआ है।

यह अन्तर एक बहुत छोटा अन्तर है क्योंकि इन दोनों उपन्यासों की घटनाओं और कथानकों में एक महान् अन्तर है, परन्तु साथ ही यह दिखाने के लिए उनका उल्लेख करना है कि मानव जीवन का आदर्श एक नहीं है, एक से अधिक भी आदर्श चरित्र हो सकते हैं। साथ ही प्रेमचन्द ने अपने विभिन्न प्रकार के आदर्श चरित्रों के निर्माण में जिन स्रोतों का उपयोग किया है वे असीमित हैं। उपन्यासकार ने भिन्न-भिन्न आदर्श चरित्र जीवन की भिन्न-भिन्न परिस्थितियों से चुने हैं।

प्रेमचन्द की चरित्रांकन-कला वास्तव में उस समय अत्यन्त श्रेष्ठ होती है जब वह 'सम चरित्रों' का चित्रण करते हैं, क्योंकि वह इनके प्रतिकूल जनमत को सतर्क करना चाहते थे। प्रेमचन्द के तीन महत्वपूर्ण सम चरित्र निम्नलिखित हैं :

क. माहिर अली पुलिस सब-इंस्पेक्टर।

ख. नावकराम।

ग. मुंशी तोताराम।

माहिर अली चौगाने हस्ती में पुलिस सब-इंस्पेक्टर है। यह एक सामान्य धारणा है कि पुलिस का दरोगा वर्ग जनता के लिए एक आतंक होता है। ये भोले-भाले गरीबों का उत्पीड़न करते हैं और किसी के खिलाफ भी झूठे अपराध बनाने में अत्यन्त पटु होते हैं। वे दूसरे के धन पर बड़ा विलासमय और अनैतिक जीवन व्यतीत करते हैं। पुलिस दरोगा के भ्रष्टाचारी जीवन की पूर्ण अभिव्यक्ति माहिर अली के चरित्र में मिलती है। माहिर अली का अपना निजी कोई व्यक्तित्व नहीं, परन्तु अपने वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में उस विशेष वातावरण में उसका अच्छा चित्रण हुआ है। माहिर अली पाठक की सहानुभूति कहीं नहीं प्राप्त करता है।

नावकराम चौगाने हस्ती का एक अन्य पात्र है। वह मुंशी प्रेमचन्द की एक कहानी सत्याग्रह के पं० मोटेराम का बिल्कुल प्रतिरूप है। नावकराम और मोटेराम दोनों को हमेशा भूख सताती रहती है और मौके-बेमौके वे अपनी उदरपूर्ति के हेतु बैठ जाते हैं। उनकी राक्षसी भूख बड़ी विकट है। ये बड़े मोटे और लालची हैं और असफल लोमड़ी की भाँति कभी-कभी अंगूर खट्टे हैं की उक्ति का कथन भी करते हैं। केवल स्वार्थ ही उनका जीवन-दर्शन है। यही कुछ लक्षण हैं जो नावकराम के चरित्र के विकास को शासित करते हैं।

मुंशी तोताराम, जिनकी अवस्था ३५ वर्ष की है, निर्मला नाम की एक १५

वर्ष की अवस्था वाली लड़की से विवाह करते हैं, जिनके नाम के आधार पर उपन्यास का नाम 'निर्मला' है। अवस्था की यह असमानता ही निश्चित रूप से दोनों के विषादपूर्ण वैवाहिक सम्बन्ध की उत्तरदायी है। कुछ भी हो, तोताराम ने उससे विवाह करने में कुछ उठा नहीं रखा। वह कभी न सोच सके कि वे उससे अवस्था में बीस वर्ष बड़े हैं। उन्हें सन्देह पैदा हो गया कि उनके पुत्र मनसा ने उनकी पत्नी के साथ घनिष्टता बढ़ा ली है और इसीलिए वे उसके प्रति उदासीन रहे। तोताराम की यह गलतफहमी (मिथ्या प्रतीति) ही उनके चरित्र को शासित करती है। कुछ बड़ी महत्वपूर्ण घटनाएँ घटित हुईं परन्तु फिर भी उनका सन्देह बना ही रहा। प्रारम्भ से उपन्यास के अन्त तक मुंशी तोताराम इसी गलतफहमी के शिकार रहे। मिथ्या भ्रम में भ्रमित रहे।

ये सभी चरित्र अत्यन्त महत्वपूर्ण बन पड़े हैं क्योंकि प्रेमचन्द ने इनका निर्वाह अत्यन्त सफलतापूर्वक किया है।

उपन्यासकार का कार्य उस समय विशेष रूप से कठिन हो जाता है जब उसे किसी पात्र के जीवन के संकट काल के मध्य में उसको चित्रित करना पड़ता है। उसे उन शक्तियों के रूप का सावधानी से विश्लेषण करना होता है जो संकट एवं विनाश उत्पन्न करती हैं। पात्र के आन्तरिक व्यक्तित्व का अध्ययन भी सुचारु रूप से होना अपेक्षित है।

सेवासदन के कृष्णचन्द्र को जब ज्ञात होता है कि उसकी पुत्री सुमन वेश्या हो गई है तो वह आत्महत्या कर लेता है। वह वेश्या इसी कारण से हो जाती है क्योंकि उसकी परिस्थितियाँ उसे ऐसा करने को विवश करती हैं। प्रथम तो वह अपने पति द्वारा तिरस्कृत हुई और दूसरे उसकी एक अच्छा जीवन व्यतीत करने की कामना ने उसे भोली नामक वेश्या से मित्रता करने को बाध्य कर दिया। मुंशी प्रेमचन्द ने एक विशेष वातावरण का निर्माण यह दिखाने के लिए कर दिया है कि कैसे और क्यों उसने आत्महत्या की ? संक्षेप में, आत्महत्या जैसा संकट भी विशेष परिस्थितियों की उपस्थिति द्वारा पूर्णतः न्याययुक्त सिद्ध कर दिया गया है। कृष्णचन्द्र की मानसिक स्थिति निम्नलिखित पंक्तियों में स्पष्ट है :

"तो किरशन चन्द्र ने आसमान की तरफ देख कर कहा या ईश्वर अब मुझे उठा लो ये ज़िल्लत नहीं सही जाती। आज उन्हें अपनी नामूसी का हकीकी एहसास हुआ कि सुमन के खून से यह दाग़ नहीं मिट सकता। इसी तरह जैसे साँप को मारने से उसका जहर नहीं उतरता। उसका खून करने से रुसवाई के सिवा और क्या होगा। पुलिस गिरफ्तार कर लेगी। महीनों इधर-उधर मारा-

मारा फिरूँगा । और इतनी ज़िल्लत ख्वारी के बाद फाँसी चढ़ा दिया जाऊँगा । इससे तो कहीं बेहतर है कि डूब मरूँ । उस चिराग़ ही को गुल कर दूँ जिसकी रोशनी में यह खौफ़नाक मनाज़िर दिखाई देते हैं ।"

यह आत्महत्या करने को सन्नद्ध व्यक्ति की अस्त-व्यस्त और असन्तुलित मानसिक स्थिति का सच्चा चित्र उपस्थित करता है ।

इस प्रकार के और अधिक उदाहरण दिए जा सकते हैं । ज्वालासिंह डिप्टी मजिस्ट्रेट के पद को त्याग देता है और प्रेमाश्रम के नायक ज्ञानशंकर के साथ रहना प्रारम्भ कर देता है । सलीम सिविल सरविस से त्यागपत्र देकर सकीना से विवाह कर लेता है, जो कर्मभूमि के नायक अमरकान्त से प्रेम करती है । वास्तव में यह एक व्यक्ति के जीवन की महान् घटना है जबकि वह अत्यन्त आनन्द के जीवन को छोड़कर देश-हित के लिए त्यागपत्र दे देता है । इन संकटकालीन स्थितियों का निर्वाह प्रेमचन्द ने अत्यन्त सफलापूर्वक किया है ।

प्रेमचन्द के प्रत्येक उपन्यास में एक उच्च धारणा, एक श्रेष्ठ आदर्श और मानवीय चरित्र में जो भी सुन्दर हो सकते हैं वह सब एकत्र कर दिये गये हैं । उनके प्रारम्भिक उपन्यास बहुत कुछ साधारण हैं परन्तु उनकी प्रौढ़ कृतियों में कोई भी उस जीवन दर्शन को पढ़ सकता है जो प्रेमचन्द ने प्रतिपादित किया है ।

जीवन के प्रति उनका स्थिर दृष्टिकोण है । वे न तो भटके हुए हैं और न परस्पर विरुद्ध भावनाओं से युक्त हैं । जहाँ तक उपन्यास के इस तत्व का सम्बन्ध है, वे समस्त भारतीय उपन्यासकारों में सर्वश्रेष्ठ हैं । डॉ० नजीर अहमद और डॉ० रुसवा भी उनका मुकावला नहीं कर पाते हैं । कुछ विदेशी प्रभावों ने उनके विचारों को वैज्ञानिक क्रम में ढालने में विशेष सहायता की । वह एक वर्ग के द्वारा दूसरे वर्ग के उत्पीड़न और शोषण को बुरा समझते थे । वे भारतीय कृषक वर्ग की मौजूदा अर्थ व्यवस्था से अत्यन्त असन्तुष्ट थे । उनका जमींदारी प्रथा में विश्वास नहीं था लेकिन पंचायतों के विचार को वे पसन्द करते थे, जिससे किसान अपने को शासित करता है । नजराना तथा बेगार जैसी बुराइयों के वे स्वभाव से विरोधी हैं । गाँव का महाजन, साहूकार या बनिया कुछ ऐसे चरित्र हैं जिन्हें वे बिल्कुल नापसन्द करते हैं । जहाँ तक आज के समाज की औद्योगिक अर्थ-व्यवस्था का सम्बन्ध है उनकी सहानुभूति श्रमिकों के साथ है पूंजीपतियों के साथ नहीं । संक्षेप में उनके सभी मुख्य उपन्यास भाव की दृष्टि से समाजवादी हैं, यद्यपि वैज्ञानिक समाजवाद के दृष्टिकोण से वे प्राचीन परम्परा और वास्तविक समाजवाद के बीच के हैं । 'प्रेमाश्रम' में बलराज नाम का एक पात्र कहता है :—

"तुम लोग तो ऐसी हँसी उड़ाते हो मानो कास्तकार कोई चीज ही नही होता। वह जमींदार की गुलामी ही करने के लिए बनाया गया है, लेकिन ठाकुर चाचा के घर जो अखबार आता है उसमें लिखा है कि रूस देश में कास्तकारों ही का राज है। वही जो चाहते हैं करते हैं। उसी के पास कोई देश है, वहाँ थोड़े ही दिन हुए कास्तकारों ने राजा को गद्दी से उतार दिया है और अब कास्तकारों की एक पंचायत राज कर रही है।

कादिर : (बे एतिबाराना अंदाज से) मनोहर आओ उसी देस में चलें, वहाँ मालगुजारी न देना पड़ेगी ......। तो जब उस देस के कास्तकार राज कर सकते हैं तो क्या हम अपनी फरियाद भी नहीं कर सकते।"

प्रेमचन्द इस बात को महत्व देना चाहते हैं कि १९२२ ई०[1] में किसान उत्पादन के साधनों में अपने अधिकारों और अपनी वस्तु-स्थिति एवं अवस्था के प्रति जागरूक हो गया था। रूस ने किसान राज्य स्थापित कर दिया था और यह तथ्य भारत के भीतरी भागों में रहने वाले किसानों तक भी पहुँच चुका था। दिर मियाँ इस वर्ग जागृति का अनुभव करते हुए विरोध का स्वर ऊँचा करते हैं।

प्रेमचन्द द्वारा इन पात्रों के मुख से कहलाए हुए वह शब्द उनके इस रूप में उस समस्या के ज्ञान को स्पष्ट करते हैं जिसे हम समाजवादी यथार्थ कहते आए हैं। इसमें तो किंचित् मात्र भी सन्देह नहीं कि भारतीय लेखकों में प्रेमचन्द ही सर्वप्रथम समाजवादी आदर्शों को लेकर साहित्य क्षेत्र में अवतरित हुए। भारतीय जीवन की आधारभूत समस्याओं के प्रति उनका दृष्टिकोण यह निर्देश करता है कि देश में उठती हुई क्रान्ति और विकास की शक्तियों के साथ सदा वे रहे हैं। जहाँ भी उन्होंने नैतिक सिद्धान्तों के प्रतिकूल कोई बात पाई है बड़ी ही निर्भीकता से उसको व्यक्त किया है। ये सिद्धान्त संकीर्ण धार्मिक बन्धनों से नहीं वरन् मानव आत्मा की श्रेष्ठता के महान् आदेशों से गृहीत हुए हैं। उनके उपन्यास में कृषकों और श्रमिकों के बुर्जुआ उत्पीड़न के सभी रूपों के विरुद्ध वास्तव में एक (धर्म) युद्ध दृष्टिगोचर होता है।

उपन्यास में यथार्थवाद की चर्चा करते हुए हमने संकेत किया है कि महान् उपन्यासकार वही है जो केवल जीवन की आलोचना ही नहीं करता वरन् जो जीवन के साथ अनुभवों के आधार पर प्रयोग भी करता है। ऐसा लेखक मानवता

---

१. सन् १९२२ प्रेमाश्रम के प्रकाशित होने का वर्ष है।

के जीवन-यापन के तौर-तरीकों का प्रतिपादन भी करता है। यह प्रेमचन्द के विषय में सर्वाङ्ग सत्य है। उनकी महान् कृतियों में जीवन पर प्रयोग किये गये हैं और साथ ही जीवन-यापन की सुन्दर रीतियों का निर्देश भी हुआ है।

प्रेमाश्रम में प्रेमशंकर किसानों की दशा सुधारने का विचार लेकर अमेरिका से लौटता है और अपने विचारों को कार्यान्वित करने का भरसक प्रयत्न करता है। वह अपने गाँव में सामूहिक खेती का एक प्रयोग प्रारम्भ करता है। वह दूसरे गाँवों के लिए एक आदर्श उपस्थित करने का प्रयत्न करता है। प्रेमशंकर अपने गाँव में रामराज्य स्थापित करने में सफल हो जाता है। प्रेमाश्रम एक रचनात्मक ढंग की कृति है परन्तु यह भारतीय गाँवों में रामराज्य स्थापित करने का प्रचार ही नहीं है। यह एक ऐसा उपन्यास है जिसमें मुंशी प्रेमचन्द ने यह दिखाने का भरसक प्रत्यन किया है कि कैसे और किस रूप में रामराज्य लाना सम्भव है। रामराज्य के प्रवर्तक को महान् कठिनाइयों और कष्टों से भरे हुए अन्त का सामना करना पड़ा। यह एक या दो दिन के परिश्रम का फल नहीं था वरन् इसमें प्रेमशंकर का सम्पूर्ण जीवन लगा था। प्रेमचन्द ने इसकी भी चर्चा की है कि एक भारतीय ग्रामवासी के लिए रामराज्य है क्या? भारतीय अर्थ व्यवस्था में रामराज्य का विचार एक महान् देन है। महात्मा गांधी अपने जीवन भर भारत के गाँवों में रामराज्य स्थापित करने का प्रयत्न करते रहे। महात्मा गांधी और मुंशी प्रेमचन्द दोनों के ही रामराज्य सैद्धान्तिक रूप से एक ही हैं।[1]

रामराज्य मुंशी प्रेमचन्द का आदर्श ग्राम राज्य है। वह एक ऐसे व्यक्ति थे जो समाज की इस मौजूदा पद्धति पर विश्वास नहीं रखते थे और इसलिए उन्होंने पग-पग पर प्रचलित बुराइयों पर विजय पाने के तरीकों और साधनों का निर्देश किया है। मुंशी प्रेमचन्द द्वारा निर्देशित ढंग से आज के समाज की बुराइयों का वहिष्कार अनियमित नहीं है क्योंकि समाज के संचालन की उनकी एक निश्चित कल्पना और पद्धति है। इस सम्बन्ध में दो उपन्यासों का उल्लेख कर देना पर्याप्त है जिन्होंने बुराइयों का उन्मूलन करने में पूर्ण प्रयत्न किया है, ये हैं सेवासदन और बेवा।

सेवासदन में वेश्यावर्ग के विरुद्ध संघर्ष का प्रयत्न है। समाज का यह वर्ग नैतिक दृष्टिकोण से पूँजीपति वर्ग से भी अधिक बुरा है। दोनों का ही उन्मूलन होना आवश्यक है। वेश्यावृत्ति समाज के लिए एक अत्यन्त जघन्य अपराध और कलंक

---

१. परिशिष्ट क देखिए।

है । इस उपन्यास में प्रेमचन्द ने इस समस्या के प्रत्येक पहलू पर दृष्टिपात किया है । डॉ० इन्द्रनाथ मदान सेवासदन के सम्बन्ध में लिखते हैं, "युगों-युगों से प्राचीन वेश्यावृत्ति परम्परा पर नैतिक और भावनात्मक सिद्धान्तों के प्रहार हुए हैं । मनुष्य की बहुपत्नीत्व की मौलिक स्वाभाविक प्रवृत्ति, वेश्यावृत्ति जिसका परिणाम है, उनके द्वारा बिल्कुल उपेक्षित कर दी गई है ।" यदि यह सत्य है, तो इसका अर्थ यह हुआ कि वेश्यावृत्ति का उन्मूलन कभी भी नहीं हो सकता । परन्तु ऐसा कहा जाता है कि सोवियत रूस में वेश्यावृत्ति पूर्णतः समाप्त कर दी गई है । प्रेमचन्द ने इस उपन्यास में इसके आर्थिक पहलू पर भी विचार किया है ।

बेवा हिन्दू विधवाओं के पुनर्विवाह के लिए संघर्ष करता है । दीनानाथ रूपा से विवाह करने से इनकार कर देता है क्योंकि वह सोचता है कि यदि वह एक विधवा से विवाह करे तो ज्यादा अच्छा है । प्रेमा की कथा उपर्युक्त कथानक से भिन्न जान पड़ती है । सम्पूर्ण उपन्यास एक हिन्दू विधवा के दुःखपूर्ण जीवन को सच्चाई से प्रस्तुत करता है । उनके मत से विधवा समस्या का केवल यही एक हल है कि विधुर व्यक्ति विधवाओं से पुनर्विवाह करें । उन विधवाओं के लिए जिनका पुनर्विवाह नहीं हो पाता है, प्रेमचन्द आश्रमों में प्रविष्ट होने का सुझाव देते हैं, जहाँ वे अपने को धार्मिक, सामाजिक अथवा राजनैतिक कार्यों के हेतु समर्पित करके समाज के समक्ष एक आदर्श प्रस्तुत कर सकें ।

बेवा और सेवासदन प्रेमचन्द के महत्वपूर्ण उपन्यास हैं । उन्होंने इन कृतियों के द्वारा समाज की कतिपय जघन्य बुराइयों से संघर्ष करने तथा प्रतिकूल जनमत जागृत करने का प्रयास किया है । ये बुराइयाँ भारतीय समाज के पतन और खोखलेपन को प्रकट करती हैं । कालान्तर में उपन्यासकार रामराज्य के स्वर्णिम स्वप्न की कल्पना करने और उसमें आश्रय ढूँढने पर विवश हो जाता है । **निर्मला** उन नवयुवतियों की दुःखान्त कथा है जो अपने माता-पिता द्वारा धनी बूढ़े पतियों के हाथ धन के लालच में विवाह के नाम से बेच दी जाती हैं । वय में पति उनके पिता के समान होता है । **रंगभूमि** में पाशविक शक्ति और अहिंसा का संघर्ष चित्रित है । **कायाकल्प** गोवध की समस्या का हल प्रस्तुत करता है । एक पशु के लिए मनुष्य को अपना रक्त बहाने की आवश्यकता नहीं । किसी हिन्दू या मुसलमान का जीवन किसी गाय के जीवन से अधिक मूल्यवान है । **गबन** क्षुद्र, बुर्जुआ समाज के अशान्त मस्तिष्क का चित्रण है । जीवन-यापन के अपेक्षाकृत अच्छे स्तर की आकांक्षा इस वर्ग में विशेष रूप से बलवती है । **कर्मभूमि** वृहद्स्तर पर सत्याग्रह का चित्र है । इसमें १९३० ई० के अशान्त और विप्लवकारी दिनों के भारत का इतिहास उपन्यास के साहित्यिक

ढाँचे में सुन्दरता से चित्रित है। कर्मभूमि खिंचाव, तनाव और संघर्ष तथा अशान्ति के उस वातावरण को प्रस्तुत करता है जो भारतवर्ष में राजनीतिक तनातनी के युग में अत्यन्त तीव्र रूप में विद्यमान था। **गोदान** भारतवर्ष के ग्रामीण जीवन का वैज्ञानिक अध्ययन है। हमने ऊपर संक्षेप में प्रेमचन्द के सभी उपन्यासों की कथावस्तु दी है। केवल उन्हीं उपन्यासों का, जिनकी चर्चा पीछे नहीं हुई है यहाँ पर पर्याप्त विस्तार से विचार हुआ है। इन उपन्यासों में से केवल चार ही प्रेमचन्द द्वारा अपने उपन्यासों में उपस्थित जीवन-दर्शन के अध्ययन में सहायक होने की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। ये चार हैं—प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कर्मभूमि और गोदान।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये सभी उपन्यास उन विषयों से सम्बन्धित हैं जो भारतवर्ष को स्वाधीन बनाने में सहायक हो सकते थे। उनके उपन्यास भारतीय समाज में चलने वाले वर्ग संघर्ष का चित्रण करते हैं। वे जमींदारी, पूँजीवाद और जनता के शोषक सामन्तवादियों की आलोचना करते हैं। वह रामराज्य का आदर्श प्रस्तुत करते हैं। उनके मत से यह ग्रामीण जीवन के सभी दोषों को दूर करने की अचूक औषधि है। वे उस आदर्श को प्राप्त करने के लिए साधनों और उपकरणों का निर्देश भी करते हैं। इस आदर्श की प्राप्ति के इन साधनों और उपकरणों के निर्देशन में उपन्यासकार को जनसाधारण की क्रांति की भावना को समझना पड़ता है जो प्रायः सत्याग्रह के रूप में ही व्यक्त हुई है। प्रेमचन्द के लिए सत्याग्रह सदैव अहिंसात्मक ही रहा है, पुलिस तो फायरिंग और लाठी चार्ज का आश्रय लेती ही है। अतएव जनता का इस दुर्गति से आदर्श जीवन की ओर परिवर्तन भी शांतिपूर्ण नहीं है।

महात्मा गांधी की विचारधारा का प्रेमचन्द पर पूर्ण प्रभाव था। लुई फिशर ने लिखा था कि आज भारत के लोग गांधी के आदर्शों की अपेक्षा गांधी के व्यक्तित्व का अधिक आदर करते हैं।[1]

प्रेमचन्द को गांधी के व्यक्तित्व की अपेक्षा उनके सिद्धांतों के प्रति अधिक आकर्षण था। प्रथम महायुद्ध के पश्चात् समाजवाद प्रायः प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति का आदर्श बन गया था। आध्यात्मिक भारत का 'परिणामवाद' के सिद्धांत पर स्वाभाविक विश्वास है। अतएव हम इन प्रभावों की झलक उनकी विविध

१. अमृत बाजार पत्रिका, दिनांक ११ जुलाई, १६५६;

कृतियों में पाते हैं और इसमें कोई संदेह नहीं कि उनकी कृतियाँ युग निर्मात्री कही जा सकती हैं।

अभी तक उपन्यास-शिल्प की मुख्य विशेषताओं को प्रकाश में रख कर हमने उपन्यासकार के रूप में प्रेमचन्द के गुणों का अध्ययन किया है। अब हमें देखना है कि उनकी कला में क्या कोई त्रुटियाँ भी हैं ?

प्रेमचन्द लिखते हैं, "मानव चरित्रों में जो कुछ सुन्दर और मानवतापूर्ण है उसे ध्यान में रखते हुए सदैव मैंने प्लाटों की रचना की है। यह एक गहन प्रश्न है, कभी किसी व्यक्ति द्वारा, कभी किसी घटना द्वारा अथवा कभी किसी स्वप्न द्वारा प्रेरणा मिलती है, परन्तु मेरी कहानियों का कोई न कोई मनोवैज्ञानिक आधार अवश्य होता है।"[१] इसका अर्थ हुआ कि प्रेमचन्द प्लाट (कथानक) की अपेक्षा चरित्र पर अधिक बल देते हैं। परन्तु साथ ही इससे भी इनकार नहीं किया जा सकता कि उनकी रुचि नैतिक और सामाजिक समस्याओं में ही केन्द्रीभूत है, मनोविज्ञान की सूक्ष्मताओं और विरोधों में नहीं।[२]

इस कथन से डॉ० देवराज उपाध्याय भी सहमत हैं कि प्रेमचन्द की रुचि मनोविज्ञान की सूक्ष्मताओं में न थी। वे कहते हैं, "प्रेमचन्द अपने प्रौढ़ युग में मनोविज्ञान का महत्व समझते अवश्य थे पर मनोविज्ञान की कथागत प्रतिष्ठा की कला से वे पूरे विज्ञ नहीं हो सके।"[३] इसके फलस्वरूप जहाँ तक कहानी के प्लाट का सम्बन्ध है, उनमें बड़ी कमियाँ आ गई हैं। अध्याओं का क्रम भी इतना शिथिल है कि कभी भी पुस्तक के क्रम को बिगाड़े बिना भी एक अध्याय आसानी से निकाला जा सकता है। इसके अतिरिक्त घटनाओं की द्रुत गति, समानता तथा नाटकीय रूप प्रेमचन्द की कला में बहुत कुछ विघ्न उपस्थित कर देते हैं। इस सम्बन्ध में बहुत-से उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं। इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिए रंगभूमि और गोदान से कुछ उदाहरण पर्याप्त होंगे। रंगभूमि में नायकराम का खेल, वीरपाल सिंह का छिपने का गुप्त स्थान, अथवा माहिर अली के चेहरे को काला करने की घटनाएँ साधारणतया व्यर्थ ही हैं, क्योंकि इनसे प्लाट (कथानक) के विकास में कोई सहायता नहीं मिलती। इसी

---

१. डॉ० इन्द्रनाथ मदान को लिखा प्रेमचन्द का पत्र दिनांक ७.६.१९३५
२. डॉ० इन्द्रनाथ मदान, माडर्न हिन्दी लिटरेचर, पृ० १६४;
३. आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान; ले० डॉ० देवराज उपाध्याय, पृ० ११४;

भाँति गोदान में खुरशीद मिरजा द्वारा आयोजित कबड्डी का खेल भी अनावश्यक है और न तो किसी भी रूप में वह प्लाट का अंग है और न उसके विकास पर ही कोई प्रभाव डालता है ।

श्री जैनेन्द्रकुमार को लिखे हुए एक पत्र में वे नायक के जीवन के मध्य से उपन्यास प्रारंभ करने की कठिनाइयों को स्वीकार भी करते हैं ।

इसका परिणाम यह होता है कि उनकी कहानियाँ और उपन्यास, मुख्य पात्र के बचपन से ही प्रारम्भ होते हैं। गोदान का होरी तथा रंगभूमि का सूरदास इसके अपवाद हैं ।

प्रेमचन्द कभी-कभी चत्मकारपूर्ण घटनाओं पर भी विश्वास करते हैं। सुक्खू चौधरी करतार की परीक्षा लेता है और वह सचमुच स्पर्श मात्र से मिट्टी को स्वर्ण बना देता है । राय कमलानन्द योग का अभ्यास करते हैं और अपने इन अभ्यासों द्वारा शारीरिक विकारों से मुक्ति प्राप्त करते हैं । कायाकल्प में जगदीशपुर के राजा अपने तीन पूर्वजन्मों के विषय में सब कुछ जानते हैं । सेवासदन में सुमन का पति स्वामी गजानन्द सदैव ही मनोवैज्ञानिक क्षणों पर उपस्थित हो जाता है । प्रेमाश्रम में पुलिस की हिरासत में रहते हुए भी मनोहर आत्महत्या कर लेता है, भैरों जी को प्रसन्न करने के लिए भाई-भाई का सिर काट लेता है । यद्यपि इस बीसवीं शताब्दी में भी इस प्रकार की बातें सम्भव हैं परतु प्रेमचन्द जैसे विचारशील व्यक्ति के लिए इस प्रकार की घटनाओं का चुनाव उपयुक्त नहीं ।

डॉ० इन्द्रनाथ मदान भी इस प्रकार की असंगतियों का निर्देश करते हुए कहते हैं कि एक स्त्री की कहानी के साथ, जो औषधि की एक मात्रा खाकर सदैव युवती बनी रहना चाहती है तथा एक ऐसे व्यक्ति के जीवन के साथ जो अपने शरीर के लगातार कई पुनर्रूप करता है, अति अप्रासंगिक है। इन चमत्कारी तत्वों के कारण कथानक की रचना भावनाट्य जैसी नाटकीय हो गई है तथा चरित्र-चित्रण असम्भव से हो गए हैं ।

उपन्यासों की लम्बाई भी प्रेमचन्द में एक दोष है जिसका निर्देश श्रीमती एस० ए० सुहरावर्दी ने भी किया है । प्रेमचन्द के उपन्यास लम्बे होने का दोष यह है कि उसके दूसरे भाग तक पहुँचते-पहुँचते कथा की पकड़ ढीली हो जाती है, रुचि की तीव्रता मन्द पड़ने लगती है और कथा में शिथिलता प्रारम्भ हो जाती है । वह अपने चरित्रों का विकास दृढ़तापूर्वक अधिक समय तक नहीं कर सकते । उनका चरित्रांकन अनिश्चित हो जाता है और पात्रों की क्रिया-प्रतिक्रिया का कथा के प्रारम्भ में चित्रित किए गए उनके व्यक्तित्व से कोई मेल नहीं रह जाता ।

इसके अतिरिक्त प्रेमचन्द अपने अधिक लम्बे उपन्यासों में वह प्रभाव-साम्य प्राप्त करने में असफल रहते हैं जो वह अपनी लघु कथाओं में सफलता से प्राप्त कर पाये हैं। वे असम्बद्ध तथा अनावश्यक तत्वों की भी सृष्टि करते हैं जो कथा के विकास में अथवा चरित्र के उद्घाटन में किंचित भी उपयोगी नहीं होते।[१]

ऊपर उल्लिखित पत्र में प्रेमचन्द पुनः लिखते हैं कि मेरे पात्रों में से अधिकांश यथार्थ जीवन से आते है। मैं यथार्थ जीवन से अधिकांश पात्रों को ग्रहण करता हूँ, यद्यपि वे पर्याप्त रूप से अप्रकट रहते हैं। जब तक चरित्र का आधार यथार्थ नहीं होता, वह केवल छाया मात्र, अनिश्चित, अप्रतीतिकर होता है।[२] इस पर भी प्रेमचन्द के प्रत्येक उपन्यास में एक आदर्श चरित्र अवश्य होता है। जैसा कि वह स्वयं कहते हैं—मेरे प्रत्येक उपन्यास में मानवीय दुर्गुणों और सद्गुणों से युक्त एक पूर्णरूपेण आदर्श चरित्र अवश्य होता है।[३]

प्रेमचन्द अपने प्रत्येक उपन्यास में एक आदर्श चरित्र का होना क्यों आवश्यक समझते हैं इसका उत्तर पाना कठिन होता है। डॉ० इन्द्रनाथ मदान के अनुसार "उनके यथार्थवाद में किसानों की अधोगति और निर्धनता के प्रति एक तीखी मानसिक वेदना व्यक्त की गयी है। यह भावना उनकी कृतियों को निर्धनों और पीड़ित एवं शोषित जनता के प्रति मानवतापूर्ण प्रेम के संदेश के रूप में परिवर्तित कर देती है। अपने उपन्यासों के प्रत्येक मोड़ पर सामाजिक अन्यायों और अत्याचारों से पीड़ितों के पक्ष में वह अपनी भावपूर्ण व्याख्या प्रस्तुत करते हैं।"[४] परन्तु प्रेमचन्द के आदर्श चरित्र केवल जीवन के प्रति उनके मानवतापूर्ण दृष्टिकोण के परिचायक हैं।

इसके अतिरिक्त कभी-कभी प्रेमचन्द ऐसी परिस्थितियों की सृष्टि कर देते हैं जो उनके आदर्श चरित्रों को पूर्ण अवास्तविक बना देती हैं। यद्यपि इस प्रकार के उदाहरण कम हैं, फिर भी यह दोष तो है ही।

---

१. ए क्रिटिकल सर्वे आफ द डेवलपमेंट आफ उर्दू नावेल एंड शार्ट स्टोरी, अख्तर सुहरावर्दी;

२. डॉ० इन्द्रनाथ मदान को लिखा हुआ प्रेमचन्द का पत्र, दिनांक ७. ९. १९३६;

३. वही, दिनांक २६ दिसम्बर, १९३५;

४. डॉ० इन्द्रनाथ मदान, माडर्न हिन्दी लिटरेचर, पृ० १४७;

जब लेखक (प्रेमचन्द) अपने चरित्रों का पूर्ण निर्वाह करने में किसी रूप में भी अपने को असमर्थ पाता है तब मृत्यु और आत्महत्या को वह अपना मुख्य साधन बनाता है।[1] यह प्रेमचन्द की एक अन्य त्रुटि है। प्रेमाश्रम में मनोहर का चरित्र तथा रंगभूमि में मिस सोफिया का चरित्र इस प्रकार के ज्वलन्त उदाहरण हैं।

कभी-कभी उनकी चरित्र चित्रण कला बहुत वैज्ञानिक नहीं होती। इसमें कोई संदेह नहीं कि एक पात्र की अभिलाषाओं, वासनाओं और भावनाओं का वे विश्लेषण करते हैं। उनके विश्लेषण में मनोविज्ञान की अन्तर्दृष्टि का अभाव रहता है। मानव स्वभाव सम्बन्धी उनका ज्ञान केवल उनके अपने अनुभवों पर आधारित है।

उपन्यासकार की इन त्रुटियों पर विचार करते हुए हम कह सकते हैं कि प्रेमचन्द के उपन्यासों का एक श्रेष्ठ आधार और एक सुन्दर विकास होता है परन्तु अन्त उतना सन्तोषजनक नहीं होता। उपन्यास की टेक्नीक के जानकार द्वारा प्रेमचन्द की कला के ये दोष उपेक्षित नहीं किए जा सकते; यद्यपि आलोच्य-दृष्टिहीन एक साधारण पाठक उपन्यास में केवल रोचकता की अपेक्षा करता है। इसके अतिरिक्त वह और कुछ नहीं चाहता। इस प्रकार की कला सम्बन्धी त्रुटियाँ मुख्य रूप से शिल्प सम्बन्धी होती हैं; इन्हें कथा के थीम (विषय) अथवा जीवन-दर्शन से कोई प्रयोजन नहीं, जिसे एक उपन्यासकार उपस्थित करना चाहता है। कुछ भी हो विषय प्रसंग अथवा प्लाट (कथानक) प्रकरण के चुनने में किसी प्रकार की भी त्रुटि नहीं है, जिसके फलस्वरूप उपन्यासकार के रूप में प्रेमचन्द दूसरे उर्दू उपन्यासकारों से बहुत श्रेष्ठ हैं। शिल्प संबंधी दोष, जिनका निर्देश हमने ऊपर किया है, बहुत कुछ आधुनिक उपन्यासों के अध्ययन का परिणाम है। उपन्यास की कला एक परिवर्तनशील कला है। उर्दू साहित्य में अच्छे उपन्यासों की आगे भी बहुत आवश्यकता है।

शिल्प सम्बन्धी दोष, जो प्रेमचन्द के उपन्यासों में मिलते हैं, उनकी कहानियों में नहीं हैं। इसका सीधा-सा कारण यही है कि कहानियों की टेक्नीक में इस प्रकार के दोषों का आना सम्भव ही नहीं।

कुछ त्रुटियों के बावजूद भी प्रेमचन्द उर्दू के सर्वोत्कृष्ट उपन्यासकार हैं। उनका एक विस्तृत क्षेत्र है, महान् मानवीय दृष्टिकोण है, एक रचनात्मक दर्शन

---

१. वही, पृ० १५७;

हैं और अपने विषय पर पूर्ण अधिकार है। यह कहना कठिन है कि उपन्यासकार के रूप में प्रेमचन्द अधिक महान् हैं अथवा कहानीकार के रूप में। परन्तु यह सत्य है कि वे प्रथम श्रेणी के उपन्यासकार हैं।

□□

७ | आख्यायिका और उसका विकास

आख्यायिका और उसका विकास

□

शिल्प विधि की दृष्टि से कहानी और उपन्यास में अन्तर है। कहानी का जन्म बाद में हुआ है और इसकी रचना के विषय में आलोचकों में बहुत मतभेद है। भिन्न-भिन्न लेखकों की परिभाषा से कहानी के स्वरूप को जानने में हमें सहायता मिलेगी।

वेल्स के अनुसार कहानी एक काल्पनिक रचना है जो आध घंटे में समाप्त की जा सकती है।

पो, जिन्हें आधुनिक काल की कहानियों का जन्मदाता कहते हैं, के अनुसार कहानी की सम्पूर्ण रचना में ऐसा एक भी शब्द न होना चाहिये जो पहले से सोची हुई योजना के अनुकूल न हो।

दिवंगत सर ह्यू वैलपोल ने अपने अद्भुत अनुभव के क्षण में कहा कि कहानी एक लघु कथा होनी चाहिये, जिसमें घटनाओं का उल्लेख, तीव्र प्रवाह, आकस्मिक विकास हो, जो असमंजस के साथ चरमावस्था पर पहुँचकर संतोषपूर्ण उपसंहार में समाप्त हो।

प्रेमचन्द कहते हैं, "कहानी हृदय की वस्तु है, नियम की वस्तु नहीं है। नियम हैं और वे उपयोगी होने के लिये हैं।"[1]

मिस्टर एलरी सेजविक का कथन है कि कहानी घोड़ों की दौड़ के समान है जिसमें प्रारम्भ और अन्त विशेष महत्व रखता है।

कहानी की अन्तिम परिभाषा रोचक है क्योंकि कहानी का आदि और अन्त कलाकार की वास्तविक कला का परिचायक है। तो भी एच० ई० वेट्स अपनी माडर्न शार्ट स्टोरी नामक पुस्तक में लिखते हैं कि इन परिभाषाओं से कोई अधिक सहायता नहीं मिलती क्योंकि इनमें से कोई आधुनिक कहानी कला पर प्रकाश नहीं डालती। इस सम्बन्ध में ब्रैंडर मैथ्यूज़ जिसे प्रभाव का एकाकीकरण (युनिटी आफ इम्प्रेशन) तथा पो जिसे सम्पूर्ण का प्रभाव (इफैक्ट आफ टोटैलिटी) कहते हैं, समझना आवश्यक है। प्रभाव का एकाकीकरण कहानी को आकर्षण प्रदान करता है, और इसी कारण कहानी साहित्य के रूप में स्वीकृत हुई है। आलब्राइट ने इस पारिभाषिक शब्द की पूर्ण व्याख्या की है। वे कहते हैं कि यह

---

१. प्रेमचन्द और उनका युग, ले० रामविलास शर्मा, पृ० १३५;

कहा जाता है कि कहानी में कथानक सामंजस्यपूर्ण होना चाहिये । किन्तु इस सामंजस्य और एक केन्द्रीय विचार के होते हुये भी अगर लेखक में प्रभाव का एकाकीकरण नहीं है तो लेखक सफल कहानीकार नहीं हो सकता है । विचार का सामंजस्य प्रभाव के एकाकीकरण के लिये परमावश्यक है । इसके साथ-साथ रचना कौशल का सामंजस्य भी होना चाहिये । अतएव अच्छी कहानी के लिये शैली के प्रत्येक साधन की आवश्यकता है ।[1]

प्रभाव का एकाकीकरण वस्तुतः उन तत्वों का सार है जो कहानी के निर्माण में योगदान देते हैं । कहानी का कथानक होता है और कथानक का विषय होता है । कथानक में मुख्य विषय हटाने वाली कोई बात न होनी चाहिये । वास्तव में सबसे महत्वपूर्ण तत्व विषय ही है । मुख्य विषय को ही आलब्राइट एक उत्तम केन्द्रीय विचार कहते हैं । कथानक में इस विषय का समावेश इस प्रकार होना चाहिये कि भावना का सम्यक समन्वय हो सके । भावना का समन्वय कोई नई वस्तु नहीं है । यह सम्पूर्ण कहानी का उद्घोष है जिसने शब्दों का आभूषण पहन लिया है । कहानी के उद्घोष के साथ इसमें प्रभाव का एकाकीकरण भी निश्चित है । प्रभावों का एकाकीकरण तथा रचना कौशल वस्तुतः एक ही हैं और यह एक साथ ही कथा के विकास में प्रयुक्त होते हैं । संक्षेप में कथानक में ऐसे शब्द, घटना, पात्र न होने चाहिये जो आवश्यक न हों ।

कहानी की रचना विधि उपन्यास की रचना विधि से भिन्न होती है । सबसे बड़ा अन्तर इस बात में होता है कि कलाकार रचना में विषय का प्रयोग किस प्रकार करता है । लघु कथा का लेखक उपन्यासकार की भाँति उदार नहीं होता । लघु कथा के लेखक के लिये यह आवश्यक है कि वह भलीभाँति यह जाने कि वह किन बातों को चुने, किन बातों की ओर इंगित करे, किन बातों से दूर रहे और किन बातों को अत्यन्त संक्षेप में लिखे । उपन्यास की अपेक्षा कहानी का कथानक सरल किन्तु चतुरतापूर्ण होता है । कहानी में जो भी कार्य होता है, वह श्रृंखलाबद्ध, सारगर्भित, विषय से सम्बन्धित तथा चरित्र चित्रण के लिये सारयुक्त होता है । उपन्यास की अपेक्षा कहानी में पात्र कम और अधिक प्रभावशाली होते हैं ।

ब्रैंडर मैथ्यूज़ अपनी पुस्तक फिलासफी आफ दी शार्ट स्टोरी में प्रभाव के

---

१. आलब्राइट द्वारा लिखित लघुकथा;

एकाकीकरण पर अधिक जोर देते हैं । इसी को पो सम्पूर्ण का प्रभाव कहते हैं । उनका कथन है कि लघु कथा और उपन्यास में यही अन्तर है ।

कहानी न तो उपन्यास का संक्षिप्त रूप है और न उपन्यास भिन्न-भिन्न लघु कथाओं का संकलन है । उपन्यास का क्षेत्र अधिक विस्तृत होता है । अतएव, कार्य में अधिक वैभिन्न्य होता है तथा उसका चित्रण अधिक बड़े पैमाने पर चित्रित होता है और विस्तार भी अधिक होता है । कहानी में न इतने पात्र होते हैं और न इतनी घटनायें । उपन्यासकार की कला रचनात्मक विकास पर निर्भर रहती है । कहानी की सफलता प्रभाव के एकाकीकरण या सम्पूर्ण के प्रभा पर ही आधारित है । उपन्यास की विशेषता है रचनात्मक विका.।, जो उसे एक विशेष रूप प्रदान करती है और इसीलिये उपन्यास को कहानियों का संकलन नहीं कहा जा सकता ।

कहानी में घटनाओं का उल्लेख होता है । कार्य-कारण पर जोर दिया जाता है । राजा मर गया और रानी दुख के कारण मर गई, एक कथानक है । उपन्यास में कहानी का कौतूहल होता है । कहानी तथ कथानक एक ही नहीं हैं । कहानी आधार बन सकती है किन्तु कथानक में जीवन सी गूढ़ता है ।[१]

ई० एम० फोर्सटर ने जो भेद कहानी तथा कथानक में बतलाया है वह बड़ा गूढ़ है । कथानक में जीवन सी गूढ़ता है किन्तु घटनाओं का उल्लेख एक सरल बात है । उपन्यास में कहानी की अपेक्षा चरित्र चित्रण अधिक जटिल तथा सूक्ष्म होता है । साधारणतया आख्यायिका का चरित्र चित्रण से कोई महत्वपूर्ण संबंध नहीं होता । कहानी में तो कुछ ऐसे पात्रों की आवश्यकता होती है जो वार्तालाप करें और चलते-फिरते रहें । दूसरेशब्दों में यह कह सकते हैं कि पात्रों की आवश्यकता कहानी में होती है । आख्यायिका का लेखक पात्रों के विचारों का विश्लेषण नहीं करता और न वह उनके मनोवेगों तथा भावों की ही छानबीन करता है । उपन्यास तथा आख्यायिका दोनों में क्रिया का तत्व समान रूप से पाया जाता है । उपन्यास में क्रिया का तत्व अधिक पाया जाता है । कहानी में क्रिया का क्षेत्र सीमित रहता है । समय का तत्व भी दोनों में महत्वपूर्ण है । कुछ कहानियाँ सुन्दर हैं जिनका कार्यकाल दस साल या पचीस साल तक है । लेकिन वह कहानी जो कम से कम समय का चित्रण करे अच्छी कहानी समझी जाती है ।

---

१. ऐस्पेक्ट्स आफ नावेल, ई० एम० फोर्सटर;

एक उपन्यास जीवन संबंधी दर्शन या शिक्षा के प्रचारार्थ एक अच्छा साधन है। आख्यायिका-लेखन की कला में विशेष भिन्नता पाई जाती है क्योंकि विभिन्न लेखकों के जीवन-दर्शन में भिन्नता होती है।

आलब्राइट के अनुसार कहानी एक नये प्रकार की रचना नहीं है, जैसा कि कई लोगों का मत है। यह उपन्यास की भाँति प्राचीन है। उसका कथन है कि मेरी इच्छा कैनवी के साथ इस बात में सहमत होने की होती है कि कहानी उपन्यास से प्राचीन है। रुथ की किताब, जो ईसा के ४५० वर्ष पूर्व लिखी गई, वास्तव में एक कहानी ही है। २३०० वर्षों ने कहानी की कला पर प्रभाव डाला है और कुछ दिशाओं में इतना आश्चर्यजनक विकास किया है कि यह कथन १६ वीं शताब्दी की देन संभव प्रतीत होने लगा है। किन्तु २३०० वर्ष इसकी रोचकता को नहीं छीन सके।

वास्तविकता तो यह है कि लघु कथा प्रथम उपन्यास, जो कि उपन्यास कहा जा सकता है, के पहले ही सामने आ चुकी थी। किन्तु कला के एक विशेष रूप में विकसित होने के लिये कहानी को लगभग एक शताब्दी तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। उल्लेखनीय ऐतिहासिक तथ्य तो यह है कि लघुकथा का जन्म उपन्यास से नहीं हुआ है। यद्यपि यह बहुधा कहा जाता है कि कहानी का स्रोत भी उपन्यासकार की कला में ही है।"[1]

यहाँ पर लेखक इस बात पर जोर देना चाहता है कि कहानी का अस्तित्व अति प्राचीन काल में भी था, किन्तु आधुनिक काल में इसने नया रूप ग्रहण कर लिया है। आधुनिक कहानी उपन्यास से भिन्न रचना है। कहानी को साहित्यिक रूप की मान्यता आधुनिक काल में ही मिली है। रचना सम्बन्धी कुछ विशेषताएँ हैं जो उपन्यास तथा कहानी में उभयनिष्ट हैं, यद्यपि दोनों की शैलियाँ भिन्न हैं। इसके बावजूद भी उपन्यास से कहानी का जन्म नहीं हुआ है। मिस्टर ए० जे० रैटक्लिफ के अनुसार कहानी आधुनिक युग की देन है। यह केवल घटनाओं का विवरण नहीं है। यह भलीभाँति विचारसंयत कला है। यह केवल एलिजबेथ का कथन है कि लघुकथा नवजात कला है, विचार और विचारसंयत कला है। मिस एलिजबेथ का यह भी कहना है कि लघुकथा नवजात कला है और यह इसी शताब्दी का शिशु है और इसी में पूर्वकथित मत भी जोड़ दूँगी कि अंग्रेजी लघु कथा का इतिहास अत्यन्त संक्षिप्त है और इस कथन का आधार यह है कि

---

१. दि शार्ट स्टोरी, ले० आलब्राइट;

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त के पूर्व कहानी का कोई इतिहास न था। कल्पना प्रभूत रूप में जो कहानी की एक प्राचीन कला है किन्तु आधुनिक कहानी तो अभी शैशव अवस्था में है। दोनों की रचना विधियों में अन्तर है, दोनों एक जैसी नहीं हैं।

कहानी की यह कुछ मुख्य विशेषताएँ हैं। उपन्यास की भाँति उर्दू में लघु कहानी भी पश्चिम से आई। इसका इतिहास संक्षिप्त है। उर्दू की कहानी का इतिहास बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से आरम्भ होता है।

भारतवर्ष में कहानी के विकास का इतिहास वैविध्यपूर्ण है। आलोचकों का मत है कि कहानी का जन्म पूर्व में हुआ किन्तु इसने भूमि, समुद्र, समय और स्थान में यात्रा की तब कहीं पश्चिम में इसे साहित्यिक रूप में मान्यता मिली। प्राचीन भारत में आध्यात्मिक विकास के लिए उपदेशात्मक लघु कथाओं के रूप में कहानी प्रयुक्त हुई। हितोपदेश और पंचतंत्र इसके जाज्वल्यमान उदाहरण हैं।

सिंहासन बत्तीसी, बैताल पचीसी और कथासरित्सागर की रचना बहुत पहले नहीं हुई थी। बोस्ताने ख्याल और अलिफ लैला कल्पनाप्रभूत कहानी की एक विशेष श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं, जिसे किस्सा-ए-दर-किस्सा (कहानी में कहानी) कहते हैं और अलिफ लैला, जिसका उर्दू में १९वीं शताब्दी में अनुवाद हो चुका था, को अरबी साहित्य में पुरातन मानते हैं।

कला के अन्य क्षेत्रों की भाँति भारतवर्ष में कहानी का आरम्भ उन्नीसवी शताब्दी के अन्त में बंगाल में हुआ। टैगोर की कथाओं ने प्रेमचन्द को प्रेरित किया और आधुनिक कहानी के लिखने की कला में पथ प्रदर्शन किया।

अपनी पुस्तक उपन्यास तथा कहानी के विकास के आलोचनात्मक अध्ययन में शायस्ता अख्तर बानू सुहरावर्दी ने लिखा है, "अवध पंच (१८७७) के पृष्ठों में उर्दू की कहानी की नींव पड़ी। मुंशी सज्जाद हुसेन के विनोदमय चित्रण तथा अवध पंच के लेख ने कहानी का मार्ग प्रशस्त किया।"[१]

कहानी लिखने की कला अभी प्रारम्भावस्था में है और इसका जन्म बीसवीं शताब्दी में हुआ है। एस० ए० बी० सुहरावर्दी ने उपर्युक्त अवतरण में एक नये विचार पर आस्था प्रकट की है। हमारा भी विश्वास है कि अवध पंच ने

---

१. **एस० ए० बी० सुहरावर्दी का** A critical survey of the Development of the Urdu Novel and Short Story.

कहानी के ऐतिहासिक विकास की ओर बड़ी सहायता की। किन्तु साहित्यिक रूप में मुं० प्रेमचन्द के हाथों में ही कहानी को मान्यता मिली। उर्दू साहित्य में उन्हें आधुनिक कहानी का पथ प्रदर्शक कहना चाहिए।

एस० ए० बी० सुहरावर्दी ने मुंशी प्रेमचन्द के साथ बड़ा अन्याय किया है क्योंकि उन्होंने उस अध्याय में जिसका शीर्षक है '१६०० से १६२५ तक' उर्दू में आधुनिक कथा के विकास में उन्हें कोई स्थान नहीं दिया है। यह भूल इसलिए हुई है क्योंकि उनका विश्वास था कि, "प्रेमचन्द ने १६१७ से लिखना प्रारम्भ किया और अपनी मृत्यु (सन् १६३७) तक लिखते रहे।"[1] यह वाक्य भ्रमोत्पादक है। प्रेमचन्द ने अपना साहित्यिक जीवन १६०१ से प्रारम्भ किया।[2] १६१७ में उन्होंने लेखक के रूप में पर्याप्त ख्याति अर्जित कर ली थी। १६१६ में उनका उपन्यास 'बाजार-ए-हुस्न' प्रकाशित हुआ। कुछ कहानियाँ भी इस समय तक प्रकाशित हो चुकी थीं। साहित्यिक जीवन प्रारम्भ करने के विषय में भूल के साथ उनकी मृत्यु के सम्बन्ध में भी भूल है जोकि यहाँ संशोधित की जा सकती है। हमने पुस्तक के प्रारम्भ में बतलाया है कि प्रेमचन्द अक्तूबर सन् १६३६ के आठवें दिन परलोक सिधारे १६३७ में नहीं जैसा कि एस० ए० सुहरावर्दी ने लिखा है।

वह यह भी लिखती हैं कि बीसवीं शताब्दी के प्रथम दो दशकों में उर्दू लघु कथा अपने शैशव काल में रही। इस काल के सर्वोत्तम लेखक सैयद सज्जाद हैदर यलद्रम थे। बीसवीं शताब्दी के प्रथम बीस वर्षों के पूर्व प्रेमचन्द की कुछ बहुत अच्छी लघु कथायें बड़े घर की बेटी, आह ए बेकस, पंचायतनामा, बेटी का धन और पंचायत जमाना में प्रकाशित हुई थीं। अतएव इस काल (१६०० और १६२५) में प्रेमचन्द ही सर्वश्रेष्ठ लेखक थे।

यद्यपि उर्दू भाषा में कहानी का इतिहास बहुत संक्षिप्त है तो भी लगभग इन पचास वर्षों में इसमें बहुत परिवर्तन हुए हैं। कहानी के विषय को दृष्टिकोण में रखते हुए हम साधारण कहानी तथा आधुनिक आख्यायिका में अन्तर बता सकते हैं। वास्तव में कहानी का विकास प्रथम विश्वयुद्ध के ठीक बाद आरम्भ हुआ। यह विकास लघु कथा की कला का न था बल्कि उसके विषय का था। साधारण

---

१. एस० ए० बी० सुहरावर्दी, वही, पृ० २४२;

२. १७ जुलाई १६२६ के लिखे हुए प्रेमचन्द के एक पत्र का फोटो मुद्रण, जमाना, प्रेमचन्द अंक, पृ० ८;

व्यक्ति का जीवन, उसका वर्ग जागरण तथा जमींदारों और पूंजीपतियों द्वारा कृषकों और श्रमिकों का उत्पीड़न ही कहानी (आख्यायिका) लेखन के जनप्रिय विषय बन गए थे । यही वह विशिष्ट गुण है जो एक लघु कथा और आधुनिक कहानी के अन्तर को स्पष्ट करता है ।

आधुनिक आख्यायिका नाटकीय कथा अथवा रोमांटिक साहसिक आख्यानों से भिन्न है । साहसिक आख्यान भी आख्यायिका (कहानी) ही कहे जाते हैं । परन्तु आज के युग में इन दोनों में भ्रम नहीं होना चाहिए । हम संकेत कर चुके हैं कि साहित्य के एक माध्यम के रूप में उपन्यास बुर्जुआ (सम्पन्न) वर्ग के जीवन के चित्रण का एक सफल माध्यम है । इसी भाँति आधुनिक सीमाओं तथा अपनी आर्थिक-सामाजिक एवं व्यक्तिगत जीवन की दैनिक समस्याओं के भार से बोझिल आज के मनुष्य के जीवन की गुत्थियों के प्रति जागरूक है । चूँकि काम करने वालों और निम्न मध्यम वर्ग के लोगों के बीच में कहानी अधिक जनप्रिय हो रही थी, सामान्य जनजीवन के विश्लेषण के लिए लेखक भी इसे ग्रहण करने को इस ओर झुके । समाज की परिवर्तनशील प्रकृति का अध्ययन समाजशास्त्रियों ने भी प्रारम्भ किया । साहित्य ने भी सामाजिक जीवन द्वारा उठाई हुई समस्याओं का सामना किया । इस प्रकार आधुनिक आख्यायिका मनुष्य के जीवन में होने वाले व्यक्तिगत और समूहगत परिवर्तनों के प्रकाशन का एक अत्यन्त शक्तिशाली माध्यम बन गई ।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में उर्दू आख्यायिका के आरम्भ के सम्बन्ध में दो मत नहीं हो सकते, फिर भी यह ठीक-ठीक कहना लगभग असम्भव ही है कि उर्दू में सबसे पहली कहानी किसने लिखी । जहाँ तक प्रेमचन्द का सम्बन्ध है, उनकी सबसे पहली प्रकाशित कहानी 'दुनिया का सबसे अनमोल रतन' है जो कानपुर के 'जमाना' नामक पत्र में १६०७ में छपी थी । पुराने उर्दू पत्रों, विशेषकर के लाहौर के मखजन, की प्रतियाँ देखने से पता चलता है कि सज्जाद हैदर यलद्रम, सुल्तान हैदर जोश और रशीदुल खैरी द्वारा १६०७ के पूर्व भी कहानियाँ लिखी जा चुकी थीं । इनमें से सभी ख्याति प्राप्त कहानीकार थे । १६वीं शताब्दी के अन्त में साहित्य के इस नये अंग के प्रति रुचि उत्पन्न करने में अंग्रेजी शिक्षा मुख्य रूप से सहायक रही है । इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि कुछ ही वर्षों के भीतर उर्दू साहित्य को वहुत से लेखक प्राप्त हो गए जिन्होंने अपनी काफी शक्ति कहानी लेखन में लगा दी, चाहे दूसरे साहित्यों से उसे ग्रहण किया अथवा उसके विकास को यथार्थ आधार के बिना ही अपनी स्वयं की कहानियाँ गढ़ लीं । प्रस्तुत शताब्दी के प्रथम दशक की अधिकतर कहानियों में आधुनिक विचार अथवा आधुनिक जीवन

के कोई चिह्न नहीं हैं, अधिक से अधिक वे मनुष्य के विभिन्न रूपों के प्रकाशन अथवा उनके जीवन की समस्याओं से सम्बन्धित रोमांटिक दृष्टिकोण से केवल भावुकतामय प्रकाशन को एक नये मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत करती हैं। प्रेमचन्द के समकालीन लेखकों द्वारा लिखी हुई कहानियों की समीक्षा इस प्रबन्ध के बाहर का विषय है। उनमें से कुछ लेखकों ने प्रेमचन्द के पहले भी लिखीं, लेकिन फिर भी यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि यद्यपि प्रेमचन्द प्रथम कहानी लेखक नहीं थे फिर भी वे एकमात्र ऐसे लेखक थे जिनकी कहानियों के विषय का एक सामाजिक आधार था।

इस प्रकार प्रेमचन्द उर्दू साहित्य में आधुनिक कहानी के जनक कहे जा सकते हैं। उनकी रचनाएँ युग निर्मात्री हैं। उनके जीवन काल में ही उनकी रचनाएँ बहुत अधिक पसन्द की जाती थीं। वे इतनी जनप्रिय हो गईं कि उनके समकालीन लेखकों की रचनाओं पर लगभग पूर्ण ग्रहण सा लग गया। कहानी लेखन की कला में एक नई परिपाटी को जन्म देने में वे सफल हुये। यह परिपाटी आज तक चली आ रही है। सुदर्शन, अहमद नदिम काजमी, अली अब्बास हुसेनी, उपेन्द्रनाथ अश्क और अज़म करेल्वी प्रेमचन्द की कहानी लेखन परिपाटी के ही अनुयायी हैं।

कालानुक्रम से यह निश्चित करना सम्भव नहीं है कि उर्दू में प्रेमचन्द ही सर्वप्रथम कहानी लेखक थे, लेकिन उनके कथानकों की आधुनिकता, जीवन के प्रति उनके दृष्टिकोण, जीवन के प्रति उनकी विशेष दृढ़ता, उनकी कला में यथार्थ-वादी स्पर्श और उनकी जनप्रियता, जो उन्होंने प्राप्त की, को ध्यान में रखते हुये हम यही निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि वे उर्दू कहानी के अग्रदूत थे और उन्होंने इस कला को जीवित रक्खा तथा साहित्य के इस अंग के लिये एक नई परिपाटी की सृष्टि की। वे एक मौलिक लेखक थे जिन्होंने अपने कथानक अपने निज के अनुभव के आधार पर सीधे जीवन से ग्रहण किये।

अभी तक उर्दू साहित्य में प्रेमचन्द का क्या स्थान था इस विषय पर चर्चा की गई है परन्तु अब हम हिंदी साहित्य में उनके स्थान का संक्षेप में सर्वेक्षण करते हैं।

प्रेमचन्द के पूर्व हिन्दी कहानी

प्रेमचन्द का उपन्यास 'बाजारे हुस्न' जब हिंदी में सेवासदन के नाम से छपा तो उन्हें वह ख्याति और आदर प्राप्त हुआ जो उन्हें पहले कभी नहीं मिला था। हिंदी साहित्यकारों ने प्रेमचन्द को सिर पर उठा लिया। प्रेमचन्द ने इस सहज

प्रेम-भाव तथा अपने भविष्य को हिंदी के माध्यम से बन सकने की गुंजाइश देखकर हिंदी को अपना लिया, जहाँ उन्हें यश और अर्थ दोनों मिले। हिंदी साहित्य में कहानी का जन्म भारतेन्दु काल में हुआ था। हिंदी की प्रथम कहानी इंशा अल्ला खाँ की 'रानी केतकी' मानी जाती है। हिंदी की कई आरम्भिक कहानियाँ सरस्वती नामक मासिक पत्रिका में प्रकाशित हुई थीं। संवत् १९५७ में पं० किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती' नाम की कहानी छपी। इसके बाद बहुत दिनों तक बँगला से अनूदित कहानियाँ या बंगला साहित्य से प्रभावित कहानियाँ छपती रहीं। संवत् १९६८ में श्री जयशंकर प्रसाद की 'ग्राम' नाम की कहानी उनके मासिक पत्र इन्दु में निकली। इसके बाद समय-समय पर प्रसाद जी की 'आकाश दीप', 'बिसाती', 'प्रतिध्वनि', 'स्वर्ग के खंडहर', 'चित्र मंदिर' इत्यादि कहानियाँ प्रकाशित हुयीं। पंडित विशम्भर नाथ कौशिक की प्रसिद्ध कहानी 'रक्षा बंधन' सन् १९३७ में सरस्वती में छपी थी। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की अद्वितीय कहानी 'उसने कहा था' सन् १९१५ में सरस्वती में छपी। इसके अतिरिक्त श्री जी० पी० श्रीवास्तव, पं० ज्वालादत्त शर्मा तथा चतुरसेन शास्त्री आदि ने भी कहानी लिखना आरम्भ कर दिया था।

प्रेमचन्द की प्रथम हिंदी कहानी 'सौत' १९१५ में प्रकाशित हुई थी। कल्पना की उड़ानों और स्वप्न के मनमोहक जाल से कहानी को मुक्त कर जीवन के निकट लाने का सर्वप्रथम प्रयास प्रेमचन्द ने ही किया था।

प्रेमचन्द की कहानियाँ यथार्थवाद का उदाहरण हैं। उनकी शैली आधुनिक है। इसी कारण उनकी हिंदी लघु कथा में भी वही विशेषताएँ हैं जो कि उर्दू लघु कथा में हैं। अब हम उनकी कहानियों का विस्तृत अध्ययन अगले पृष्ठों में करेंगें।

□□

८ | प्रेमचन्द की आख्यायिका कला

प्रेमचन्द की आख्यायिका कला

□

भिन्न-भिन्न संग्रहों में प्रेमचन्द की १८२ कहानियाँ उर्दू में प्रकाशित हुई हैं। प्रेमचन्द की आख्यायिकाओं की संख्या के विषय में अनेक मत हैं। भिन्न-भिन्न लेखक इनके द्वारा लिखी गई कहानियों की संख्या दो सौ और तीन सौ पचास के बीच में मानते हैं। एक पत्र में श्री चतुर्वेदी को प्रेमचन्द ने स्वयं लिखा था कि उन्होंने दो सौ से अधिक आख्यायिकाएँ लिखीं थीं।[1] इलाहाबाद के हिन्दुस्तानी (हिन्दी संस्करण) के सम्पादक श्री टंडन ने एक लेख में, जो 'लीडर' में प्रकाशित हुआ था, लिखा था कि प्रेमचन्द की लिखी हुई कहानियों की संख्या तीन सौ से अधिक है। प्रेमचन्द पर एक लेख में श्री नजीर ककोरवी ने लिखा था कि प्रेमचन्द द्वारा लिखी हुई आख्यायिकाओं की संख्या तीन सौ पचास है।[2] सैयद अली जवाद जैदी का विश्वास है कि प्रेमचन्द की आख्यायिकाओं की संख्या तीन सौ से अधिक है। अपने मत का उल्लेख हमने तीसरे अध्याथ में कर दिया है। फिर भी यह सही है कि प्रेमचन्द ने उर्दू की अपेक्षा हिंदी में अधिक आख्यायिकाएँ लिखी हैं।

सभी आख्यायिकाओं का विवरण देना कठिन है। यदि वे विषयानुसार विभक्त कर दी जायँ तो उनका अध्ययन हो सकता है। प्रेमचन्द की कहानियों का वैज्ञानिक विभाजन सम्भव नहीं है क्योंकि कुछ ऐसी कहानियाँ हैं जो मनोवैज्ञानिक, ऐतिहासिक और विनोदपूर्ण तीनों साथ-साथ हैं, कुछ कहानियाँ ऐसी हैं जो घरेलू जीवन से सम्बन्धित हैं किन्तु वे मनोवैज्ञानिक भी हैं। कुछ कहानियाँ ऐसी हैं जो सामाजिक और राजनैतिक दोनों हैं। अतएव हम विभाजन की कोई अन्तिम रेखा नहीं खींच सकते। फिर भी केवल इसी साधन का उपयोग हम प्रेमचन्द की लिखी हुई कहानियों के अध्ययन में कर सकते हैं। इस कठिनाई के कारण प्रेमचन्द की कहानियों को निश्चित श्रेणियों में रखना उचित नहीं है। हम उनकी सर्वोत्तम और भिन्न-भिन्न विषयों का प्रतिनिधित्व करने वाली आख्यायिकाओं को लेंगे और कहानी लेखक के रूप में प्रेमचन्द का विवेचनात्मक अध्ययन करेंगे।

---

१. जमाना, प्रेमचन्द अंक, पृ० १६६;

२. वही, पृ० १६७;

विनोदपूर्ण कहानियाँ

सत्याग्रह, दावत, बड़े बाबू, अजीब होली, लाटरी, बड़े भाई साहेब, बाँका जमीन्दार इत्यादि ।

मनोवैज्ञानिक कहानियाँ

खुदी, जाविया निगाह, कुसुम, सकुन ए कल्ब, सिलाए मातम, बाज याफ्त, सौत, मिस पद्मा, दो बहिनें इत्यादि ।

सामाजिक कहानियाँ

पंचायत, जाद ए राह, बड़े घर की बेटी, तालीफ, दूध की कीमत, सवा सेर गेहूँ, ईदगाह, कफन इत्यादि ।

राजनैतिक कहानियाँ

डामुल का कैदी, आशियां बर्बाद, जुलूस, भाड़े का टट्टू, लाल फीता, बरात, कातिल आदि ।

ऐतिहासिक कहानियाँ

रानी सारन्धा, राजपूत की बेटी, राजहठ, राजा हरदौल, जंजीर ए हवस इत्यादि ।

प्रेमचन्द की सर्वप्रथम कहानी दुनिया का सबसे अनमोल रतन १९०७ ई० में कानपुर के 'जमाना' में प्रकाशित हुई थी । कहानी का विषय है कि मातृभूमि की रक्षा में बहाया हुआ रक्त संसार का सबसे अनमोल रत्न है । फलस्वरूप इस अनमोल रत्न को उसके सम्मुख प्रस्तुत करने पर दिल फिगार का विवाह दिल फरेब के साथ हो गया । जहाँ तक विषय के उपयोग की कला का सम्बन्ध है, कहानी में हमारे लिये कोई विशेष आकर्षण नहीं है । यह हमें उर्दू परम्परावादी कथा साहित्य की स्मृति दिलाता है जिसका १९वीं शताब्दी और २०वीं शताब्दी के आरम्भ में बहुत प्रचार था । लघु कथा के कहने के ढंग और विषय में दास्तान ए अमीर हमजा और सरशाह के फिसाना ए आजाद का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है ।

हिन्दी के कुछ समालोचक प्रेमचन्द को बहुत विनोदपूर्ण लेखक कहते हैं । इसका उल्लेख हो चुका है कि बड़े जोर की कहकहे की हँसी के कारण प्रेमचन्द के मित्र उनको बम्बूक कहते थे । अपनी रचनाओं में इस विनोद की व्यंजना किए बिना वे न रह सके, किन्तु साथ-साथ यह विनोद बहुत शिष्ट और कलापूर्ण है । यह विनोद उनके उपन्यास और लघुकथाओं में भी मिलता है । जनता की सस्ती प्रशंसा प्राप्त करने के लिए धनोपार्जन करने वाले अन्य लेखकों की भाँति

उन्होंने विनोदपूर्ण कहानियाँ नहीं लिखीं। उनका विनोद गूढ़ था और उनके लेखों में यत्र तत्र इसी प्रकार बिखरा हुआ था जिस प्रकार इसे हम उनके जीवन में पाते हैं।

उनकी विनोदपूर्ण कहानियाँ भारतवर्ष के पतित समाज के भिन्न-भिन्न अंगों पर व्यंगात्मक आक्षेप हैं। **'सत्याग्रह'** एक राजनैतिक व्यंग्यात्मक कृति है। वायसराय बनारस आने वाले थे। नगर की कांग्रेस कमेटी ने पूर्ण हड़ताल करने का निश्चय किया। दूकानदारों ने कांग्रेस को सहयोग देने की स्वीकृति दे दी। इस बात ने सरकारी पदाधिकारियों को तथा बनारस के धनी-मानी व्यक्तियों, जैसे राजा लाल चंद, खान बहादुर महमूद अली और रायसाहब हरनन्दन को भी परेशानी में डाल दिया। उन्होंने दूकानदारों को दूकान खोलने के लिए सब प्रकार से विवश किया किन्तु दूकानदारों ने कोई ध्यान नहीं दिया। अन्त में उन्होंने हड़ताल के विरुद्ध एक योजना बनाई। पंडित मोटेराम शास्त्री को, जो बनारस के एक लोकप्रिय पंडा थे, घूस देकर इस बात के लिए राजी किया कि यदि हिन्दू दूकानदार दूकान न खोलें तो वे आमरण अनशन करेंगे। यह लघु कथा नगर के धनी-मानी व्यक्तियों तथा बनारस के प्रसिद्ध पंडितों पर व्यंग्य है। पं० मोटेराम शास्त्री उस नैतिक पतन का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिसके जाल में उनका वर्ग फँसा हुआ था क्योंकि उन्होंने अपनी अन्तरात्मा को चाँदी के कुछ सिक्कों के लिए बेंच दिया था। पंडित मोटेराम का चरित्र काल्पनिक नहीं है। उनके नाम का एक व्यक्ति वास्तव में बनारस में रहता था, इस बात का उल्लेख श्रीमती शिवरानी देवी ने अपनी पुस्तक 'प्रेमचन्द घर में' में किया भी है। पंडित मोटेराम शास्त्री एक दूसरी लघु कथा 'दावत' में हमारे समक्ष आते हैं। वे चौगान ए हस्ती में हमारे सामने आते हैं। प्रेमचन्द के मोटेराम शास्त्री एक दानवाकार व्यक्ति थे और सुस्वादु भोजन उनकी विशेष कमजोरी और खाद्य पदार्थों में मिठाई उन्हें अति रुचिकर थी। उन्होने अपने आमरण अनशन की धमकी देकर दूकानदारों को बन्दी न करने के लिए उकसाया। मोटेराम शास्त्री का चरित्र पंडों की जाति में पतन की ओर इंगित करता है।

पंडित मोटेराम शास्त्री ने लोगों को धर्म की दुहाई देकर टाउन हाल पर एक भाषण दिया और यह घोषित किया कि यदि उन लोगों ने उस दिन दूकानें न खोलीं तो वे आमरण अनशन करेंगे। पंडित मोटेराम शास्त्री के पास अनशन के अतिरिक्त अन्य साधन नहीं था। उस अनशन के पूर्व उन्होंने अपने पेट को मिठाइयों से ठूस-ठूस कर भर लिया था।

अनशन और पंडित मोटेराम शास्त्री दो ऐसी वस्तुएँ थीं जो एक-दूसरे से कोसों दूर थीं। अनशन की दूसरी रात को नौ बजे पंडित मोट्टराम शास्त्री जमीन पर पट लेटे हुए खाने की चीजों, विशेषकर मिठाई, का स्वप्न देख रहे थे। इसी बीच में बनारस नगर की कांग्रेस कमेटी के सेक्रेटरी बाजार में उपलब्ध सबसे अच्छी मिठाई लेकर आए और पंडित जी को भेंट में दी। मिठाइयों से मधुर सुगंध आ रही थी। कलाकंद के लिए उनमें सबसे अधिक लालच और लालसा थी और वह उसे खाने लगे। उनका अनशन भंग हो गया।

"यह कह कर पंडित जी ने दोना अपनी तरफ खींच लिया और लगे बढ़-बढ़ कर हाथ मारने। यहाँ तक कि एक लमहे में निस्फ दोना खत्म हो गया। सेठ लोग आकर फाटक पर खड़े थे। सेक्रेटरी ने जाकर कहा जरा तमाशा देखिए आप लोगों को न बाजार खोलना पड़ेगी, न खुशामद करनी पड़ेगी। मैंने सारी मुश्किलें हल कर दीं। यह कांग्रेस का एकवाल है।"

'दावत' एक दूसरी कहानी है, जिसमें पं० मोटेराम शास्त्री प्रधान पात्रों में से एक हैं। यह बहुत कुछ चरित्र प्रधान आख्यायिका है। पाठक को हँसाने का यह सफल प्रयत्न है। मोरादपुर की रानी सात ब्राह्मणों को खिलाना चाहती थीं। पं० मोटेराम शास्त्री को उन्होंने बुलाया और उनसे कहा कि वे अपने साथ छः व्यक्ति और लावें। पंडित जी लालची व्यक्ति थे। उनके पाँच लड़के थे: अलगूराय शास्त्री, बेनी राम शास्त्री, छेदी राम शास्त्री, भवानी राम शास्त्री और फेंकू राम शास्त्री। पंडित जी ने निश्चय किया कि वे अपने पाँचों लड़कों तथा स्त्री सहित दावत खाने जायेंगे। उनकी स्त्री पुरुष का वेष धारण कर लेगी और उसका नाम सोना देवी के बजाय पंडित सोना राम शास्त्री होगा। इस प्रकार सात की संख्या पूरी हो जायगी। सोना देवी ने दावत में वास्तव में भाग लिया। यह कुछ-कुछ हास्यास्पद प्रतीत होता है, किन्तु प्रेमचन्द पं० मोटेराम शास्त्री की लोभ प्रवृत्ति पर अधिक जोर देना चाहते थे। उन्होंने अपनी स्त्री को पुरुष के वेष में उस दावत में ले जाने में संकोच नहीं किया जो नगर के भिन्न-भिन्न भागों के सात ब्राह्मणों के लिए थी। उनके पाँचों पुत्रों को यह पाठ पढ़ाया गया कि उनमें से प्रत्येक अपने पिता का भिन्न नाम बतावे। तदनुसार अलगू राम शास्त्री के पिता का नाम पं० केशव पांडे था। बेनी राम के पिता का नाम पं० मंगरू ओझा था। छेदी राम के पिता का नाम डमरी तिवारी था और इस दावत का अन्त विचित्र हुआ क्योंकि एक कुत्ता रसोई में घुस गया, जिसे भारत में उच्च वंश का ब्राह्मण सहन नहीं कर सकता।

"भोजन शुरू होने ही को था कि रानी साहबा का कुत्ता रसोई में घुस आया पंडित मोटेराम के पैर तले से जमीन निकल गई। रानी साहिबा ने कहा हाय यह कुत्ता कैसे छूट गया। अफसोस सारी मेहनत अकारथ हुई। अब तो रसोई भ्रष्ट हो गई।"

मोटे राम : "अच्छा तो हम लोग जाते हैं।"

इस आख्यायिका का सर्वोत्तम भाग वह है जिसमें रानी साहबा द्वारा कुत्ता इस प्रकार छोड़ा गया कि वह रसोई से होकर जाय ताकि पंडित मोटेराम शास्त्री अपने जीवव में इस घटना को कभी न भूलें। रानी साहबा को ज्ञात था कि पाँचों ब्राह्मण पंडित जी के लड़के थे और पं० सोना राम शास्त्री उनकी धर्म पत्नी थीं।

रानी : "मगर आज मैंने भी ऐसा सबक दिया कि जिन्दगी भर याद रक्खेगा।"

चितामनि ने पेट पर हाथ फेर कर जवाब दिया, "सरकार की बुद्धि को धन्य है।"

'बड़े बाबू' सरकारी नौकरी पर साहित्यिक व्यंग है। बड़े बाबू तथा एक बेकार ग्रेएजुट के बीच में जो बातचीत हुई वह इस बात को स्पष्ट करती है।

"गैरत को फना कर देना होगा।"

"मंजूर।"

"शराफत जजबात को बालाए ताक रखना पड़ेगा।"

"मंजूर।"

"मुखबिरी करना पड़ेगी।"

"मंजूर।"

"तो बिसमिल्ला कल से आपका नाम उम्मीदवारों की फिहरिस्त में लिख लिया जायगा।"

उन दिनों की सरकारी नौकरी का यह अर्थ था कि चाँदी के कुछ सिक्कों पर अपनी आत्मा और आत्मसम्मान को बेच देना और मनुष्य के समस्त उत्तम भावों का परित्याग कर देना। 'बड़े बाबू' बेकारी की समस्या के समस्त कुरूप पक्षों पर प्रकाश डालती है किन्तु यह सरकारी नौकरी के विचार की खिल्ली विशेष रूप से उड़ाती है।

देश में असहयोग तथा अन्य आन्दोलन के दिनों में सरकारी नौकरियाँ राष्ट्रप्रेमी व्यक्ति के लिए अपमानजनक समझी जाती थीं। सरकारी नौकरी

की इस सीमा तक निन्दा होती थी कि सरकारी नौकर यदि वास्तव में देशद्रोही नहीं, तो भी नौकरशाही के अंग समझे जाते थे ।

बेकारी की समस्या भारतवर्ष की आर्थिक व्यवस्था का एक मुख्य लक्षण था और अब भी है। निम्न मध्यम वर्ग के लोग न तो कोई व्यवसाय जानते हैं और न वे कोई उद्यम । अतएव वे सरकारी अफसरों के दरवाजे खट-खटाते हैं। इस कहानी के व्यंग के दो प्रधान उद्देश्य हैं। सबसे पहली बात यह है कि कहानी लेखक एक राष्ट्रप्रेमी के दृष्टिकोण से सरकारी नौकरी की बुराई करना चाहता है और दूसरी बात यह है कि वह बेकारी के सुखद तथा गम्भीर तथ्यों की विवेचना करता है। पहले के कारण पाठक को हँसी आती है और दूसरे के कारण बेकार स्नातकों (ग्रेजुएटों) के प्रति सहानुभूति उत्पन्न होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि कहानी का हास्य उसके विषादपूर्ण पक्ष को आच्छादित कर लेगा किन्तु अन्त में लेखक की सहानुभूतिपूर्ण लेखनी उस समाज के शरीर पर एक बड़ा और गहरा घाव छोड़ देती है जोकि पढ़े-लिखे बेकार नवयुवकों को काम नहीं दे सकता ।

'अजीब होली' अंग्रेजों की मिथ्या अहंकारी प्रवृत्ति का हास्य चित्र प्रस्तुत करने का प्रयत्न करती है। राय उजागरमल नगर के एक बड़े रईस थे । उनका विचार था कि अंग्रेज भारतीयों का बड़ा आदर करते हैं। खानसामा ने उनसे कहा कि मिस्टर ए० बी० क्रास उनके साथ होली खेलना चाहेंगे । इस भ्रमात्मक विचार के कारण उन्होंने मिस्टर क्रास के कपड़ों पर रंग की कुछ छींट छोड़ दीं। मिस्टर क्रास यह नहीं सह सकते थे । वे इतने क्रोधित हुये कि अपनी छड़ी से राय उजागरमल की पिटाई करने के लिये उनके पीछे दौड़े। राय उजागरमल किसी तरह उस अंग्रेज के हाथों से बच निकले । जब उन्होंने पूरी परिस्थिति पर विचार किया तो वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि अंग्रेज भारतीयों से घृणा करते हैं अन्यथा मिस्टर क्रास को उजागरमल के समान धनी-मानी व्यक्ति के पीछे छड़ी लेकर न दौड़ना चाहिये था ।

"लेकिन माना कि मेरा पिचकारी चलाना साहब को बुरा मालूम हुआ और ये लोग होली नहीं खेलते तो भी इनका गुस्से से इस कदर दीवाना हो जाना इसके सिवाय और क्या जाहिर करता है कि ये लोग हमें कुत्तों से बेहतर नहीं समझते। इनको अपने एकतिदार पर कितना गुर्रा है। यह मेरे पीछे हंटर लेकर दौड़े। अब मालूम हुआ कि ये मेरी थोड़ी-बहुत इज्जत करते थे वह सिर्फ एक धोखा था। दिल में ये हमें भी जलील और कमीना ख्याल करते हैं। सुर्ख रंग कोई

तौर न था । हमी लोग बड़े दिन में गिरजे जाते हैं । उन्हें डालियाँ देते हैं । वह हमारा त्योहार नहीं, मगर यह जरा-सा रंग डाल देने पर इतना बिगड़ा था । आह यह बेइज्जती, मुझे उसके सामने खम ठोककर खड़ा होना चाहिये था । भागना बुजदिली थी ।"

इस कहानी में हास्य अधिक रोचक है । क्योंकि मिस्टर क्रास के नौकर भोजन के कमरे में 'बोतल पार्टी' का मजा ले रहे हैं । वे होली के पर्व पर शराब पीते हैं और गाना गाते हैं ।

उनकी हास्य रस की कहानियाँ उद्देश्यहीन नहीं हैं । हास्य रस की ये सब कहानियाँ सामाजिक विषयों से सम्बन्ध रखती हैं । इनमें से कुछ तो हास्य चित्र हैं, कुछ परिहासपूर्ण व्यंग्य और अन्य सुधारवादी तथा मानवतावादी प्रवृत्तियों से ओत प्रोत हैं । **'दावत'** ब्राह्मण वर्ग में पाये जाने वाले लोभ का परिहासपूर्ण चित्र है । **'सत्याग्रह'** राजनैतिक व्यंग है । **'बड़े बाबू'** और **'अजीब होली'** प्रेमचन्द को हमारे समक्ष सुधारक के रूप में उपस्थित करती हैं ।

मुन्शी प्रेमचन्द मानव व्यवहार की जटिल तथा परस्पर विरुद्ध प्रकृति को भलीभाँति समझते थे । समुदाय के मनोविज्ञान के अतिरिक्त वे बच्चों के मनोविज्ञान, संकटावस्था के व्यक्तित्व तथा मनुष्य के मस्तिष्क के विकास का भी अच्छा ज्ञान रखते थे । वे मनोविज्ञान की व्यवहारवादी विचार परम्परा के पक्ष में थे । सम्भवतः वे मनोविश्लेषण के विषय में भी कुछ जानकारी रखते हैं । मानव मस्तिष्क के अध्ययन का उनका ढंग निरीक्षण तथा मनन पर आधारित था ।

उनकी कुछ लघु कहानियाँ मनोविज्ञान के विद्यार्थियों के लिये वैज्ञानिक अनुसंधान हेतु अच्छा साहित्य प्रस्तुत करती हैं । मोहन नाम का एक नौजवान युवक अत्यन्त क्रोधी स्वभाव का था । वह अपनी विधवा माँ, छोटी बहिन या अपने से बहुत छोटे भाई से झगड़ा करने में तनिक भी संकोच नहीं करता था । वह रूपा से प्रेम करने लगता है । रूपा ने भी उसके प्रेम का प्रतिदान दिया है। इसका परिणाम यह होता है कि मोहन परिवार में अत्यन्त सौजन्य और सुशील हो जाता है । उसकी माँ, बहन तथा भाई उसे बहुत चाहने लगते हैं । **'अक्सीर'** शीर्षक यह कहानी इस बात की द्योतक है कि काम सम्बन्धी भावनाओं का किसी व्यक्ति के स्वभाव पर कितना गहरा प्रभाव पड़ता है । कठोर स्वभाव या उन्माद के समान अशिष्ट व्यवहार, दमित काम भावना अथवा कामोत्तेजना का परिणाम है । विश्लेषण ने इसे सिद्ध कर दिया है ।

कुसुम नाम की एक तरुणी अपने पति से यह जानना चाहती है कि वह उससे बातचीत क्यों नहीं करता या उसके पत्र का उत्तर क्यों नहीं देता । उसे बड़ी मानसिक तथा शारीरिक वेदना होती है । जब उसे यह ज्ञात होता है कि उसका पति उसके पिता से विदेश जाने के लिये कुछ हजार रुपये चाहता है तो वह उससे घृणा करने लगती है । पति से घृणा करने का एक मनोवैज्ञानिक कारण है । सब स्त्रियों की भाँति वह भी अपने पति से विवाह तै होने के प्रथम दिन से ही प्रेम करने लगती है और उस व्यक्ति के सम्बन्ध में तरह-तरह की कल्पना करने लगती है । उस समय में जब वह पति की ओर से कुछ प्रति-उत्तर नहीं पाती उसे अत्यन्त मानसिक क्लेश होता है । पर जब कुसुम को ज्ञात होता है कि उसका पति इतना लालची और आदर्शहीन है कि विदेश जाने के लिये वह उसके पिता से हजारों रुपये माँगता है तो उसका प्रेम घृणा में परिवर्तित हो जाता है ।

इस लघु कथा में प्रेमचन्द ने संकटकाल में मानव स्वभाव का चित्रण सरलता से किया है ।

एक नव विवाहित पति अपने परिवार की गरीबी छिपाना चाहता है । वह अपने पड़ोसी के जेवर चुरा लेता है, चाहे उस अपराध के लिए वह पकड़ ही क्यों न जाय क्योंकि उसे अपनी सुन्दर नवयुवती पत्नी का हृदय हरना है । यह कहानी है **'जेवर का डब्बा ।'**

'खुदी' में पाँच वर्ष से लेकर सत्रह वष की अवस्था तक एक लड़की के मानसिक विकास का अध्ययन है । पाँच साल की अवस्था में मुन्नी दिलदारनगर आई । वह अनाथ थी ।

"लड़की की सूरत बहुत प्यारी थी । जो उसे देखता मोहित हो जाता । उसे खाने-पीने की कुछ फिकर न रहती थी । वह सब की थी । उसका कोई न था ।"

उसका रूप रंग इतना भोला भाला था कि प्रत्येक व्यक्ति उसे खाने के लिए कुछ न कुछ देना चाहता था । वह सब की थी लेकिन उसका कोई न था ।

कुछ वर्ष बीते और वह बड़ी हुई । अब वह दूसरे का काम कर सकती थी । इसके बदले उसे खाने के लिए कुछ मिल जाता । बेचारी बालिका यह नहीं जानती थी कि ऐसा व्यक्ति जो सब का है किसी को अपना नहीं समझ सकता ।

वह बढ़कर सुन्दर तरुणी हो गई । गाँव के नौजवान छोकरे उससे प्रेम करने लगे ।

"जब वह अपना फराख सीना उभार कर गुरूरे हुस्न से गर्दन उठाए, नजाकत से लचकती हुई चलती तो मनचले नौजवान दिल थाम कर रह जाते। उसके पैरों तले आँख बिछाते। कौन था जो उसके एक इशारे पर अपनी जान न निसार कर देता। वह यतीम लड़की जिसे कभी गुड़िया खेलने को न मिली, अब दिलों से खेलती थी। किसी को मारती, किसी को जलाती, किसी को ठुकराती थी, किसी को थपकियाँ देती थी। किसी से रूठती थी किसी को मनाती थी। इस खेल में उसे एक सफाकाना मजा आता था। अब पासा पलट गया था। पहले वह सब की थी, कोई उसका न था। अब सब उसके थे पर वह किसी की न थी।"

उस अनाथ बालिका को गाँव का प्रत्येक तरुण अपना बनाना चाहता था क्योंकि वह एक सुन्दर युवती थी। अब प्रत्येक व्यक्ति उसका था किन्तु वह किसी की न थी।

उसने शीघ्र ही समझ लिया कि गाँव के उसके समस्त पुरुष साथी उसके प्रति सच्चे न हो सकते थे। अतएव, वह एक ऐसे पुरुष की खोज में थी जो उसका सच्चा साथी हो सके।

संयोगवश उसने एक ऐसे मनुष्य को खोज निकाला। वह एक यात्री था। वह उसके साथ रहने लगी। मुन्नी इस व्यक्ति के साथ पूर्णतया सुखी थी। एक दिन वह उसे छोड़ कर चला गया। जीवन की अन्तिम घड़ी तक उसने उसकी प्रतीक्षा की। यात्री कभी न लौटा।

'जाविया निगाह' नामक कहानी सास और बहू के सम्बन्ध की जटिलताओं पर प्रकाश डालती है। प्रेमचन्द ने इस सम्बन्ध को अपने ढंग से समझाने का प्रयत्न किया है। दोनों में संघर्ष स्वाभाविक है क्योंकि जीवन में सामाजिक मूल्य एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में परिवर्तित होता रहता है। स्त्री की स्थिति में एक आमूल परिवर्तन हो गया है अतएव सास को अपनी बहू से उसी प्रकार के व्यवहार की आशा न करनी चाहिए जैसा दादी माँ अपनी बहू से करती थीं। माता और पुत्र के बीच का संवाद इस समस्या के लगभग सभी पक्षों पर प्रकाश डालता है और अत्यन्त यथार्थ है।

माँ : "तुम मेरी दिलजुई करते हो। तुम्हारे घर में मैं इस तरह रहती हूँ जैसे कोई मजदूरनी। तुम्हारी बीबी कभी भली नहीं पूछती। मैं भी कभी बहू थी। रात को घण्टा भर तक सास का बदन दबाती, सर में तेल डालती तब बिस्तर पर पाँव रखती। तुम्हारी बीबी

नौ बजे किताबें लेकर सहनची में जा बैठती है। दोनों खिड़कियाँ खोल लेती है और मजे से हवा खाती है। मैं मरूँ या जियूँ उसे मतलब नहीं। इसीलिए मैंने तुम्हें पाला था?"

बेटा : "आप मेरे फर्ज या खिदमत का भार मेरी बीबी पर क्यों डालती हैं। यों अगर वह आपकी खिदमत करे तो मुझसे ज्यादा खुशनसीब और कोई न होगा। मुझे यह बुरा मालूम होता है कि बहू सास के पैर दबाये। कुछ दिन पहले औरतें अपने शौहरों के पैर दबाया करती थीं। शायद आज भी ऐसी औरतें मौजूद हों। लेकिन मेरी बीबी मेरा जिस्म दबाये तो मुझे रूहानी तकलीफ हो। मैं उससे ऐसी कोई खिदमत नहीं लेना चाहता जो मैं उसकी न कर सकूँ। यह रस्म उस जमाने की यादगार है जब औरत शौहर की लौंडी समझी जाती थी। अब मर्द और औरत दोनों बराबर हैं। कम अज़ कम मैं ऐसा ही समझता हूँ।"

सास को अपनी बहू से ऐसे व्यवहार की आशा न करनी चाहिए क्योंकि समय बदल गया है।

'**मिस पद्मा**' एक महत्वपूर्ण कहानी है क्योंकि निम्नलिखित अवतरण में प्रेमचन्द ने सिगमन्ड फ्रायड के सिद्धान्तों का उल्लेख किया है :

"पद्मा ने तालीम से जो फैज उठाया था उसमें नफ्सानी ख्वाहिशात की तकमील ही हयात का मकसद था। बंदिश रूह की बालिदिगी के लिए जहर थी। फ्रायड उसका माबूद था और फ्रायड के नजरिये उसकी जिन्दगी के लिये मशले हिदायत किसी अजो को बाँध दो थोड़े ही दिनों में वह दौराने खून बन्द हो जाने के बायस बेकार हो जायगा। फासिद माद्दा पैदा करके जिंदगी को मारिजे खतर में डाल देगा। यह जो जनून और मिराक़ और एखतिलाले दिमाग की कसरत है, महज इसलिये कि ख्वाहिशात में रुकाव डाला गया। नफसियात की यह नई तनकीह पद्मा की जिन्दगी का मुसल्लिमा उसूल था।"

यह अवतरण बतलाता है कि प्रेमचन्द ने सम्भवतः सिगमंड फ्रायड की कृतियों को पढ़ा था। वे फ्रायड के सिद्धान्त का महत्व समझते थे। मिस पद्मा के जीवन पर उसके अवचेतन मस्तिष्क का प्रभाव पड़ रहा था। उसी कहानी में एक दूसरे अवसर पर लेखक बतलाता है कि उसके सुन्दर रूप का प्रभाव अदालत पर भी पड़ता है।

"अदालत भी इसकी रानाइयों और शीरी बयाननियों से बेनियाज न रह

सकती। जाहिद तबियत जजों की नजर में भी सुरूर हो जाता। चेहरों पर रौनक आ जाती। सभी उसकी एक नजर के मुतमन्नी थे और उसकी वकालत क्यों न कामियाब होती। वह शिकस्तों से नाआशना थी। उनमें सभी फतह का पहलू छुपा होता है। इसके मुवक्किल मुलजिम को इलजाम सावित हो जाने पर भी सजा बहुत नरम मिलती या उसका मुकदमा कमजोर होने पर भी फरीके मुखालिफ का शदीद तरीन मोआखजा होता। इसके खिलाफ डिगरियाँ भी होतीं तो उससे अदालत का खरचा न लिया जाता या शरहे सूद में माकूल तखफीफ हो जाती और मुवाफिक डिगरियों में फरीक सानी की शामत ही आ जाती। उसके हुस्न का जादू न मालूम तौर पर अपना असर डालता रहता था।"

एक दूसरा उद्धरण है :

"बिला शक इसके बहस में इस्तेदलाल के मुकाबिले में जज़बात का पहलू गालिब होता है। लेकिन इसमें नफसानियत की जगह सदाकत और खुलूस का इतना पुख्ता रंग होता है कि अदालत भी इससे बगैर मुतासिर हुए न रह सकती।"

इस प्रकार मिस पद्मा एक अनुपम चरित्र है। प्रेमचन्द उसके अवचेतन मस्तिष्क के प्रतीकों का विश्लेषण करने में सफल हैं। कहानी में सर्वत्र उसका व्यक्तित्व पाठक पर यह प्रभाव डालता है कि उसका जीवन सेक्स (काम) जीवन के आनन्दोपभोग की प्रस्तुत बाधाओं के विरुद्ध एक खुला विद्रोह है।

किंतु जो अंत उसका हुआ वह बहुत कुछ एक ऐसी घटना थी जिसका सामना उस कोटि के पात्रों को साधारणतया करना पड़ता है। मिस्टर भल्ला, जिसके साथ उसका अनैतिक प्रेम सम्बन्ध चल रहा था, ने समझ लिया कि वे अपनी परित्यक्त पत्नी रतना के प्रेम में अधिक संतुष्ट रह सकते हैं। अगर मिस्टर भल्ला उसको सही रूप में समझ लेते तो यह संकट की अवस्था कभी न आती।

मुंशी प्रेमचन्द ने केवल एक ही पक्ष पर विचार किया है और इसीलिये उन्होंने यह न अनुभव किया कि यदि फ्रायडवाद का प्रचार हो जाय अथवा सभी लोग अवचेतन मस्तिष्क पर विश्वास करने लगे तो जीवन का आनंद प्राप्त हो सकता है। निस्संदेह, भारतीय समाज में, जहाँ सेक्स एक निषिद्ध वस्तु है, स्त्री पुरुष एक दूसरे से स्वतंत्रता से नहीं मिल सकते और जहाँ नारीत्व की पवित्रता धर्म है, वहाँ का वातावरण किसी भी सेक्स सिद्धांत, विशेषकर फ्रायडवाद, के पनपने के लिये अनुकूल नहीं है।

उर्दू में छपी हुई प्रेमचन्द की अंतिम कहानी '**दो बहिनें**' है। अक्तूबर सन् १९३६ ई० में यह अस्मत में प्रकाशित हुई थी। यह कहानी रामदुलारी की

बडी बहिन रूपकुमारी के मस्तिष्क के अध्ययन का प्रयत्न करती है। रूपकुमारी का विवाह उमानाथ के साथ हुआ था जो पछत्तर रुपये प्रति मास पाने वाला एक क्लर्क था। छोटी बहिन रामदुलारी का विवाह गुरुसेवक से हुआ था जो चार सौ प्रति मास वेतन पाता था। दो वर्ष पश्चात् दोनो वहिने एक सबधी के घर मे मिली। रूपकुमारी अपनी छोटी बहिन के अहकारपूर्ण दिखावटी ढग को देखकर बहुत निराश हुई। वह अपने भाग्य की तुलना रामदुलारी के भाग्य से करने लगी।

"सर से पाव तक गहनो से लदी हुई है। कुछ उसका रग खिल गया है। मिजाज मे कुछ तमकनत आ गई है और बातचीत करने मे कुछ ज्यादा मश्शाक हो गई है। बेशकीमत साडी और बेलदार उन्नाबी मखमल के जम्पर ने उसके हुस्न को और भी चमका दिया है। वही रामदुलारी जो लडकपन मे सर के बाल खोले फूहड सी इधर-उधर खेला करती थी। मगर आज तो कुछ हालत ही और थी जैसे कली खिल गई हो और हुस्न उसने कहाँ छिपा रक्खा था। रेशम और मखमल और सोने की बदौलत नक्शा थोडे ही बदल जायगा। फिर भी वह आँखो मे समाई जाती है। पचासो औरतें जमा है। मगर यह कशिश और किसी मे नही और उसके दिल मे हसद का एक शोला सा दहक उठा।"

इस ईर्ष्या ने उसके मानस को अशान्तिमय बना दिया। इसका कारण पता लगाने के प्रयत्न मे वह असफल रही। प्रेमचन्द ने उसकी मानसिक अवस्था को समझाने का प्रयत्न बडी कुशलता से किया है।

"न सही उसके पास जेवर और कपडे। किसी के पास जेवर और कपडे। किसी के सामने शर्मिन्दा तो नही होना पडता। एक-एक लाख के तो उसके दो लडके है। भगवान उन्हे जिन्दा और सलामत रक्खे। वह इसी मे खुश है। खुद अच्छा खा लेने से ही तो जिन्दगी का मकसद पूरा नही हो जाता। इसके घर वाले गरीब हैं। पर इज्जत तो है। किसी का गला तो नही दबाते, किसी की बद्दुआ तो नही लेते।"

एक दिन गुरुसेवक अपनी साली से मिलने आया। उसने उससे कहा कि वह मिस्टर लोहिया का वैयक्तिक सहायक था। मिस्टर लोहिया एक बडे धनी व्यक्ति थे किंतु कोई यह न जानता था कि वे धन कैसे कमाते थे? वे कोकीन का व्यापार करते थे। प्रत्येक नगर मे उनके एजेट थे। मिस्टर लोहिया ने गुरुसेवक

को भी सफलतापूर्वक व्यापार करना सिखा दिया था। इस कारण रूपकुमारी गुरुसेवक से घृणा करने लगी। वह अपने भाग्य से संतुष्ट थी।

"जिस सादगी और खुलूस और ईसार की फिजा में अब तक जिंदगी गुजरी थी उसमें हरामकारी और अबला फ़रेबी का गुजर न था। इन दामों वह दुनिया की सारी दौलत और सारा ऐश भी खरीदने को आमादा न हो सकती थी। अब वह रामदुलारी की तक़दीर से अपनी तकदीर का बदला न करेगी। वह अपने हाल में खुश है। रामदुलारी पर उसे रहम आया जो नमूद और नुमाइश के लिये अपने जमीर का खून कर रही है। मगर एक ही लमहे में गुरुसेवक की तरफ से उसका दिल नरम पड़ गया। जिस सोसाइटी में दौलत पुजती है, जहाँ इंसान की कीमत उसके बैंक एकाउंट और उसकी शान शौकत से गिनी जाती है, जहाँ कदम-कदम पर तरग़ीबों का जाल बिछा हुआ है और सोसाइटी का निजाम इतना बेढंगा है कि इंसान में हसद और गजब और फरमायगी के जजबात को उकसाता रहता है वहाँ गुरुसेवक अगर रौ में बह जाय तो ताज्जुब का मुकाम नहीं।"

प्रेमचन्द ने इस बात पर जोर दिया कि ऐसे समाज में जहाँ धन ही मुख्य वस्तु है, जहाँ मनुष्य का सम्मान बैंक में जमा धनराशि पर किया जाता है, जहाँ सुन्दर वस्त्र पहने हुये व्यक्ति का आदर प्रत्येक स्थान में होता है और जहाँ धन सम्पत्ति के लिये आदर्श त्याग दिये जाते हैं, गुरुसेवक की तरह के साधारण व्यक्तियों को दोषी ठहराना व्यर्थ है, यदि वह धन के लालच के कारण पथ भ्रष्ट ही हो जाय।

मनोवैज्ञानिक कहानियों की यह सूची पूर्ण नहीं है। हमने केवल कुछ उदाहरण दिये हैं। उनकी मनोवैज्ञानिक कहानियों से हमें यह विदित होता है कि वे सच्चे कलाकार थे क्योंकि ये कहानियाँ हमें मनुष्य के चरित्र, भावनाओं और विचारों के समझने में सहायता देती हैं। इन कहानियों के पढ़ने के उपरान्त यह स्पष्ट हो जाता है कि जहाँ तक चरित्र चित्रण का संबंध है, प्रेमचन्द एक महान् कलाकार थे। इसके अतिरिक्त हम एक बात और देखते हैं। वह यह है कि लघु कथाओं में आख्यायिका-कला संबंधी शिल्प की कोई त्रुटि नहीं है।

कहानी में प्रभाव का संकलन-ऐक्य (यूनिटी आफ इम्प्रेशन) बड़ा महत्वपूर्ण होता है। प्रेमचन्द की मनोवैज्ञानिक कहानियाँ शिल्प की यह विशेषता एक अनोखे ढंग से प्रदर्शित करती हैं। यद्यपि ये मनोवैज्ञानिक कहानियाँ हैं तो भी हम उन्हें दूसरे वर्गों में भी रख सकते हैं। हम यह कह सकते हैं कि 'जाविया

निगाह' और 'दो बहिनें' नामक कहानियों का विषय सामाजिक भी है। उनकी कहानियाँ मनोवैज्ञानिक और साथ ही सामाजिक हैं।

उनकी बहुत-सी कहानियाँ सामाजिक विषयों पर लिखी गयी हैं। सामाजिक विषयों पर लिखने में वे सिद्धहस्त हैं। इन प्रयासों के द्वारा भारतीय समाज की समस्याओं का सजीव वर्णन उन्होंने किया है। ये वर्णन उस समय के समाज के दुःख और दरिद्र का चित्र अंकित करते हैं। यथार्थवाद के साथ प्रभाववादी स्पर्श का भी पुट है। ये भाव साधारण व्यक्ति में रचनात्मक आदर्शों तथा क्रान्ति की प्रवृत्ति का विरोध करते हैं। साथ ही साथ उनके प्रयास इस बात का भी आभास देते हैं कि जब तक समाज में पूर्ण परिवर्तन न हो इन बुराइयों का कोई उपचार नहीं हो सकता क्योंकि इन समस्याओं का संबंध समाज के भिन्न-भिन्न पक्षों से है। इन बुराइयों का सुधार सामाजिक परिवर्तन द्वारा ही हो सकता है।

अछूतों की समस्या हमारे समाज का कलंक थी। अपने अन्य समकालीन व्यक्तियों की भाँति मुंशी प्रेमचन्द ने भी हरिजनों का पक्ष लिया और उनके प्रति अच्छे सामाजिक व्यवहार की माँग की। उनके उपन्यासों के अतिरिक्त 'तालीफ' और 'दूध की कीमत' अछूतों की समस्या से संबंधित हैं।

पहले हम **'तालीफ'** पर विचार करें। लीलाधर चौबे जो एक कट्टर हिंदूमहासभाई थे, हरिजनों के बीच कार्य करने के लिये मद्रास गये। उनके वक्तृत्व कौशल का प्रभाव हरिजनों पर न पड़ा क्योंकि चौबे जी उनके साथ खाना खाने तक के लिये तैयार न थे। जब हरिजन वर्ग के एक वयोवृद्ध व्यक्ति ने उनसे पूछा कि क्या वे अपने पुत्र के साथ हरिजन कन्या का विवाह कर लेंगे, तो चौबे जी किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये।

दो मुसलमान गुण्डों ने उनको करौली मार दी। जैसे ही हरिजन जाति के उस वयोवृद्ध व्यक्ति को यह ज्ञात हुआ, वह चौबे जी को घर लाया और उनकी सेवा उनके पूर्ण स्वस्थ होने तक की।

मुंशी प्रेमचन्द ने इस घटना का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। चौबे जी के घावों से बड़ी जोरों से रक्त बह रहा था। उनकी देखभाल करने वाला कोई न था। एक नाई एक दूर के गाँव में रहता था जो गाँव में जर्राह का काम करता था।

"दूर के एक गाँव में एक नाई रहता था। वही वहाँ का सर्जन था। रात को उसके पास कासिद दौड़ाया। और वह गरीब आधी रात के करीब उस पहाड़ी रास्ते और अंधेरी रात में गिरता पड़ता चौधरी के घर आ पहुँचा।

देखिये यह जुहला की तहजीब का नमूना। आपका सर्जन रात को बाहर नहीं निकलता। निकलता है तो दूनी तिगुनी फीस लेकर। अगर सवारी न हो तो कदम न उठाये। वहाँ आधी रात को गरीब खबर पाते ही दौड़ा चला आता है। किसी सिले की तमन्ना नहीं। अगर कुछ मिल जाय तो वाह वाह। वरना किसी से शिकायत नहीं। साँप के मन्तर जानने वाला अगर हादिसे की खबर पाकर दौड़ न पड़े तो उसे पाप लगता है। नदी चढ़ी हो, रात अंधेरी हो, कोई परवाह नहीं। उसका धरम है कि मार गुजीदा के पास आये और हत्तुल इमकान उसकी खिदमत करे।"

यद्यपि इस कहानी की और भी कई समस्यायें हैं फिर भी मनुष्य की उस अच्छाई पर अधिक बल दिया गया है जो किसी वर्ग तक ही सीमित नहीं है। एक हरिजन के पास भी वैसा ही हृदय है जो एक ब्राह्मण के वक्ष में स्पन्दित होता है।

'दूध की कीमत' एक दूसरी कहानी है जो हरिजन सम्प्रदाय के एक व्यक्ति से विशेष सम्बन्ध रखती है। भारतवर्ष के गाँवों में औरतों के अस्पताल नहीं हैं। बच्चों का जन्म अधिकतर गाँव की भंगिन की देख रेख में होता है। भंगिन अपने काम में बहुत निपुण होती है। महेशनाथ की स्त्री के लिए एक भंगिन बुलाई गई। महेशनाथ की स्त्री इतनी दुर्बल थी कि वह अपने बच्चे को अपना दूध भी नहीं पिला सकती थी, अतः मेहतरानी से कहा गया कि वह नवजात शिशु को दूध पिलावे। वह उसे लगभग डेढ़ साल तक दूध पिलाती रही। कुछ समय बाद मेहतरानी अपने एक चार साल के बालक को, जिसका नाम मंगल था, छोड़ कर मर गई। अब मंगल अनाथ था और साथ ही साथ अछूत भी। उसको भोजन देने वाला भी कोई नहीं था। टामी नामक कुत्ता सदैव उसके साथ रहता, वह उसके कष्टों में साथ देता और जो कुछ मंगल खाने को पा जाता उसमें से कुछ अंश उसे भी मिल जाता। कहार को एक थाल में जूठा खाना ले जाते देखा। शायद घूरे पर डालने जा रहा था। मंगल अन्धेरे से निकलकर रोशनी में आ गया था। अब सब्र न हो सकता था। कहार ने कहा, 'अरे तू यहाँ था हमने समझा कि तू चला गया। ले खा ले। मैं फेंकने के लिए जा रहा था।' मंगल ने कहा, 'मैं तो बड़ी देर से यहाँ खड़ा था।' 'तो बोला क्यों नहीं ?' 'डर लगता था।' 'अच्छा तो खा ले।' मंगल ने थाल उसके हाथ से ले लिया और उसे ऐसी नजर से देखा जिसमें शुक्र और एहसानमन्दी की एक दुनिया छुपी थी और फिर वह दोनों नीम के दरख्त के नीचे हस्ब मामूल खाने लगे। मंगल ने एक हाथ से

टामी का सर सहलाकर कहा, 'देखा पेट की आग ऐसी होती है । लात की मारी हुई रोटियाँ भी न मिलतीं तो क्या करते ।' टामी ने दुम हिलाई । 'सुरेश को मां ही ने तो पाला है टामी ।' टामी ने फिर दुम हिला दी । 'लोग कहते हैं कि दूध का दाम कोई नहीं चुका सकता ।' टामी ने फिर दुम हिला दी । 'और मुझे यह दूध का दाम मिल रहा है ।' टामी ने फिर दुम हिला दी ।

एक भोले भाले बच्चे का यह हाल केवल उसके भंगी होने के कारण है ।

हरिजनों के साथ प्रेमचन्द की सहानुभूति थी । वे हरिजनों के जीवन में पूर्ण आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन चाहते थे । 'दूध की कीमत' में प्रेमचन्द इस ओर संकेत करते प्रतीत होते हैं कि मंगल के साथ भी उस सुरेश की भाँति क्यों न व्यवहार किया जाय जो महेशनाथ का लड़का तो था किन्तु जिसने मंगल की मां का दूध पिया था । हरिजन का शोषण सभी करते थे ।

'पंचायत' उनकी सर्वोत्तम कहानियों में से एक है । जुम्मन चौधरी और अलगू चौधरी दोनों घनिष्ट मित्र थे । उनकी घनिष्टता में धर्म भी बाधक न था । जुम्मन के एक चाची थी । वह विधवा थी और उसके पास कुछ सम्पत्ति थी । उसने अपना सर्वस्व जुम्मन को इस शर्त पर दे दिया था कि जुम्मन उसका आजन्म भरण पोषण करेगा । जुम्मन ने अपने वचन का पालन नहीं किया । अतएव उसकी चाची ने पंचायत के सम्मुख मामला पेश किया । अलगू चौधरी सरपंच चुना गया । जुम्मन ने सोचा कि वह जीत जायगा क्योंकि अलगू उसका घनिष्ट मित्र है । अलगू चौधरी बड़े चक्कर में था किन्तु शीघ्र ही उसने अपने ऊपर पड़ी हुई जिम्मेदारी को समझ लिया । उसने विधवा चाची के पक्ष में निर्णय दिया । जुम्मन को यह बहुत महसूस हुआ ।

एक दूसरे अवसर पर इस बात पर पंचायत हुई कि अलगू को उस बैल का दाम मिलना चाहिए या नहीं जो कि सरजू के हाथ बेचने के तुरन्त बाद मर गया था । अबकी जुम्मन पंचायत का सरपंच चुना गया । वह अलगू के विरुद्ध निर्णय दे सकता था, किन्तु उसने अपने दायित्व को समझ कर अलगू के पक्ष में निर्णय दिया :

"पंच परमेश्वर की जय ।"

प्रेमचन्द लिखते हैं, "एक नौजवान आलमेशबाब में कितना बेफिक्र होता है । वाल्दैन उसे मायूसाना निगाहों से देखते हैं । उसे नंगे खानदान समझते हैं मगर थोड़े ही दिनों में वाल्दैन का साया सर से उठ जाने के बाद वही वारफ्ता मिजाज

नंगे खान्दान, कितना सलामत रौ, कितना मोहतात हो जाता है । यह जिम्मेदारी का एहसास है ।"

यथार्थ में दायित्व और आत्मविश्वास की भावना के कारण ही आधुनिक सभ्यता में बड़ी जटिल संस्थाओं का विकास हो गया है । यदि निर्णायक बेईमान और दायित्वहीन हो जाय तो पंचायत एक तमाशा बन जाय । इस उत्तरदायित्व की भावना पर ही पंचायत जैसी संस्थाएँ आधारित हैं । इस कहानी में लेखक यह दिखलाना चाहता है कि पंचायत को किस प्रकार काम करना चाहिए । इसे ईमानदारी से न्याय करने वाली एक सामाजिक संस्था होना चाहिए ।

'जाद ए राह' एक बड़ी करुणाजनक कहानी है । रामनाथ एक बड़े सेठ थे । वे अपने पीछे अपनी विधवा, जिसका नाम सुशीला था, एक पुत्र और एक पुत्री छोड़ कर मरे । यह बच्चे बहुत छोटे थे । सेठ जी के पास कुछ जायदाद थी किन्तु नगद रुपया नहीं था । मृत्यु के पाँचवें दिन धनीराम और कबीरचन्द ने विधवा से कहा कि सेठ जी पर अनकहे २५,००० रुपए उधार थे । ब्राह्मणों को खिलाने के अतिरिक्त सुशीला को अपनी बिरादरी की भी दावत देनी थी । इन गुंडों ने उसके सब जेवर ले लिए और ३०,००० रुपए में मकान भी बेच दिया जिसका वास्तविक मूल्य ५०,००० रुपए था । वह मकान से निकाल भी दी गई ।

"यह कहते हुए सुशीला अंदर गई । बच्चों को खाना खिलाया । एक रोटी खुद आंसुओं के साथ निगली । बर्तन माजे । फिर एक एक्का मँगवा कर उस पर मुख्तसर सामान लादा और घर से रुख्सत हो गई, जिसे उसने इतने अरमानों से कई पुश्तों के लिए बनवाया था । उस वक्त दिल में कितनी उमंगें थीं । ईंट अव्वल दर्जे की हो, चूना खालिस कंकड़ का, लकड़ी पुख्ता । सेठ जी मरहूम तो दिन भर अपनी आढ़त में रहते थे । मजदूरों की निगरानी और देखभाल वह खुद करती थी । जिस दिन मकान तैयार हो गया और आबादी की रस्म अदा हुई उस दिन कई हजार ब्राहणों का भोज हुआ था । सुशीला को इतनी दौड़ धूप करनी पड़ी कि वह एक महीने तक बीमार रही । इस घर से इतने ही दिनों में कितनी यादें वाबस्ता हो गई थीं । इसी घर में उसके दो लड़के मरे थे । यहीं उसके शौहर ने दुनिया को खैरबाद कहा । मरने वालों की रुहें गोया इस दरोदीवार पर मंडरा रही हों । इसका एक-एक कोना गोया उसके सुख से सुखी और दुख से दुखी मालूम होता था । वह पुराना रफीक आज से हमेशा के लिए जुदा हो रहा है ।"

अतएव वह एक कुंजड़े की स्त्री के साथ रहने लगी जो कि बड़ी दयालु थी। प्रेमचन्द लिखते हैं, 'उसने आज देखा कि सच्ची इन्सानियत और मुहब्बत गरीबों और रजीलों में ही रहती है। बड़ों का रहम भी बड़ा होता है, तकब्बुर और खुदनुमाई से पुर।'

झावरमल नामक ६० वर्ष के एक आदमी ने यह इच्छा प्रकट की कि सुशीला अपनी लड़की की शादी उसके साथ कर दे। बिरादरी ने भी इस विवाह की स्वीकृति दे दी। इस छोटी कन्या रेवती के पास गंगा में डूब कर आत्महत्या करने के सिवाय और कोई उपाय न था।

सम्पूर्ण कथा करुणा और गहरी सहानुभूति से परिपूर्ण है। प्रेमचन्द करुणा-जनक कहानियों के लिखने में सिद्धहस्त थे। लेखक बिरादरी, सरपंच और अन्य लोगों द्वारा असहाय व्यक्तियों के शोषण की भर्त्सना करता है।

'कफ़न' में प्रेमचन्द को बड़ी सफलता मिली है। कुछ लोग कहते हैं कि यह प्रेमचन्द की सबसे अच्छी कहानी है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि कला और विषय दोनों के दृष्टिकोण से यह बड़ी महत्वपूर्ण कलाकृति है। घिसु के एक लड़का था जिसका नाम माधो था। दोनों समाज के सताये वर्ग के हैं, जहाँ निराशा या हीन भाव के कारण लोग दुख-सुख के प्रति बिल्कुल उदासीन, भाग्यवादी और कठोर हो जाते हैं; जहाँ पराजयवाद लोगों को भाग्यवादी, कठोर तथा दुख सुख के प्रति पूर्ण उदासीन बना देता है। घिसु और माधो जानते थे कि किस प्रकार परिश्रम किया जाय किन्तु अनुभव ने उन्हें एक नया पाठ सिखा दिया था। वे लोग, जो दूसरों का शोषण करना जानते हैं, दौलत से भरपूर रहते हैं। वे जो ईमानदार और सच्चे हैं अपनी नित्यप्रति की आवश्यकताओं की भी पूर्ति नहीं कर पाते। अतएव घिसु और माधो काहिल हो गए। मजदूरों के शोषित वर्ग की यही दशा है। उन्हें ताड़ी पीने की आदत भी पड़ गई।

माधो की स्त्री बुधिया का देहान्त भयंकर प्रसव पीड़ा के कारण हो गया। उसकी देख भाल करने वाला भी कोई न था। घिसु और माधो में से कोई उसके पास नहीं गए। न पिता अपने पुत्र को और पुत्र अपने पिता को उन आलुओं का अधिक भाग लेने देना चाहते थे जो आग में भुन रहे थे। इसलिए दोनों आग के पास ही बैठे रहे, बुधिया की मृत्यु की चिन्ता किसी को न थी। बुधिया ऐसी स्त्री थी जो दिन में बड़ी मेहनत से काम करती थी और जो कुछ वह कमाती थी उसे अपने पति तथा ससुर पर खर्च करती थी। घिसु की सम्पन्नता उसी के कारण थी।

बुधिया का मृत शरीर झोपड़ी में पड़ा हुआ था। अँधेरा हो रहा था और उनके पास कफ़न खरीदने तक के लिए पैसा न था। तो भी उन्होंने द्वार-द्वार जाकर कफ़न के लिए कुछ पैसे इकट्ठे कर लिए।

तब उन्होंने इस बात पर विवाद किया कि ऐसी स्त्री को जिसे जीवन में अपने शरीर को ढकने के लिए चिथड़े भी न मिल सके, नये कफ़न से क्यों ढँका जाय। फिर यह कोई न देखेगा कि कफ़न का कपड़ा नया है या पुराना। यह तो उस मांस और हड्डियों के साथ जल जायगा जिसे अभी बुधिया कहते थे। वे बाजार में इधर-उधर घूमते रहे और उन्होंने शराब की एक दूकान देखी। ऐसा मालूम होता था कि कोई अमानुषी शक्ति उन्हें उस स्थान पर ले आई हो। उन्होंने दूकान के अन्दर प्रवेश किया परन्तु उनकी अन्तरात्मा को तनिक भी दुख न हुआ। दुःखपूर्ण परिस्थिति के कारण उनके मन में शराब पीने की इच्छा प्रबल हो रही थी और अब वे शराब के नशे में चूर थे।

घिसु अत्यधिक प्रसन्न था और बोला, "उसने हमें सुखी बनाया है, भगवान, उसे स्वर्ग ले जाओ। हम उसे अपने अंतःकरण से आशीर्वाद देते हैं। अपने जीवन में हमने इतनी बढ़िया दावत का आनन्द कभी नहीं लिया।"

यह एक शक्तिशाली कहानी है। यह उन 'वर्गों' के दुख का चित्रण करती है जो सामन्ती एवं औद्योगिक युग का परिणाम थे। शोषित मजदूर वर्ग किस प्रकार भाग्य के व्यंग का शिकार हो जाता है, इसका सफल चित्रण प्रेमचन्द ने किया है। यह एक अमर रचना है। यह आख्यायिका संसार की सर्वोत्तम आख्यायिकाओं में सरलता से स्थान प्राप्त कर सकती है।

प्रेमचन्द की सामाजिक और राजनैतिक लघु कथाओं में करुणा अथवा दुःख तत्व की प्रधानता है। राजनैतिक कहानियों में निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं। सर्वप्रथम तो वे साम्राज्यवाद की विरोधी हैं और द्वितीय जनता की स्वतन्त्रता की भावना की व्यंजना करती हैं। 'जुलूस', 'होली का उपहार' और 'सुहाग की साड़ी' सत्याग्रह के लेखनीबद्ध चित्र हैं। स्वाधीनता संग्राम में स्त्री पात्रों ने भी भाग लिया है। 'रियासत का दीवान', 'लाल फीता', 'भाड़े का टट्टू' ऐसी कहानियाँ हैं जो यह दिखलाती हैं कि नवयुवक आदर्शवादियों पर युग की राजनैतिक प्रवृत्ति का किस प्रकार प्रभाव पड़ता है और वे राजनीतिक आन्दोलनों की ओर किस प्रकार खिच जाते हैं।

'डामुल का कैदी' मिल में सत्याग्रह का एक लेखनीबद्ध चित्र है। सेठ खूबचन्द स्वदेशी मिल का मालिक था। वह बड़ा पूँजीपति था किन्तु वह उदार

हृदय का व्यक्ति था। मजदूर अधिक वेतन माँगते थे। इसलिए उनके नेता गोपीनाथ ने हड़ताल करा दी। उनकी माँगें पूरी न हुईं।

सेठ खूबचन्द ने अपनी जान बचाने के लिए गोपीनाथ पर रिवाल्वर चलाया। इस पर भी गोपीनाथ ने मजदूरों से तितर-बितर होने के लिए तथा मिल मालिक को कोई क्षति न पहुँचाने को कहा। इसका सेठ खूबचन्द पर बड़ा प्रभाव पड़ा। फल यह हुआ कि उन्होंने अपने अपराध को न्यायालय में स्वीकार कर लिया। उन्हें काले पानी की सजा हुई। उनके कारावास में जाने के उपरान्त उनकी स्त्री के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उस पुत्र का नाम कृष्णचन्द्र था। कृष्णचन्द्र ने गोपीनाथ का स्थान लिया। उसी मिल के मजदूरों की एक दूसरी हड़ताल में उसको पुलिस की गोली लगी। निस्सन्देह विषय में आधुनिकता है किन्तु कहानी में कहीं-कहीं पर यथार्थ का अभाव है।

"जखमी गोपीनाथ ने मजमे को मुखातिब करके जईफ आवाज में कहा, मैं अब चन्द लमहों का और मेहमान हूँ। भाइयो, शायद फिर मुझे न देखो। इसलिए मेरी यह तुमसे आखिरी दरख्वास्त है कि तुम लोग अपने घर जाओ और सेठ जी से मुजाहिम न हो। मेरा कहना मानो। अगर सेठ जी का बाल बाँका हुआ तो मेरी आत्मा को वहाँ भी चैन न आयेगी।"

सबसे पहली बात यह है कि ऐसा व्यक्ति जो जीवन की अन्तिम साँसे ले रहा है उसका इस प्रकार का संतुलित भाषण अप्राकृतिक है। दूसरी बात यह है कि गोपीनाथ का आदर्श व्यवहार उन शक्तियों के विपरीत था जो उस घटना के समय ज़ोर पकड़ रही थीं। वह भीड़ सेठ खूबचन्द के जीवन का अन्त अवश्य कर देती।

कृष्णचन्द्र और गोपीनाथ में अपूर्व समानता थी।

"मरीजा ने हसरत नाक लहजे में कहा, भैया ठीक कहते हैं। माता जी, यह मेरे आदमी ही की तसवीर है। भगवान की लीला कोई नहीं जानता। मगर भैया की सूरत इनसे इतनी मिलती है कि मुझे अचरज होता है और स्वभाव भी बिल्कुल वही है।"

कहानी का प्रारम्भ तथा प्रारम्भिक अवस्था में उसका विकास देश के आर्थिक जीवन की उन दशाओं पर आधारित है जहाँ मजदूरों ने निश्चय कर लिया है कि वे गोपीनाथ के नेतृत्व में मिल मालिक से लड़कर जीत जायँगे। किन्तु जैसे ही कहानी आगे बढ़ती है हम देखते हैं कि चेहरों की समानता और आत्मा के शरीर परिवर्तन की स्थूल चर्चा में उसका ह्रास हो जाता है। इस

प्रकार वह ऐसे बिन्दु पर पहुँच जाती है जहाँ उसका सम्पूर्ण संकलन नष्ट हो जाता है और कहानी का मुख्य विषय अस्पष्ट भावुकता के आवरण से ढक जाता है। इसकी शक्ति भी नष्ट हो जाती है, क्योंकि इसमें इतने लम्बे समय का चित्रण हुआ है जिसे लेखक कहानी के विकास में पचा नहीं सका।

यद्यपि इस कहानी से विदित होता है कि प्रेमचन्द को मज़दूरों की समस्या का ज्ञान था, तो भी यह प्रेमचन्द की लिखी हुई राजनीतिक कहानियों में सबसे शिथिल कहानी है।

'आशियाँ बर्बाद' राजनैतिक कहानी लिखने का सुन्दर प्रयास है। जलियाँ वाले बाग के हत्याकाण्ड में सैकड़ों परिवार नष्ट हो गए। कहानी से ज्ञात होता है कि मृदुला और छेमादेवी सेन्ट्रल जेल में दो बन्दी थे। जलियाँ वाले बाग के गोलीकाण्ड में छेमादेवी के तीन पुत्रों और पति की मृत्यु हो गई थी। वह बन्दी थी, बिल्कुल अकेली और अभागी। उसे अपने जीवन से कोई मोह न था किन्तु भारतवर्ष की स्वतन्त्रता किसी अन्य वस्तु की अपेक्षा उसे अधिक प्रिय थी। मृदुला के जीवन की कथा भी उसी के समान दु:खपूर्ण थी। उसका पति, जो केवल दर्शक था, पुलिस की गोली का शिकार हो गया क्योंकि शवों के साथ जाने वाला जुलूस गैरकानूनी घोषित कर दिया गया था। उसका बच्चा, जो छज्जे पर खड़ा था, पुलिस की गोली से मारा गया। उसका केवल यही अपराध था कि उसका घर घटनास्थल के बहुत पास था।

प्रेमचन्द लिखते हैं, "भान छज्जे पर खड़ा था। न जाने किधर से एक गोली आकर उसके सीने में लगी। मेरा लाल वहीं गिर पड़ा। साँस तक न ली। मगर मेरी आँखों में अब भी आँसू न थे। मैंने भान को गोद में उठा लिया। उसके सीने से खून जारी था। मैंने उसे जो दूध पिलाया था उसे वह खून से अदा कर रहा था। उसके खून से तर कपड़े पहने हुए मुझे ऐसा फतहमन्दाना गरूर हो रहा था जो शायद उसके विवाह में रेशमी कपड़े पहन कर भी न होता। लड़कपन, जवानी और मौतसारी मंजिलें एक हिचकी में तमाम हो गईं। मैंने बेटे की लाश को बाप की गोद में दे दिया।"

मनुष्य का जीवन बहुत सस्ता हो गया था। मृत्यु उस स्थान पर स्वतंत्रता से भ्रमण कर रही थी। उसने बच्चे और बूढ़े में कोई अन्तर न किया। कुछ ही क्षणों में विवाहित स्त्रियाँ विधवा हो गईं और असंख्य बच्चे अनाथ हो गए। पुलिस की गोली ही इस समय मूल्यवान वस्तु थी। माता अपने इकलौते पुत्र से कहती : 'मैंने तुम्हें अपनी छाती का दूध पिलाया था और तुम उसे रक्त से चुका रहे हो' कितने करुणाजनक शब्द हैं।

प्रेमचन्द पुलिस शक्ति द्वारा निर्दयतापूर्वक जन-आन्दोलन के दमन के विरुद्ध थे। राष्ट्रीय जागरण के इस युग में भोले-भाले गरीबों पर आतंकवादी शासन अथवा जंगल के कानून के विरुद्ध थे। साधारणतया इन्हीं विषयों पर प्रेमचन्द अपनी राजनैतिक कहानियाँ लिखा करते थे।

प्रेमचन्द राजपूतों की कहानियों से बहुत प्रभावित थे। वे उनकी वीरता तथा देशभक्ति की प्रशंसा करते थे। उन्होंने ऐसी बहुत-सी कहानियाँ लिखीं जिनमें प्राचीनकाल की राजपूत वीरांगनाओं के शौर्य एवं त्याग के भाव का उल्लेख है। प्रकाशित होने पर इन कहानियों की प्रत्येक क्षेत्र में बड़ी प्रशंसा हुई है।

रानी सारन्धा धसान के किले के अनर्घसिंह की बहिन थी। कभी-कभी जब उसका पति विजय की आशा त्याग देता, तो वह इन शब्दों से उसको प्रोत्साहन देती :

"प्राणनाथ मैं खूब जानती हूँ कि मंजिल दुश्वार है और हमें अपने सिपाहियों का खून पानी की तरह बहाना पड़ेगा। मगर हम अपना खून बहायेंगे, अपने जांबाजों के सर कटायेंगे और चम्बल पर लाशों का घाट तैयार कर देंगे। यकीन मानिये जब तक चम्बल की धारा बहती रहेगी, हमारे सर फरोशों के खून के कतरे लाल बन-बनकर दुरख्शा रहेंगे और जब तक बुंदेलों का एक नाम लेवा भी जिन्दा रहेगा यह खून उसके माथे पर केसर का तिलक बन कर चमकेगा।"

यह कहानी उतनी महत्वपूर्ण नहीं है जितनी कि उसकी प्रेरक शक्ति जिसने प्रेमचन्द को रानी सारन्धा कहानी लिखने को प्रेरित किया। सारन्धा ने ऐसा व्यवहार किया जो प्राचीनकाल की राजपूत स्त्रियों के गौरव के अनुकूल था।

अन्त में हम '**राजपूत की बेटी**' की समीक्षा करते हैं। प्रभा एक राजपूत कन्या है। उसकी सगाई मुन्द्रा के राजकुमार से तय हुई थी। बरात के दिन राजा भोजराज रनछोर मन्दिर में रानी प्रभा के सौन्दर्य को देख कर अवाक् हो गया। वह उसे अपने रहने के स्थान पर ले गया। अपने पिता तथा अन्य सम्बन्धियों का रक्तपात बचाने के लिए उसने अपने को समर्पित तो कर दिया, परन्तु उसने मुन्द्रा के राजकुमार को अपना पति मान लिया था इसलिए उसने राजा भोजराज को अपने साथ प्रेम प्रदर्शन करने का प्रोत्साहन कभी न दिया।

एक दिन मुन्द्रा का राजकुमार किसी भांति उस कमरे में पहुँच गया जहाँ प्रभा लेटी हुई थी। वह उसे ले जाना चाहता था किन्तु अपने पति का रक्त-पात बचाने के लिए उसने उसके साथ जाना अस्वीकार कर दिया। इन सबसे

महल में कुछ आहट मिल गई । राजा भोजराज प्रभा के कमरे में आ गया । दोनों ने अपनी तलवारें खींच लीं ।

"राजकुमार ने ऐंठ कर राना पर तलवार चलाई । राना तलवारबाजी में यकताये रोजगार थे । वार खाली देख कर राजकुमार की तरफ झपटे । दफअतन प्रभा, जो एक सकते के आलम में दीवार से चिपटी खड़ी थी, बिजली की तरह कौंद कर राजकुमार के सामने खड़ी हो गई । राना वार कर चुके थे । तलवार का पूरा हाथ उसके शाने पर पड़ा और सीने तक चला गया । खून का फव्वारा छूटने लगा । राना ने एक आहे सर्द भरी और तलवार हाथ से फेंक गिरती हुई प्रभा को सँभाल लिया ।"

राजकुमारों के इस युद्ध में प्रभा ने अपने पति को बचा लिया और अपने जीवन का अन्त कर दिया ।

यह प्रेमचन्द की शुद्ध आदर्शवादी भावना ही थी जिसने उन्हें 'रानी सारन्धा', 'राजपूत की बेटी', 'राजा हर्दोवल' आदि कहानियाँ लिखने की प्रेरणा दी । जहाँ तक आख्यायिका शिल्प का सम्बन्ध है ये कहानियाँ निर्दोष हैं । भाषा या शैली भी विषय के अनुरूप है । भारतवर्ष के इतिहास ने हम में यह भावना उत्पन्न कर दी है कि राजपूत बड़े वीर होते हैं या वचन पालन करने में अपना सर्वस्व बलिदान कर देते हैं । इसी आशय में 'राजपूत की बेटी' कहानी हमारे ऊपर प्रभाव डालती है । प्रेमचन्द के हृदय में राजपूतों की वीरता के प्रति बड़ा आदर था । इसीलिए उन्होंने राजपूतों की वीरता को अपनी कहानियों के विषय के रूप में चुना । किसी यथार्थ की अपेक्षा वीरतापूर्ण कार्यों के कारण ही ये कहानियाँ हमें अधिक प्रभावित करती हैं । यहाँ यथार्थवाद से वही आशय है जो साधारण बोलचाल में होता है । आज के युग में जीवन की दशाओं में परिवर्तन हो गया है । उत्पादन तथा वितरण के साधनों में क्रांतिकारी परिवर्तन हो गए हैं, इसलिए पाठक उनमें यथार्थवाद के अभाव के कारण पूर्ण रूप से उनका गुण ग्रहण नहीं कर पाता । हम जानते हैं कि हम में से अधिकांश लोग वीर नहीं हैं, फिर भी हमारे व्यवहार के नियम भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में कार्य के भिन्न-भिन्न साधनों की व्यवस्था देते हैं, जोकि राजपूतों के शौर्यपूर्ण युग में दूसरे रूप से कायरता होती । वीरता के युग की परिस्थितियाँ आज के समाज की परिस्थितियों से सर्वथा भिन्न थीं । यही कारण है कि ऐसी कहानियाँ केवल वीरता के लिए ही पसन्द की जाती हैं ।

जीवन के विभिन्न पक्षों से सम्बन्ध रखने वाली प्रेमचन्द की बहुत-सी

कहानियों की समीक्षा करने के उपरान्त यह सम्भव है कि हम उनके विषय, वस्तु-तथा कला शिल्प के सम्बन्ध में कुछ निष्कर्ष निकालें। प्रेमचन्द को सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक विषयों पर लिखने में आनन्द आता था। इसमें सन्देह नहीं कि सामाजिक जीवन की समस्याओं का उनका अध्ययन विश्लेषणात्मक था। अतएव उनकी बहुत-सी कहानियों पर उनके सामाजिक ज्ञान की छाप है। 'जाद ए राह', 'दूध की कीमत', 'सवा सेर गेहूँ' अथवा 'कफ़न' सामाजिक दुखान्त लघु कथाएँ हैं। वे हमारे शरीर के रोम-रोम को हिला देती हैं। उनका मनोवैज्ञानिक अध्ययन सेक्स की समस्याओं पर या किसी व्यक्ति की विचित्रताओं पर केन्द्रित नहीं था। सम्भवतः वे एक समाजशास्त्रवेत्ता के दृष्टिकोण से मनोविज्ञान तक पहुँचना चाहते थे। उनके मनोवैज्ञानिक प्रयासों का लक्ष्य था जीवन को अधिक सुखमय बनाना अर्थात् पराजयवाद, पलायन, उदासी या निराशा आदि प्रवृत्तियों से लड़ा जाय और जीवन के समस्त अवसरों का आनन्द उठाया जाय। उनके राजनीतिक विषय हमें कार्य के क्षेत्र में अधिक दूर तक नहीं ले जाते। वे हमें इस भावना से नहीं भरते कि हम समाज के वर्तमान सामाजिक ढाँचे को तोड़ डालें और उसके स्थान पर एक नये ढाँचे की रचना करें। उनमें बहुत कुछ एक ऐतिहासिक महत्व है जोकि वर्तमान संघर्ष के युग के विद्यार्थी पर कोई विशेष प्रभाव नहीं डालता। किन्तु तो भी अपने ढङ्ग में उस समय के राजनीतिक जीवन का चित्रण करने वाली इन लघु कथाओं में उस युग के लोगों की आकांक्षाओं या भावों और देश के राजनीतिक आन्दोलनों के महान ज्ञान का परिचय भलीभाँति मिलता है। वे उनकी गरीबी, वेश्यावृत्ति, बेकारी तथा अन्य ऐसी बहुत-सी समस्याओं के कारण जानते हैं किन्तु वे उस प्रणाली के आमूल परिवर्तन का उपदेश देने से परांगमुख या उदासीन हैं जिसके कारण समाज में ये दोष विद्यमान हैं।

संक्षेप में वे एक क्रान्तिकारी की भावनाओं से ओतप्रोत नहीं हैं। उनमें केवल उन वीरों के प्रति सम्मान प्रकट किया गया है जिन्होंने स्वतन्त्रता के मार्ग में अपने प्राण गँवाए हैं। उनकी राजनीतिक कहानियाँ अपने देश के प्रति उसी सीमा तक अभिमान व्यक्त करती हैं जो उस समय के राजनीतिक आन्दोलनों में दृष्टिगत होता था।

प्रेमचन्द की 'रानी सारन्धा', 'राजपूत की बेटी' आदि कहानियाँ उर्दू साहित्य के लिए बिल्कुल नई हैं। वे हमें उस त्याग का पाठ पढ़ाती हैं जोकि भारतीय स्वतन्त्रता को प्राप्त करने के लिए अत्यन्त आवश्यक था। यह कहा-

नियाँ केवल स्त्रियों के लिए हैं । भारतीय स्त्रियों को यह अनुभव करना चाहिए कि गौरव के साथ भारतीय स्वतंत्रता की सेवा किस प्रकार की जाय ।

'सत्याग्रह', 'बड़े बाबू' हास्य रस की ऐसी सुन्दर कहानियाँ हैं जो साथ ही साथ हमारे सामाजिक और राजनैतिक जीवन पर चुभते हुए व्यंग्य चित्र भी हैं ।

उनको कहानियाँ सरल कथावस्तु के लिए प्रसिद्ध हैं । कहानी के ताने-बाने में विषयवस्तु बड़ी सुन्दरता से गुंथी हुई है । जहाँ उद्देश्य से सहमत न हों वहाँ भी कहानी के निर्वाह अथवा कहने के ढङ्ग की सराहना किए बिना न रहेंगे ।

घटनाएँ, कथोपकथन तथा कथा का वर्णन विषयवस्तु के अत्यन्त अनुकूल हैं जो पाठक के मस्तिष्क पर प्रभाव के पूर्ण संकलन की छाप छोड़ते हैं । न तो उनमें भावुकता का उद्गार है और न उनमें चमत्कारपूर्ण शैली के प्रदर्शन का जागरूक प्रयत्न । इस बात में प्रेमचन्द की आख्यायिकाएँ भलीभांति लिखे हुए लेखों के बहुत समीप हैं । जिस प्रकार एक भलीभांति लिखा हुआ लेख या निबंध हमें प्रभाव के संकलन का पूर्ण आभास देता है उसी प्रकार प्रेमचन्द की लगभग सभी कहानियाँ इस विशिष्ट गुण का प्रदर्शन करती हैं ।

उनको व्यंजना निश्चित तथा स्पष्ट है । बहुधा उनके शब्द संकेतात्मक अथवा विशिष्ट अर्थ के सूचक होते हैं । फिर भी प्रेमचन्द ने संकेत की कला का अधिक प्रयोग नहीं किया । आधुनिक कहानियों की यह महत्वपूर्ण विशेषता है कि वे संकेतात्मक होती हैं । यद्यपि प्रेमचन्द व्यंजना में कभी-कभी असफल हो जाते हैं तो भी उनके विशिष्ट शब्दों का प्रयोग बड़ा सांकेतिक है ।

प्रेमचन्द की कहानियाँ मस्तिष्क तथा हृदय दोनों पर प्रभाव डालती हैं । कभी वे अत्यन्त चित्रात्मक और कभी करुणाजनक हैं परन्तु उनमें ऐन्द्रियता की भावना तो शायद ही मिले । उनका करुण रस बड़ा मर्मस्पर्शी है । 'जाद ए राह' ऐसी कहानी है जिसे कोई दुबारा पढ़ना न चाहेगा । यह इतनी करुणा-जनक है कि मनुष्य का स्वभाव इसके विरुद्ध विद्रोह करता है ।

अपने सूक्ष्म कला-शिल्प के कारण आख्यायिका अपनी एक विशिष्ट सीमा है । उपन्यास की अपेक्षा इसका क्षेत्र संकुचित तथा सीमित है । उपन्यास का क्षेत्र विस्तृत होता है और यह समाज का सर्वाङ्गपूर्ण चित्र खींच सकता है अथवा एक ही उपन्यास में दो या तीन पीढ़ियों तक का चित्रण हो सकता है । इस प्रकार एक अच्छा उपन्यास लेखक जीवन के भिन्न-भिन्न अंगों के प्राय: प्रत्येक पक्ष का स्पर्श करता है जैसे साहित्य, प्रेम, समाजशास्त्र, राजनीति, धर्म आदि । उसकी शैली लेखक के व्यक्तित्व को प्रकट करती है । अतएव एक

अच्छा उपन्यास उसके लेखक के विचार और उसकी आलोचना तथा रुचि एवं अरुचि सबके विषय में हमारी जानकारी कराता है।

इसके प्रतिकूल कहानी का क्षेत्र बहुत संकुचित होता है। यह चरित्र या पात्र के जीवन के केवल एक ही पक्ष पर प्रकाश डालती है।

अतएव एक आख्यायिका से हम जीवन की भिन्न-भिन्न समस्याओं पर लेखक के मत का पता नहीं लगा सकते। प्रेमचन्द की लिखी हुई कहानियों के विषय में यह बात उतनी ही सत्य है जितनी उन अन्य लेखकों के विषय में जिन्होंने उपन्यास और कहानियाँ दोनों लिखी हैं।

९ | उपसंहार

उपसंहार

□

इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्रेमचन्द एक बहुफलित लेखक और एक अत्यन्त पठनशील व्यक्ति थे। उन्होंने उर्दू में कुल बारह उपन्यास लिखे और एक सौ बयासी कहानियाँ प्रकाशित करवाई हैं। उन्होंने 'रूठी रानी' नाम से एक लम्बी कहानी भी लिखने का प्रयास किया। उपन्यासों और कहानियों के अतिरिक्त 'रूहानी शादी' और 'कर्बला' नाम के दो नाटक भी लिखे। भारतीय जीवन के विविध विषयों पर प्रेमचन्द ने विभिन्न उर्दू पत्रिकाओं में बहुत-से लेख लिखे। उनके कुछ लेख, जैसे (क) रेलों की तारीख़,[1] (ख) ज़राती तरक्की क्योंकर हो सकती[2] और (ग) महाजनी तमद्दुन[3] अत्यन्त उत्कृष्ट हैं। प्रेमचन्द ने महापुरुषों के जीवन चरित्र भी लिखे हैं, जो 'बाकमालों के दर्शन' के नाम से पुस्तक रूप में प्रकाशित हुए हैं। 'राम चर्चा' नाम से उन्होंने रामायण की कथा भी लिखी है। स्कूली बच्चों के लिए भी उन्होंने बहुत-सी किताबें लिखी हैं।

प्रेमचन्द केवल उर्दू में ही नहीं वरन् हिन्दी में भी लिखते थे। उनके सभी उपन्यास उर्दू-हिन्दी दोनों ही भाषाओं में उपलब्ध हैं। हिन्दी में लिखी हुई उनकी कहानियों की ठीक-ठीक संख्या निर्धारित करना कठिन है और यह हमारे विषय के अन्तर्गत है भी नहीं। फिर भी यह निश्चित है कि प्रेमचन्द ने उर्दू की अपेक्षा हिन्दी में अधिक कहानियाँ लिखी हैं। प्रेमचन्द के 'संग्राम' और 'प्रेम की वेदी' नाम के दो नाटक, 'महात्मा शेख सादी', 'दुर्गादास' तथा 'कलम, तलवार और त्याग' नाम के तीन जीवन चरित्र और बहुत-से अनुवाद हिन्दी में मिलते हैं। प्रेमचन्द के निबन्ध हिन्दी में 'कुछ विचार' नाम से दो जिल्दों में प्रकाशित हुए हैं। प्रेमचन्द जैसे महान् लेखक की सम्पूर्ण कृतियों के साथ पूर्ण न्याय करना कठिन कार्य है। ये कृतियाँ प्रेमचन्द की पैंतीस वर्ष की अनवरत साहित्य सेवा का ही फल हैं।

प्रेमचन्द की इतनी अधिक स्वरचित और अनुवादित कृतियाँ हैं कि पाठक का ध्यान स्वभावतः उनकी कृतियों के विषय और ध्येय की ओर उन्मुख हो जाता

---

१. जमाना (कानपुर), जनवरी १९१५;

२. वही, मई १९१८ में प्रकाशित;

३. साक़ी, (देहली);

है । प्रेमचन्द की कृतियों में जीवन दर्शन की खोज करते समय हम अनुभव करते हैं कि भारतीय जीवन के सामाजिक, नैतिक और राजनीतिक लक्षणों और प्रवृत्तियों का उन्होंने गहन अध्ययन और मनन किया और उनके प्रति अपने भावों को व्यक्त भी किया है । साधारण जन और दैनिक जीवन की समस्याओं के प्रति उनमें इतना जबरदस्त मोह और प्रेम है कि उनके अनुवादों में भी उनके मोह और प्रेम की यह प्रवृत्ति परिलक्षित होती है । उन्होंने अनुवादों के लिए बरनार्ड शा, गाल्सवर्दी, टाल्स्टाय और अनातोले फ्रांस को चुना । इन सभी लेखकों ने किसी न किसी रूप में मानवतावादी पक्ष को सुदृढ़ किया है ।

प्रेमचन्द का जीवन दर्शन कोई ऐसी मौलिक विचारधारा नहीं है जिस पर उनके मनोनुकूल समाज का ढाँचा आधारित हो सके फिर भी अपने दृष्टिकोण की विशालता और विचारों की दृढ़ता द्वारा उन्होंने भावों और संस्कृति के ऐसे क्रम को चुना है जो उनके जीवन दर्शन का बोध कराता है । अपने इसी जीवन दर्शन द्वारा वे जीवन के विकास और उसके महत्वपूर्ण अंगों को देख सके और उनकी व्याख्या कर सके ।

मानवता के प्रति निपट प्रेम और सामाजिक जीवन के दोषों को उद्घाटित करने के लिए ही प्रेमचन्द ने लेखन प्रारम्भ किया । उनके मानवतावाद की गहरी जड़ मानव जाति के प्रति श्रेष्ठतर भावनाओं में ही थी । यह निश्चित है कि अपनी अन्तःप्रेरित आकांक्षाओं की पूर्ति की अपेक्षा श्रेष्ठतर भावनाओं के आनन्द में ही महान् सुख है । यह केवल प्रासंगिक ही नहीं कि निर्धन व्यक्तियों के हृदय मानव के प्रति करुणाभाव से ओतप्रोत होते हैं । जन्मजात अपराधियों को छोड़कर प्रत्येक मनुष्य जन्म से ही सज्जन होता है । भारतीय ग्रामीण जीवन की दशाओं ने प्रेमचन्द के मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव डाला । उन्होंने भोले-भाले किसानों के विरुद्ध ज़मींदारों की घृणित युक्तियों के प्रति तथा गाँव के सामाजिक जीवन के दोषों के प्रति अपना आक्रोश प्रकट किया है । यह कहना अत्युक्ति न होगी कि भारतीय सामाजिक जीवन के प्रत्येक विभाग को पूर्ण सुधार की आवश्यकता थी । वह बिल्कुल भीतरी तहों तक सड़ चुका था । उसकी दशा अत्यन्त दयनीय और अत्यधिक दर्दनाक थी । विदेशी साम्राज्यवादी शोषण तथा सामन्तशाही और पूँजीवादी व्यवस्था की समस्त विभीषिकाओं ने मिलकर साधारण जनता के जीवन को अत्यन्त दुःखपूर्ण बना दिया था । प्रेमचन्द ने भारतीय गाँवों की इस दयनीय निर्धनता के सच्चे चित्र अंकित किए हैं ।

भारतीय किसान भूमि को जोतता था, बीज बोता था परन्तु अपना खलिहान

स्वयं नहीं उठा पाता था क्योंकि ज़मींदार के कारिन्दे अथवा महाजन उसके परिश्रम के फल को हड़प लेने के लिए पहुँच जाते थे। गाँवों में सूदखोरों ने भी ज़ुल्म ढा रक्खा था। भारतीय किसान अभावों के मध्य में ही जीवन बिताता था। प्रेमचन्द के उपन्यासों और कहानियों में किसानों के घरों के अनेकानेक चित्र देखे जा सकते हैं। उनकी रचनाओं में अनेक स्थलों पर किसान के पास न धातु के बर्तन हैं और न विस्तर अथवा चारपाई ही। दिसम्बर की भयंकर शीत और हिम शीतल पवन के समय भी उसमें ऊनी वस्त्र पहनने की सामर्थ्य नहीं। वह अर्धनग्न रहता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से देहातों की आर्थिक अवस्था में अब काफी सुधार हुआ है। ज़मींदारी उन्मूलन कानून पास होने से भी किसानों की दशा में पर्याप्त सुधार हुआ है। अब भारतीय ग्रामवासी प्रेमचन्द के समय की अपेक्षा कहीं अधिक प्रसन्न हैं।

निम्न मध्य वर्ग की दशा भी बहुत बुरी थी। इस वर्ग की मुसीबतें भी आर्थिक थीं। भारत में विवाह बड़ा मँहगा पड़ता है। लोगों को अपनी पुत्री के विवाह के लिए हजारों रुपया कर्ज लेना पड़ता है। प्रेमचन्द हिन्दू संयुक्त परिवार पद्धति को पसन्द करते थे। हमारे यहाँ विधवाओं की समस्या भी बड़ी दयनीय रही है। प्रेमचन्द के समय में वेतन की दरें जीवनयापन के स्तर से बहुत नीचे थीं और वर्ग संघर्ष होना आरम्भ हो गया था। इन समस्याओं का चित्रण उनकी रचनाओं में हुआ है।

इन समस्याओं का निवारण करके प्रेमचन्द को एक नये समाज का निर्माण करना था, एक ऐसे समाज का जिसमें किसी प्रकार का शोषण, घृणा अथवा निर्धनता न हो। देश का असन्तुलित सामाजिक जीवन उनके मस्तिष्क को पीड़ा पहुँचाता था। इस प्रकार अपने पाठकों के समक्ष वे एक सुधारवादी के रूप में भी आते हैं। अपने साहित्यिक जीवन के प्रारम्भिक भाग में जीवन के प्रति सुधारवादी दृष्टिकोण की ओर वे आकर्षित हुए। प्रेमचन्द अपने सम्पूर्ण जीवन भर एक सुधारवादी और क्रांतिकारी दृष्टिकोण के मध्य संघर्ष करते रहे। वे समाजवाद के आह्वान से भी अपने को न रोक सके। वे सब को समान अवसर देने के पक्षपाती थे। इस देश में अपने समय के दूसरे बुद्धिवादियों के समान प्रेमचन्द भी समाजवाद (जो एक विदेशी विचारधारा मानी जाती थी) की ओर आकर्षित हुए। उनका समाजवाद कुछ तो बौद्धिक विश्वास और कुछ उनकी कोमल भावुकतापर्ण प्रकृति पर आश्रित था। सबको समान अवसर देने

का उनका सिद्धान्त भी उनके आदर्शवादी स्वभाव के आधार पर निरूपित किया जा सकता है ।

प्रेमचन्द पूंजीवाद के विरुद्ध मुख्य रूप से इसलिए प्रतीत होते हैं कि उसका मानव-जीवन पर एक बड़ा अनैतिक अथवा पतनपूर्ण प्रभाव होता है न केवल इसलिए कि उसमें आर्थिक शोषण होता है । वह भारत में वृहत् पैमाने के औद्योगीकरण का विरोध करते हैं क्योंकि उनका विश्वास है कि देश में घरेलू उद्योगों से ही आर्थिक आत्मनिर्भरता आ सकती है । वह श्रमिकों के दुःख को दूर करने के साधन के रूप में हड़ताल के पक्षपाती हैं ।

देश में समय-समय पर होने वाले राजनीतिक आन्दोलनों ने नीति के रूप में उन्हें अहिंसा का अनुयायी बना दिया । वे एक मान्यता के रूप में अहिंसा पर विश्वास नहीं करते थे । प्रेमचन्द क्रान्ति के विरुद्ध थे, उनकी आस्था विकास पर थी । प्रेमचन्द के राजनीतिक विचार एक शब्द द्वारा अच्छी तरह व्यक्त किए जा सकते हैं, जो आजकल काफी प्रचलित है और जिसे 'गांधीवादी समाजवाद' कहते हैं । प्रेमचन्द प्रारम्भ के लेखकों में पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं में समाजवादी पक्ष ग्रहण किया है । इसमें कोई सन्देह नहीं कि अपने आर्थिक स्वरूप में उनका रामराज्य उनके समय के विचारों से बहुत आगे है । यह निश्चित रूप से कहना सम्भव नहीं कि वह उनका मौलिक विचार है, कुछ भी हो साहित्य के क्षेत्र में उसको व्यक्त करने वाले पहले व्यक्ति प्रेमचन्द ही थे । यह महात्मा गांधी के नाम के साथ भी जुड़ा हुआ है जिन्होंने अपने लेखों द्वारा उसे प्रचारित किया ।

प्रेमचन्द की रामराज्य सम्बन्धी धारणा की जड़ें हिन्दू पुनरुत्थान के विचारों में तथा मानव कल्याण की भावना से ओतप्रोत देश के प्रजातन्त्रीय आग्रह में प्रतीत होती हैं । प्रेमचन्द अपने जीवन के अन्तिम भाग में भी रामराज्य पर विश्वास करते थे अथवा नहीं इस सम्बन्ध में कुछ कहा नहीं जा सकता, क्योंकि प्रेमाश्रम (गोशए-आफ़ियत) के पश्चात् उस उत्साह और भावावेश के साथ उसकी चर्चा हम कहीं नहीं पाते । इस कथित रामराज्य का प्रजातन्त्रीय तत्व उसके धार्मिक रंग को छोड़ कर उनके विचारों के मुख्य लक्षणों में सदैव ही विद्यमान रहा ।

जिसने उनकी सभी कृतियों का अध्ययन किया है वह भी स्पष्ट रूप से नहीं कह सकता कि प्रेमचन्द औद्योगीकरण के पक्ष में थे अथवा गृह उद्योगों के, पूंजीवाद के पोषक थे अथवा उसके विनाश के पक्ष में, वैज्ञानिक समाजवाद के

पक्ष में थे अथवा रामराज्य के, जमींदारी उन्मूलन के पक्ष में थे अथवा सामन्त-वादी जमींदारों के केवल हृदय परिवर्तन के पक्ष में। अवस्था बढ़ने के साथ-साथ उनके मस्तिष्क में यह संघर्ष अधिकाधिक तीव्रतर होता गया। इस रूप में प्रेमचन्द धार्मिक पुनरुत्थान, आर्थिक पुर्नानिर्धारण और राजनीतिक स्वतन्त्रता के संघर्ष के दौर से गुजरते इस देश के दूसरे राजनीतिक चिन्तकों के समान ही हैं।

भारत का धार्मिक वातावरण रूढ़ियों और पाखण्ड से भरा हुआ था। अपने बचपन के प्रारम्भिक दिनों की कट्टर धार्मिकता के प्रभावों को हटाना कठिन है। प्रेमचन्द भी यही कहते हैं। प्रारम्भ में उनका विश्वास एक सर्वोच्च देवता पर था, चिन्तन के परिणाम स्वरूप नहीं वरन् साधारणतया परम्परागत विश्वास के कारण। वह विश्वास बाद में नष्ट हो गया। वास्तव में, संसार के पीछे कोई शक्ति अवश्य है, परन्तु वे यह नहीं समझते थे कि उसे मनुष्य के कार्यों से कोई प्रयोजन है, जैसे उसे चीटियों, मक्खियों या मच्छरों के कार्यों से कोई प्रयोजन नहीं है। वह यह भी मानते थे कि अपने को जो महत्व हमने स्वयं दे रखा है वह न्यायानुकूल नहीं है।[1]

प्रेमचन्द ईश्वर के परम्परित स्वरूप पर विश्वास नहीं करते। वह ईश्वर की प्राप्ति एक वैज्ञानिक ढङ्ग से करना चाहते हैं। वह ईश्वर को ऊर्जा, विद्युत कणों और अत्यन्त सूक्ष्म वैद्युत्तिक रूप में मानते थे। उनके अनुसार ईश्वर को हमारे कष्ट अथवा आनन्द से कोई प्रयोजन नहीं।

इस बात का विश्लेषण बड़ा रोचक होगा कि प्रेमचन्द बुद्धिवादी कैसे बन गए। उनके स्वकथनानुसार अपने साहित्यिक जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में वे एक भाग्यवादी थे।[2] यह भाग्यवाद उनकी परम्पराओं में पालित-पोषित होने का परिणाम था। प्रेमचन्द ऐसे व्यक्ति थे जो स्वतन्त्र विचार पर विश्वास करते थे और एक समय ऐसा आया जब वे अनीश्वरवादी हो गए। इस तथ्य का उल्लेख श्रीमती शिवरानी देवी ने 'प्रेमचन्द घर में' नामक पुस्तक में किया है।[3]

---

१. डॉ० इन्द्रनाथ मदान को प्रेमचन्द के लिखे एक पत्र (दि० २६ दिसम्बर १६३४) का आशय;

२. जमाना, प्रेमचन्द अंक, पृ० ६;

३. शिवरानी देवी, प्रेमचन्द घर में, 'आप (प्रेमचन्द) भले ही न मानें दुनिया थोड़े ही नास्तिक हो जायेगी', 'भगवान मन का भूत है जो इंसान को कमजोर कर देता है।' 'स्वावलम्ब ही मनुष्य की दुनिया है', 'अंधविश्वास करने से अक्ल भी मारी जाती है।'

डॉ० इन्द्रनाथ मदान को लिखा हुआ प्रेमचन्द का पत्र २६ दिसम्बर सन् १६३४ का है। सन् १६३४ में प्रेमचन्द की आयु का चौवनवां वर्ष चल रहा था। यह एक विरोधाभास ही है कि ऐसी प्रौढ़ अवस्था में प्रेमचन्द, जो पहले अनीश्वरवादी थे, एक पूर्ण बुद्धिवादी बन गए। वह ईश्वर का अनुभव विज्ञान द्वारा करना चाहते थे।

इससे स्वभावतः हम यही निष्कर्ष निकालते हैं कि प्रेमचन्द का विश्वास था कि 'मनुष्य ही अपने भाग्य का निर्माता है' और यही कारण है कि प्रेमचन्द की कृतियों में कार्य और संघर्ष पर अधिक बल दिया गया है। चूँकि प्रेमचन्द एक बुद्धिवादी व्यक्ति थे अतः उनका जीवन के यथार्थ में प्रवेश उन व्यक्तियों से भिन्न था जो केवल हृदय की प्रेरणा अथवा अन्तर्ज्ञान द्वारा अनुशासित होते हैं। उन्होंने आदर्शवाद और यथार्थवाद के सुखद समन्वय का ही समर्थन किया है। उनका विश्वास था कि यथार्थवाद हमारी दुर्बलताओं, हमारे दोषों और हमारी अस्वस्थता का सच्चा चित्र है। यह हमें निराशावादी बनाकर अंधकार की ओर ले जाता है। जीवन के लिए सहायक आदर्शवाद ही है। यह हमें घुटनशील अंधकार को छोड़कर बाग की ताजी हवा में जाने की प्रेरणा देता है। यह मनुष्य के उत्तम गुणों को प्रकाशित करता है और उसमें विश्वास और आस्था की सृष्टि करता है। तथापि आदर्शवाद में जीवन की वास्तविकताओं से दूर हो जाने का भय भी है। शैली के समान शुद्ध आदर्शवादी भी समाज के लिए उपयुक्त नहीं होता।[1]

आदर्शवाद हमें लिखने की सामग्री देता है और यथार्थवाद हमें गम्भीर यथातथ्य और अपनी ओर आकर्षित करने वाला बना देता है। जो आदर्शवाद और यथार्थवाद का एक सुन्दर समन्वय प्रस्तुत करता है वस्तुतः वही सफल लेखक है।

प्रेमचन्द ने आदर्शवाद और यथार्थवाद के संयोग सम्बन्धी अपना विचार बड़ी सुन्दरता से प्रस्तुत शब्दों में व्यक्त किया है :

'यह सत्य है कि गौरैया आकाश में बहुत ऊँचे उड़ जाती है, परन्तु अपने भोजन के लिए वह पृथ्वी पर उतरती है।' श्री डी० पी० मुकर्जी लिखते हैं, 'इस प्रकार का दृष्टिकोण प्रस्तुत करने वाली विषय सामग्री ने लोगों को

---

१. अप्रैल १६३६ में लखनऊ में प्रथम 'प्रगतिशील लेखक सम्मेलन' के अवसर पर प्रेमचन्द का उद्‌घाटन भाषण।

विशेषतया प्रेमचन्द और शरतचन्द्र पर यथार्थवादी मुहर लगाने के लिए प्रेरित किया । हाँ, यदि इन्हें कोई हिन्दी और बंगाली साहित्य के प्रारम्भिक प्रकरण में रखे तो इसे यथार्थवादी कहा जा सकता है, परन्तु यदि यथार्थवाद का अर्थ इससे कुछ अधिक और है, जैसा जोला ने बहुत वर्ष पहले इसे वैज्ञानिक प्रकृति कहा है अथवा लेनिन ने इसे इतिहास की चेतना कहा है, तो प्रेमचन्द और शरतचन्द्र चटर्जी यथार्थवादी नहीं हैं ।'[1]

इस प्रबन्ध का विषय शरतचन्द्र चटर्जी से सम्बन्धित नहीं है अतः हम केवल प्रेमचन्द तक ही अपने को सीमित रखते हैं । जहाँ साहित्य ऐतिहासिक क्रम के अत्यन्त निकट आता है उस दृष्टिकोण से टाल्स्टाय के 'वार एण्ड पीस' के समान प्रेमचन्द के गोदान में भी साहित्य इतिहास-क्रम के अत्यन्त निकट आता है । तो भी, उपन्यास अथवा आधुनिक आख्यायिका जैसे साहित्य के अंग तर्कपूर्ण भौतिकबाद अथवा किसी अन्य ऐतिहासिक क्रम पर पूर्ण प्रबन्ध नहीं हो सकते । इसका कारण यह है कि कथा साहित्य के मुख्य विषय का निर्माण किसी एक व्यक्ति के आन्तरिक और बाह्य द्वन्द्वों द्वारा होता है, यद्यपि एक अकेला व्यक्ति सामाजिक रचना का एक अंग होता है । प्रेमचन्द के व्यक्ति अपने समय के एक 'टाइप' होते हैं । अतएव इन्हें 'अनैतिहासिक व्यक्तित्व' नहीं कहा जा सकता ।

चूंकि रचनात्मक साहित्य का उद्देश्य अपने समय के समाज के विचारों का चित्रण करना होता है, अतः एक लेखक को जीवन की उन समस्त प्रेरक शक्तियों से अपने को पूर्ण परिचित रखना पड़ता है, जिनके विषय में वह लिखता है । उसे ऐतिहासिक विज्ञान का विद्वान होने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वह न दार्शनिक है और न समाजविज्ञानी, वरन् वह एक साहित्यिक है जिसके साहित्यिक प्रयोजन में दर्शन और समाजविज्ञान सहायक होते हैं । उसे केवल समाज के जीवन से प्रयोजन है । प्रेमचन्द जो अपने समय की समस्याओं के लेखक थे अपने समय की प्रेरक शक्तियों को जानते और समझते थे । उन्हें इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या से कोई प्रयोजन नहीं था अतएव उपरोक्त कथन के अनुसार उनमें 'इतिहास की चेतना' नहीं थी । परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्रेमचन्द ने जीवन की स्थिरता और उसके क्रमिक रूपान्तर की रीतियों का सम्यक् निर्वाह किया है । गोदान और कफ़न इसके सर्वोत्तम उदाहरण हैं । प्रेमचन्द

---

१. डी० पी० मुकर्जी, माडर्न इन्डियन कल्चर;

को भारतवर्ष के १६१६ और १६३० के परिवर्तनशील काल का ज्ञान था। अतः यह कहना बिल्कुल तर्कसम्मत प्रतीत होता है कि प्रेमचन्द अपने समय के भारतीय जीवन की प्रेरक शक्तियों से पूर्णतया परिचित थे जिनके आधार पर उन्होंने अपने उपन्यास और कहानियाँ लिखीं। इसका तात्पर्य यह है कि साहित्य उनके लिए इतिहास प्रेरक शक्ति का व्यक्तीकरण था, जो केवल एक व्यक्ति ही नहीं वरन् समस्त समाज की भाग्यनिर्मात्री है।

प्रेमचन्द का विचार था कि साहित्य पर समाज के किसी एक वर्ग का ही एकाधिकार नहीं होना चाहिए। वह साहित्य की महत्ता का अनुभव राष्ट्रीय जागृति के क्षेत्र में करते थे। प्रत्येक देश के पुनरुत्थान में साहित्य का महान योगदान होता है। किसी समाज के सामाजिक जागरण को एक स्पष्ट आकार प्रदान करने वाले अत्यन्त मुख्य तत्वों में साहित्य एक मुख्य तत्व है। वह साहित्य की क्रान्तिकारी शक्तियों के प्रति जागरूक थे।

उत्पादन के साधनों के समान भाषा और साहित्य भी वर्ग उत्पीड़न से बुरी तरह पीड़ित रहे हैं। प्रेमचन्द को इसका ज्ञान था।

प्रेमचन्द लिखते हैं, ''वह साहित्यकार नहीं है जिसकी आत्मा स्थिर रहती है, जिसका हृदय क्रन्द नहीं कर उठता, जो सारे अन्यायों को समाप्त करने के लिए उठ खड़ा नहीं होता...ऐसी दशा में जहाँ केवल मुट्ठी भर आदमियों के ही हाथ में शक्ति है, जहाँ केवल धन की पूजा होती है, जहाँ केवल झूठी धार्मिक रूढ़ियों की पूर्ति ही मनुष्य को महत्ता प्रदान करती है और उसके दम्भ को सन्तुष्ट करती है, जहाँ पर बैंकों में जमा धन और सम्पत्ति ही सफलता मानी जाती है, जहाँ चतुर और धूर्त लोग ईमानदार काम-काजी व्यक्ति को तंग करते हैं, जहाँ मनुष्य के भेदभाव के कारण धर्म का पतन हो गया है, जहाँ दूसरे व्यक्ति की हत्या धार्मिक महत्ता मानी जाती है ऐसी स्थिति में क्या कोई ऐसा व्यक्ति है जो अपनी शान्ति स्थिर रख सकता है। यदि कोई ऐसा है तो वह साहित्यकार नहीं हो सकता।''[१]

इससे कौन इन्कार कर सकता है कि आज तक भी मनुष्य की सफलता उसके बैंक में जमा धन अथवा उसकी स्त्री के गहनों द्वारा आँकी जाती है। एक धनी व्यक्ति और अधिक सोना जमा करना चाहता है, जब कि एक निर्धन व्यक्ति को कठिनाई से दोनों समय भोजन मिल पाता है।

---

१. मदनगोपाल की प्रेमचन्द नामक पुस्तक में अनुवादित, पृ० ४६;

एक अच्छे लेखक के गुणों की परिभाषा बताते हुए प्रेमचन्द ने कहा था, "उन लोगों के लिए, जिनके पास धन और शक्ति है, साहित्य के मन्दिर में कोई स्थान नहीं। केवल उन्हीं श्रद्धालुओं के प्रवेश की आवश्यकता है जिनके पास सच्चे प्रेम से जलता हुआ संवेदनशील हृदय है। सच्ची सेवा हमें मानसिक सन्तोष प्रदान करती है और स्वयं यही हमारा पारितोषिक है।......हम समाज के अग्रदूत हैं, पताका ले चलने वाले हैं, सादा जीवन उच्च विचार ही हमारा ध्येय है। सच्चा कलाकार जीवन में स्वार्थी नहीं होता। उसे दिखावे की, बनावट की आवश्यकता नहीं, वह इनसे घृणा करता है।"

प्रेमचन्द की साहित्य सम्बन्धी धारणा सच्चे अर्थ में यथार्थवादी है। साहित्य को शिक्षितों का प्रिय व्यापार, उनके दम्भ को परितुष्ट करने का साधन अथवा उनकी अपनी दुर्बोध आकांक्षाओं के व्यक्त करने का माध्यम नहीं होना चाहिए। उसका एक लक्ष्य होना चाहिए। हमें आत्मा की उस अशान्ति और उस मानसिक सन्तोष की ओर ध्यान दे । चाहिए जिसके कारण प्रेमचन्द को यह कहना पड़ा, "कीर्ति और धन का मुझे लोभ नहीं। किसी भांति अपने जीवन-निर्वाह के लिए मुझे पर्याप्त मिल जाता है। इससे अधिक घर अथवा मोटर-कार के लिए मैं लालायित नहीं ...... हाँ अवश्य ही कुछ श्रेष्ठ पुस्तकों के लिखने की मेरी प्रबल आकांक्षा है। परन्तु उसका लक्ष्य भी स्वतन्त्रता प्राप्ति ही है ......इससे अधिक की लालसा मुझे नहीं है। देश की स्वतन्त्रता और साहित्य के लिए मैं कुछ न कुछ करता ही रहूँगा।"[1]

इसी उच्च आदर्श के कारण 'गोदान' जैसे उपन्यास और 'कफ़न' जैसी कहानी लिखने में प्रेमचन्द सफल हुए। कवि, उपन्यासकार अथवा कथाकार का लक्ष्य वासनात्मक रचना करना नहीं वरन् मनुष्य में श्रेष्ठ गुणों और सुन्दर भावों को जागृत करना होना चाहिए जो उसे उत्तम सामाजिक व्यवस्था की आकांक्षा के योग्य बना सके।

भाषा के सम्बन्ध में प्रेमचन्द के कुछ निश्चित विचार थे जो उनके राष्ट्रीयता के विकास और देश की उन्नति से सम्बन्धित विचारों से मेल खाते हैं। वह हिन्दुस्तानी के विवाद को एक दूसरे ही दृष्टिकोण से देखते हैं। वह इस समस्या को सदैव जनता के दृष्टिकोण से देखते हैं, क्योंकि सच्चे साहित्य को जनता की सेवा करनी चाहिए। और जनता के लिए केवल एक ही भाषा है हिन्दुस्तानी। उसके संस्कृतपरक और फारसीपरक रूप हिन्दी और उर्दू केवल उच्च वर्ग तक ही सीमित हैं;

अस्तु, प्रेमचन्द का दृढ़ विश्वास है कि यदि भारत की कोई राष्ट्रभाषा होगी तो वह हिन्दी और उर्दू के किसी मिश्रित रूप पर आधारित होगी। भारत की राष्ट्रभाषा निर्माण में प्रेमचन्द की देन को सीमाब अकबरावादी इन पंक्तियों में व्यक्त करते हैं :

यहाँ देखा कि दो दरिया हैं मौजों रवां दोनों,
नशेद अफरोज अफसाना फरोशो नगमाखां दोनों।
तफाउत है बहुत दोनों के अंदाजे रवानी में,
मगर है दखल दोनों को मिजाजे जिंदगानी में।।
चला वह सरफिरा मल्लाह दोनों के मिलाने में,
शिकस्ता किश्ती वा दरिया की हिम्मत आजमाने को।
भरा सागर कहीं से और कहीं से उसने पैमाना—
बनाया यक नया मौजों के सर पर अपना मयखाना।
मये दो आतिशा दो रंग की एक जाम में ढाली
तुरंग एक उसकी 'मस्ताना' थी और एक मौज मतवाली
पयामे सरखुशी देता रहा याराने साहिल को
सिखाई फितरते दरिया सुबुक साराने साहिल को।।

एक समय आएगा जब कि हिन्दू-मुस्लिम हिन्दुस्तानी भाषा को मानेंगे। हिन्दुस्तानी विचारों व संस्कृति का भण्डार हिन्दुस्तानी भाषा ही होगी और प्रेमचन्द की कृतियाँ इस भाषा को समृद्ध बनाने में सहायता करेंगी। हम लिपि के वादविवाद को स्वीकार नहीं करते और देवनागरी ही मान्य लिपि हो क्योंकि वह जनता को प्रिय है।

प्रेमचन्द ने सरल उर्दू में लिखा है। उनका शब्द भण्डार चित्रमय मगर गतिशील है। उनकी भाषा में गति और स्पष्टता है। जो कुछ उन्हें लिखना होता है, उसकी आत्मा में वे प्रविष्ट हो जाते हैं और इसी ने उनकी भाषा को स्वाभाविक बना दिया है।

ऋतुओं के सौन्दर्य का उनका वर्णन वास्तव में अत्यन्त श्रेष्ठ है :

"फागुन का महीना, अबीर और गुलाल से जमीन सुर्ख हो रही थी और फाग के पुरोजोश नगमे बेनियाज़ माशूकों के दिलों में तमन्ना और इश्तियाक की आग भड़का रहे थे। रबी ने खेतों में सुनहरा फर्श बिछा दिया था और खलिहान में खोशये जमीन के महल खड़े कर दिये थे। आसूदगी उस सुनहरे

फर्श पर इठलाती फिरती थी और फरागत उस सुनहरे महल में अपनी तानें अलाप रही थी।"[1]

यह भारत की वसन्त ऋतु का एक वर्णन है। इसी ऋतु में हिन्दू अपना प्रसिद्ध त्योहार होली मनाते हैं। होली महान आनन्द और उल्लास का पर्व है। त्योहार का यह वर्णन केवल चित्रमय ही नहीं वरन् इसमें साहित्यिक सौन्दर्य भी है। इसके शब्द नाचते हुए से प्रतीत होते हैं और उनकी ध्वनि केवल संगीतात्मक चेतना ही नहीं वरन् आनन्द की सृष्टि भी करती है।

मौसम का एक दूसरा वर्णन इस प्रकार है :

"फागुन अपनी झोली में नई जवानी की दौलत लेकर आ पहुँचा। आम के पेड़ दोनों हाथों से बौर की खुशबू बाँट रहे थे और कोयल आम की डालियों में छुपी हुई मुसूक़ी का गुप्तदान कर रही थी।"

भारतीय ऋतु का यह वर्णन प्रशंसनीय है। उर्दू साहित्य में कोई भी अन्य लेखक रंग, सौन्दर्य, सौरभ और ऐश्वर्ययुक्त भारतीय ऋतु की वास्तविक रमणीयता का चित्रण करने में इतना सफल नहीं हो सका। ऐसा प्रतीत होता है कि देहात में रहते हुए प्रेमचन्द ने इस ऋतु की आत्मा को आत्मसात कर लिया था। भारतीय ग्राम्य क्षेत्र का एक और चित्र अपने सौन्दर्य में निराला है :

"आज कई दिन के बाद तीसरे पहर सूरज देवता ने ज़मीन की फरियाद सुनी है और गोया मराक़बे से निकलकर उसे दुआयें दे रहे हैं, ज़मीन गोया आंचल फैलाये उनकी दुआओं को बटोर रही है।"

प्रस्तुत उद्धरण उत्तरी भारत के वर्षा के मौसम का सच्चा चित्र उपस्थित करता है। कई दिन तक लगातार घनघोर वर्षा होने के बाद सूर्य अपनी धूप से मानवता को कृतार्थ करता है।

अब हम जरा गंगा के तट पर तड़के का आनन्द लें। मनुष्य स्मरण करता है कि कभी वह प्रकृति का एक अंग था और अब इस मशीन-युग ने दोनों को पृथक कर दिया :

"गंगा किसी मरीज़ की तरह कोहरे की चादर ओढ़े कराह रही थी। आस-पास की तारीकी और गंगा में सिर्फ़ रवानी का फ़र्क था। यह रवां तारीकी

---

१. प्रेमपचीसी, भाग १, पृ० १६४;

थी। चारों तरफ ऐसी उदासी छायी हुई थी जो किसी वफ़ात के बाद घर पर छा जाती है।"

लेखक शोकमग्न है। उसकी चिन्ताग्रस्त और विषादपूर्ण चित्तवृत्ति का गंगा से बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है। एक हिन्दू, जिसकी अन्तिम राख गंगा के पवित्र जल में प्रवाहित की जाती है, बड़ा भाग्यशाली माना जाता है। गंगा का जल समस्त सांसारिक पापों को धोने वाला कहा जाता है। यह चित्र स्थिति के अत्यन्त अनुकूल है:

प्रेमचन्द यद्यपि कवि नहीं हैं तथापि उन्होंने नैसर्गिक सौन्दर्य का चित्रण एक प्रथम श्रेणी के कवि की प्रेरणा की सच्ची अन्तर्दृष्टि से किया है।

"शुमाली कोहिस्तानी सिलसिलों के बीच में एक छोटा हरा-भरा गाँव है। सामने गंगा किसी दोशीजा की तरह हँसती-नाचती चली जा रही है। गाँव के पीछे एक बूढ़ा पहाड़ किसी बूढ़े जोगी की तरह जटा बढ़ाये सियाह-मतीन खयाल में महो खड़ा है। यह मौजा गोया इसकी तिफली की याद है।"

वह जानते हैं कि रूपकों और उपमाओं द्वारा भाव कैसे व्यक्त किया जाता है। परन्तु वह इनका उपयोग स्थानीय रंग के अनुसार अथवा ग्रामीण परिपाटी के अनुसार करते हैं:

"यह वह ज़माना है जब चित्तौड़ में शीरीबयां मीराबाई तश्न-ए-कामाने मारफत को प्रेम के प्याले पिलाती थी। रनछोड़ के मन्दिर में जिस वक्त वह रूहानी सुरूर से मतवाली होकर अपनी दिलकशी में पाकीज़ा पदों को अलापती तो सुनने वाले मस्त हो जाते और मीरा की तरह बेखुदी के नशे में झूमने लगते। हर रोज़ शाम को यह रूहानी लुत्फ उठाने के लिए सारे चित्तौड़ के लोग इस तरह बेकरार होकर दौड़ते जैसे दिन भर की प्यासी गायें दूर से किसी नदी या सागर को देख कर उसकी तरफ भागती हैं। और उस चश्मे मारफत से सारे चित्तौड़ वाले ही शाद काम न होते थे बल्कि सारे राजपूताने की प्यासी ज़मीन उसके आबे रूह परवर से सेराब होती थी।"

यह सम्पूर्ण गद्य खंड सुन्दर है। यह भारतीय ग्राम समाज की एक विशिष्ट उपमा है। सन्ध्या के समय प्यासी गायों का नदी की ओर दौड़ना वास्तव में एक मनोरम दृश्य है। चित्तौड़ के लोगों का मीराबाई के पदों को सुनने के लिए रनछोड़ जी के मंदिर की ओर दौड़ने की तुलना प्यासी गायों से बड़ी सुन्दरता के साथ की गयी है।

कुछ आलोचकों ने कहा है कि प्रेमचन्द मुहावरेदार उर्दू नहीं लिखते।

परन्तु यह स्पष्ट है कि मुहावरेदार उर्दू उस काम के अनुपयुक्त है जो प्रेमचन्द ने अपने हाथ में लिया था। मुहावरेदार उर्दू, इस आशय में जैसा कि भाषा शुद्धिवादी विश्वास करते हैं, गाँव वालों अथवा गाँव के जीवन की आत्मा को व्यक्त करने में असफल रहती है। हमें मुंशी प्रेमचन्द से रतनलाल शरशार की भाषा की उम्मीद नहीं रखना चाहिए। प्रेमचन्द की भाषा ऐसी सरल होती है कि उत्तरी भारत के भीतरी भागों का एक देहाती भी उसे समझ सकता है। प्रेमचन्द के अभिव्यक्तीकरण का ढंग न तो शिथिल है और न उनके शब्द भंडार से ही उनकी क्रमहीन विचारधारा का आभास होता है।

प्रेमचन्द की शैली लचीली है, अतः इसकी वैज्ञानिक व्याख्या करना कठिन है। तथापि, यदि शैली का वैज्ञानिक अध्ययन करना है तो किसी विशेष लेखक के किसी विशेष प्रसंग को लेकर ही इसका अध्ययन किया जा सकता है।

कोई भी लेखक अपने वातावरण और परिस्थितियों से अलग नहीं है। उसका निर्माण शून्य से नहीं हुआ। जिस प्रकार एक शिशु अपना पहला पाठ अपनी माँ से सीखता है फिर घर से, स्कूल-कालेज और समाज से, उसी भाँति एक लेखक भी धीरे-धीरे सीखता है। कलम पकड़ने से प्रारम्भ करके वह अपनी लेखनी अत्यन्त स्वतन्त्रतापूर्वक चलाने लगता है। प्रत्येक लेखक सबसे पहले अपने किसी प्रिय लेखक की शैली का अनुकरण करने का प्रयत्न करता है। ऐसे लेखकों के भी उदाहरण हैं जो जीवन भर दूसरों का ही अनुकरण करते रहे। परन्तु वह जो जनता के लिए कुछ लिखता है, सदैव अपनी विषयवस्तु की तुष्टि के आधीन रहता है।

ऐसा बार-बार जोर देकर कहा जा चुका है कि प्रेमचन्द अत्यन्त पठनशील थे। समय-समय पर उन्होंने कहा है कि जो कुछ भी उन्हें मिला वह उन्होंने पढ़ा। वह हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी और फारसी जानते थे। प्रेमचन्द की सम्पूर्ण शैली को निर्माण करने वाले प्रभावों का विश्लेषण करने में हमारा कार्य और कठिन हो जाता है।

उर्दू साहित्य की गद्य शैलियों का पर्यवेक्षण भी अपनी एक रोचकता रखता है। उसका एक लम्बा इतिहास है। परन्तु इन पाँच महान लेखकों, सर सैयद अहमद खां, मौलाना हाली, मौलाना आजाद, मौलाना शिबली और डॉ० नजीर अहमद, की गद्य शैलियाँ प्राचीन परम्परा से तार्किक और बुद्धिवादी शैली अथवा भाषा की ओर प्रवर्तित हुईं। यह ज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र, जैसे समाजविज्ञान, राजनीति, शिक्षा इत्यादि में व्याप्त परिवर्तनों का अत्यन्त स्वाभाविक परिणाम था।

इन प्रतिष्ठित लेखकों के अध्ययन से हम कुछ सामान्य और विस्तृत परिणामों पर पहुँचते हैं। सर सैयद अहमद खां ऐसे व्यक्तियों में थे जो अपने युग से अत्यन्त प्रभावित हुए थे और उन्होंने सदैव ही अपनी शक्ति को समाज के दोष दूर करने में लगाया। वह न्यायप्रिय और विवेकी थे। उनके व्यक्तित्व में एक बल था जिसे उन्होंने अपनी शैली को भी प्रदान किया। मौलाना हाली पूर्ण रूप से यथार्थवादी थे। वे नये लेखकों के लिए आज भी एक प्रेरक स्रोत हैं। वे विवेकी पुरुष और एक सच्चे शिक्षाशास्त्री थे। उनकी शैली बहुत कुछ गद्यात्मक और भावुकता से रहित है। मौलाना आजाद की अपनी एक अलग शैली है। वह गद्य लिखने में भी सदा काव्यात्मक ही रहे, तथापि उनका गद्य अत्यन्त रोचक, सुस्वादु, स्वच्छ, काव्यात्मक और प्रशंसनीय है। मौलाना शिबली में भावुकता का पूर्ण अधिकृत भाव था, तथापि, यह उनकी गम्भीर और विद्वत्तापूर्ण शैली में सर्वत्र स्पष्ट है। ये न तो हाली की भांति गद्यात्मक हैं और न आजाद के समान काव्यात्मक। तथापि इनकी शैली में एक आकर्षण है जिसका शब्दों में वर्णन करना कठिन है। डॉ० नजीर अहमद प्रमुख रूप से उपन्यासकार थे। अपनी अरबीमयी उर्दू के बावजूद भी वह कथा कहने की कला खूब जानते थे।

पं० रतननाथ शरशार और अब्दुल हलीम शरर, इन दोनों ही उर्दू उपन्यासकारों की बात कहने की अपनी एक विशिष्ट आलंकारिक और रंगीन शैली है।

ये कुछ उर्दू के प्रमुख गद्य लेखक हैं, जिनकी अपनी-अपनी विशिष्ट शैलियाँ हैं। प्रेमचन्द का आगमन गद्य के इन विद्वानों के पश्चात् हुआ, परन्तु इन सब की अपेक्षा प्रेमचन्द का अपना एक विशिष्ट व्यक्तित्व है, इसलिए उनकी और अन्य लोगों की गद्य शैली में हमें कोई गहरा साम्य नहीं मिलता।

प्रेमचन्द ने पं० बनारसीदास चतुर्वेदी को लिखा था :

"मेरे तर्जे तहरीर पर किसी दूसरे मुसन्निफ के असलूबे बयान का कोई खास असर नहीं पड़ा। लेकिन पंडित विशुन नरायन दर और डॉक्टर रवीन्द्रनाथ का तर्ज कुछ-कुछ असर अन्दाज़ हुआ है।"[1]

न तो डॉ० रवीन्द्रनाथ टैगोर और न पं० विशुन नरायन दर ही उर्दू के गद्य शैलीकार थे। पं० विशुन नरायन दर गद्य लेखक की अपेक्षा प्रमुख रूप से कवि थे। अतएव यह कहना कठिन है कि अपनी शैली पर इन लोगों के

१. जमाना, प्रेमचन्द अंक, पृ० १६७;

प्रभाव की चर्चा करते समय प्रेमचन्द का क्या आशय था ? ऐसा कहा जाता है कि प्रेमचन्द के पूर्व की कहानियाँ डॉ० रवीन्द्रनाथ टैगोर की शैली के अनुकरण पर लिखी गई थीं । आनन्दपूर्ण भावों से युक्त गहरी चेतना ही दोनों कलाकारों की शैली में समान रूप से विद्यमान है । पं० विशुन नरायन दर निर्णयात्मक बुद्धि वाले और विचारशील व्यक्ति थे । उनकी अंग्रेजी रचनाओं में एक प्रेरक शक्ति है जो प्रेमचन्द की रचनाओं की भी एक प्रमुख विशेषता है ।

हम कह चुके हैं कि प्रेमचन्द ने कई प्रकार के चरित्रों का चित्रण किया है । उनकी गद्य शैली स्थिर नहीं थी । वह पूर्णतः लचीली थी । उनकी गद्य शैली समय और स्थल की आवश्यकतानुसार अथवा पात्रों के वार्तालापों और क्रिया-कलापों के अनुसार अनुशासित होती है । अपनी रचनाओं में प्रेमचन्द न पूर्णतः यथार्थवादी हैं और न पूर्णतः आत्मवादी ही । वह आत्मवादी की अपेक्षा यथार्थ-वादी अधिक हैं, इसका कारण यह है कि यदि किसी को उनके व्यक्तिगत जीवन का ज्ञान नहीं है तो उनके उपन्यासों और कहानियों के आधार पर यह कहना कठिन होगा कि प्रेमचन्द के किसी भी चरित्र में उनकी झलक मिलती है । यह उनकी कला का एक महान गुण है ।

अपनी रचनाओं के पीछे सदैव ही प्रेमचन्द का कुछ न कुछ ध्येय रहता है । साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि उन्होंने केवल ग्राम्य जीवन पर ही नहीं वरन् भारतीय समाज के अन्य वर्गों के जीवन पर भी लिखा है । तथापि, सामाजिक अथवा राजनीतिक, शिक्षा सम्बन्धी अथवा आर्थिक प्रयोजन उनकी विविध रचनाओं में सुस्पष्ट है । उनका व्यक्तित्व अत्यन्त उच्च और लेखन शैली अत्यन्त सुगम है ।

एक विशेष प्रयोजन को दृष्टि में रखते हुए एक जन-लेखक न तो स्वच्छन्दता-वादी हो सकता है और न विद्वत्तापूर्ण । वह अस्पष्ट अथवा भाषा के अलंकरण और सजावट में अपनी शक्ति खोने वाला भी नहीं हो सकता । उसमें यथार्थवाद की तीव्र चेतना होती है और उसे जनता के जीवन की दैनिक समस्याओं का ज्ञान होता है ।

इसी कारण से प्रेमचन्द का प्रयास भाषा का परिष्करण नहीं है । उन्होंने उत्तरप्रदेश के पूर्वी जिलों में बोली जाने वाली भाषा के शब्दभंडार से भी अच्छी सहायता ली :

"तुम्हारे **इकबाल** से सब तरह **कुसल** है । **अब जान पड़ता** है कि **हम भी आदमी** हैं । नहीं तो पहले **बैलों से भी गए बीते थे** । बैल तो **हर से छुट्टी**

पाकर आता है तो अपना भोजन करके आराम से सो जाता है । यहाँ हर से लौटकर बैलों की **फिकर** करनी पड़ती है... । पन्द्रह बीघे का **कासकार** था । दस बीघे मौरूसी थी । उनके पचास लगान देता था । पाँच बीघे सिकमी थे । उनके साठ देने पड़ते थे । अब पन्द्रह बीघे के कुल तीस देने पड़ते हैं । हरी, बेगारी, नजर नियाज सबसे गला छूटा ।"

एक अन्य उदाहरण इस प्रकार है :

"मेरा तो आपने कोई **नुक्सान** नहीं किया । मुझसे और आपसे दुस्मनी ही कौन-सी थी । हम और आप आमने-सामने के **पालों** में खेले । आपने **भरसक** जोर लगाया । मैंने भी भरसक जोर लगाया । जिसको जीतना था जीता, जिसको हारना था हारा । खिलाड़ियों में बैर नहीं होता । खेल में रोते तो लड़कों को भी **लाज** आती है । खेल में चोट लग जाय चाहे **जान निकल जाय** पर बैर न होना चाहिए ।"

मोटे शब्द चुनी हुई उर्दू गद्य शैली की प्रचलित परिपाटी से बाहर हो चुके हैं । इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग ही इस बात का द्योतक है कि प्रेमचन्द गाँव के जीवन से किस सीमा तक परिचित थे । कोई भी लेखक, जो ग्रामीण जीवन के सम्बन्ध में लिखना चाहता है, उनकी बोली से शब्दों और पदों के ग्रहण से अपने को नहीं रोक सकता ।

संक्षेप में, हम देखते हैं कि निस्सन्देह प्रेमचन्द की गद्य शैली गद्य लेखन की प्राचीन परम्परा पर ही आधारित है । परन्तु, उनका विश्वास गद्य शब्दभंडार के जीर्ण क्रम को चलाने में नहीं था । गद्य में काव्यात्मकता आधुनिक पाठक को आकर्षित नहीं कर सकती । प्रेमचन्द ने जिस जीवन का चित्रण किया है, वह दृश्ययुक्त है, जिन लोगों का उन्होंने परिचय दिया है वे जाति, श्रेणी, लिंग, आयु, वर्ग अथवा चालढाल में भिन्न हैं, और जो मार्ग उन्होंने अपनाया है वह आवश्यक रूप से एक यथार्थवादी का मार्ग है । अतः उनकी शैली की परख पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत की गई उनकी विषय-सामग्री के प्रकाश में ही करनी चाहिए ।

इसके अतिरिक्त उन्होंने हिन्दी में भी लिखा और या तो स्वयं उन्होंने अथवा किसी अन्य ने उसको उर्दू में अनुवादित कर दिया । कभी ऐसा भी हुआ कि उन्होंने उर्दू में लिखा और तदुपरान्त उसका रूपान्तर हिन्दी में कर दिया । विभिन्न शैलियों में अथवा वर्णन की विविध विधियों में उनकी कहानियाँ हमें मिलती हैं, फिर भी विरोध के भय से मुक्त होकर यह कहा जा सकता है कि वे अपने विचारों के व्यक्तीकरण के माध्यम पर सर्वोच्च अधिकार रखने वाले एक

महान लेखक थे । उनकी शैली उनके विषय के पूर्ण आधीन है । स्वानुभूत्यात्मक भावुकता के क्षणों में भी वे अपने विषय से च्युत नहीं होते, जो प्रेमचन्द की रचनाओं की विशेषता है ।

संसार के महान लेखकों के समान प्रेमचन्द की रचनाएँ भी उनके जीवन के अनुरूप हैं । यह उनकी शैली का दूसरा गुण है । उनकी रचनाएँ उनके दैनिक जीवन क्रम के विचारों, अनुभवों और व्यवहारों की यथार्थ प्रतिबिम्ब हैं । वे हिन्दू-मुस्लिम एकता की सेवा करते हुए मरे । एक ऐसे शान्तिपूर्ण वातावरण, जिसमें हिन्दू-मुसलमान एक ही परिवार के दो भाइयों की भाँति रह सकें, की सृष्टि के हेतु उन्होंने बहुत-सी रचनाएँ लिखीं । उन्होंने ऐसी भाषा का प्रयोग किया जो हिन्दुस्तानी जानने वाले लोगों के अधिकांश भाग द्वारा स्वीकृत की जा सकी । वे संस्कृति की एकता पर विश्वास करते थे ।

उन्होंने एक विधवा से विवाह किया क्योंकि वे ईमानदारी से विश्वास करते थे कि विधुर लोगों को केवल विधवाओं से ही विवाह करना चाहिए । प्रेमचन्द उस समानता को पसन्द नहीं करते थे जिसमें स्त्रियों को धूम्रपान अथवा एक ही मेज पर पुरुषों के साथ मदिरापान का अधिकार दिया जाता है । वे स्त्री में सदैव मातृभाव ही देखते हैं, क्योंकि माता के रूप में ही वह महान् त्यागों, निर्मल निष्कपटता और अमर प्रेम के हेतु प्रस्तुत रहती है । महात्मा गांधी के समान कभी-कभी वे अपनी पत्नी को माता कहकर सम्बोधित करते थे । उन्हें यह कहते हुए गर्व है, ''केवल भारत ने ही सीता और सावित्री उत्पन्न कीं । क्या वरजिल, होमर, ह्यूगो, शेक्सपियर, गोथे अथवा दांते में दूसरी सीता अथवा सावित्री मिल सकती है ?''

उन्होंने असहयोग की पुकार पर त्यागपत्र दे दिया । 'सोज़ ए वतन' की ५०० प्रतियाँ हमीरपुर के अंग्रेज कलेक्टर द्वारा जनता के समक्ष जलवाई गईं, इस पर प्रतिबन्ध भी लगा दिया गया । जब उनके लिए नवाबराय के रूप से स्वतन्त्र नाम का उपयोग दुर्लभ हो गया तब उन्होंने अपना छद्म नाम प्रेमचन्द रख लिया । 'समर यात्रा' नाम के उनके एक दूसरे हिन्दी कहानियों के संग्रह पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया गया था ।

एक महान् प्रतिभाशाली साहित्यिक महारथी होने के अतिरिक्त वे एक व्यवहार-निपुण कर्मशील व्यक्ति थे जिनकी रचनाएँ सद्प्रयोजन के हेतु कार्य और आस्था के संदेश से परिपूर्ण हैं । विचार और व्यवहार की यह अभिन्नता सदैव ही एक महान् प्रयोजन के प्रति उनकी ईमानदारी और आस्था की प्रतीक है ।

उनकी शैली, जीवन के प्रति उनके दृष्टिकोण और उनके जीवन तथा उनकी रचनाओं के घनिष्ट सम्बन्ध की चर्चा करने के पश्चात् कुछ परिणाम निकालने सम्भव हैं। प्रेमचन्द का मस्तिष्क और स्वभाव परिवर्तनशील था। शिशु प्रेमचन्द एक सनातनी घर में पैदा हुए थे। वे आर्यसमाजी आन्दोलन और आगे चलकर अनीश्वरवाद के प्रति भी आकृष्ट हुए, बुद्धि परिपक्व होने पर अथवा अवस्था की प्रौढ़ता के साथ वे हेतुवाद के मन्दिर के पुजारी बन गए। प्रमाण अथवा तर्क उनका एकमात्र पथ-प्रदर्शक था।

वह व्यक्ति जिसे पहले मानवतावाद के स्रोत से प्रेरणा मिलती थी, अब सुधारवाद पर विश्वास करने लगा और अन्ततः अहिंसा और सत्याग्रह के दर्शन द्वारा पोषित परिणाम के सिद्धान्त का अनुयायी बन गया।

प्रेमचन्द के सबसे बड़े पुत्र श्रीयुत श्रीपतराय द्वारा हमें ज्ञात हुआ कि उनके जीवन के अन्तिम दिनों में उनमें एक नए विकास के लक्षण दृष्टिगत हो रहे थे। परिणामवाद सम्बन्धी उनका विश्वास हिल चुका था और उन्होंने इतिहास निर्माण में क्रान्ति की शक्ति पर विश्वास करना प्रारम्भ कर दिया था। तथापि, प्रेमचन्द और लेनिन की इतिहास की चेतना की चर्चा करते समय हमें बहुत-सी विरोधी बातों का सामना करना पड़ता है। इससे यह प्रमाणित होता है कि प्रेमचन्द की अन्तिम कृतियों में निश्चित रूप से क्रान्ति के बीज हैं। उन्होंने पूँजी-वाद के शोषण के विरुद्ध छेड़े गए युद्ध का स्वागत किया। 'महाजनी सभ्यता' नाम के अपने लेख में प्रेमचन्द ने लिखा है—'परन्तु अब एक नई सभ्यता का सूर्य सुदूर पश्चिम से उदय हो रहा है, जिसने इस नाटकीय महाजनवाद या पूँजीवाद की जड़ खोदकर फेंक दी है।......धन्य है उस सभ्यता का जो मालदारी और व्यक्तिगत सम्पत्ति का अन्त कर रही है, और जल्दी या देर से दुनिया उसका पदानुसरण अवश्य करेगी।' अतएव हम उनके पुत्र श्रीपतराय जी द्वारा सुझाई हुई सम्भावना की उपेक्षा नहीं कर सकते। ऐसा असम्भव नहीं है कि एक व्यक्ति अपने जीवन की प्रारम्भिक अवस्था में सुधारवादी रहे, अन्य अवस्था में विकास पर विश्वास करने वाला और अपने आस-पास के जीवन क्रम के अनुभवों के बाद क्रान्ति पर आ जाय। प्रेमचन्द की इन अवस्थाओं के अध्ययन से हम इस विश्वास पर पहुँचते हैं कि प्रेमचन्द सदैव आस्थाओं के प्रति उन्मुक्त रहे, सदैव समय के साथ चले, परन्तु मानवता के प्रतिकूल उन्होंने कभी भी न कुछ कहा, न कुछ लिखा। यदि हम देश की परिवर्तनशील स्थितियों का अध्ययन करें, जिसकी पीड़ाओं और आकांक्षाओं के विषय में प्रेमचन्द लिख रहे

थे, तो हम उनके जीवन दर्शन में, उनके आर्थिक विचारों में और जनता के कार्य-कलापों तथा वृहत रूप के उत्पादनों का अनुभव करने में जो स्पष्ट विरोध है उसे सरलता से निश्चित कर सकेंगे ।

इस प्रकार यह प्रेमचन्द सम्बन्धी हमारे अध्ययन में एक महान् संकट उत्पन्न कर देता है । इसका उत्तर देना कठिन है कि प्रेमचन्द का विश्वास रामराज्य पर था अथवा नहीं ? क्या वे सूरदास की शिक्षाओं पर अब भी जोर देते थे ? क्या उन्होंने विधवाओं के पुर्नविवाह और वेश्यावृत्ति के उन्मूलन इत्यादि का पक्ष लिया ? प्रेमचन्द अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में एक महत्वपूर्ण संकट के द्वार पर खड़े थे । हमारे अध्ययन की संकटमय स्थिति उसी का परिणाम है । प्रेमचन्द का व्यक्तित्व एक विकासशील महान् लेखक का था । सागर की भाँति, उनके मस्तिष्क ने सब कुछ आत्मसात् कर लिया था ।

□□

परिशिष्ट

परिशिष्ट क

□

रामराज्य की धारणा

रामराज्य के विषय में प्रेमचन्द की जो धारणा थी वह गोश ए आफ़ियत (पृ० ७१९) के एक अंश से पूर्णतया स्पष्ट हो जायेगी। अतः यहाँ हम उसे अविकल रूप में उद्धृत कर रहे हैं—

"दो साल हो गये। शाम का वक्त है। बाबू मायाशंकर घोड़े पर सवार लखनपुर में दाखिल हुये। उन्हें वहाँ बड़ी रौनक और सफ़ाई नज़र आई। तक-रीबन सभी दरवाजों पर सायबान थे। उन में तखत बिछे हुए थे। बेशतर घरों पर सफ़ेदी हो गई थी। फूस के झोपड़े गायब हो गये थे। अब सभी मकानों पर खपरैल थे। दरवाजों पर बैलों के लिये पुख्ता चरियाँ बनी हुई थीं। कई दरवाजों पर घोड़े बँधे हुये नज़र आते थे। पुराने चौपाल में स्कूल था और उसके सामने एक पुख्ता कुआँ और एक धरमशाला था। मायाशंकर को देखते ही लोग अपना-अपना काम छोड़कर दौड़े और एक लमहे में सदहा लोग जमा हो गये। मायशंकर सुक्खू चौधरी के मंदिर पर ठहरे। वहाँ उस वक्त बड़ी बहार थी। मंदिर के सामने सहन में तरह-तरह के फूल खिले हुये थे। चबूतरे पर चौधरी बैठे हुये रामायण पढ़ रहे थे और कई औरतें बैठी हुई सुन रही थीं। माया-शंकर घोड़े पर से उतर कर चबूतरे पर जा बैठे।

सुखदास जल्दी से उठ खड़े हुये। पूछा, "सब कुशल मंगल है न। क्या अभी चले आ रहे हो?"

माया : "हाँ। मैने कहा चलूँ तुम लोगों से मुलाकात कर आऊँ।"

सुखदास : "बड़ी किरपा की। हमारे धन्य भाग कि घर बैठे हुये मालिक के दर्शन होते हैं।" यह कहते हुये दौड़े हुये घर में गये। एक ऊनी कालीन ला कर बिछा दिया। कलसी में पानी खींचा और शरबत बनाने लगे। मायाशंकर ने मुँह-हाथ धोकर शरबत पिया और घोड़े की लगाम उतार रहे थे कि क़ादिर मियाँ ने आकर सलाम किया। माया ने कहा, "कहिये खां साहब मिज़ाज तो अच्छा है?"

कादिर : "सब अल्लाह ताला का फ़ज़ल है। सरकार के जानो माल की खैर मनाया करते हैं। आज तो रहना होगा न?"

माया : "यही इरादा करके तो चला हूँ ।"

ज़रा देर में वहाँ गाँव के सभी छोटे-बड़े लोग जमा हो गये । इधर-उधर की बातें होने लगीं । कादिर ने पूछा, "बेटा, आजकल काउंसिल में क्या हो रहा है ? आसामियों पर कुछ निगाह होने की उम्मीद है या नहीं ?"

माया : "हाँ है चचा साहब और उनके साथी बड़ा जोर लगा रहे हैं । उम्मीद है कि जल्दी ही कुछ न कुछ नतीजा होगा ।"

कादिर : "अल्लाह इनकी मेहनत ठिकाने लगाये और क्या दुआ दें । रोयें-रोयें से तो दुआ निकल रही है । कासकारों की हालत बहुत खराब है बेटा । मुझी को देखो पहले बीस बीघे का कासकार था । सौ रुपये का लगान देना पड़ता था । दस-बीस रुपये साल नजराने में निकल जाते थे । अब सब बीस रुपये लगान है और नजराना नहीं लगता । पहले अनाज खलियान से घर तक न आता था । आप के कारिन्दे और चपरासी वहीं गला दबा कर तुलवा लेते थे । अब अनाज घर में भरते हैं और सुबीते से बेचते हैं । दो साल में कुछ नहीं तो तीन-चार सौ रुपये बचे होंगे । डेढ़ सौ की एक जोड़ी बैल लाये, घर की मरम्मत कराई, सायबान डाला, हांडियों की जगह ताँबे और पीतल के बरतन लिये और सबसे बड़ी बात यह है कि अब किसी की धौंस नहीं है । मालगुजारी दाखिल करके चुपके से घर चले आते हैं । नहीं तो हरदम जान सूली पर चढ़ी रहती थी । अब अल्लाह की इबादत में भी जी लगता है, नहीं तो नमाज भी बोझ मालुम होती थी ।"

माया : "तुम्हारा क्या हाल है, दुखरन भगत ?"

दुखरन : "भैया तुम्हारे एकबाल से सब तरह कुसल है । अब जान पड़ता है कि हम भी आदमी हैं, नहीं तो पहले बैलों से भी गये बीते थे । बैल तो हर से छुट्टी पाकर आता है तो अपना भोजन करके आराम से सो जाता है । यहाँ हर से लौट कर बैलों की फिकर करना पड़ती है । उस से छुट्टी मिलती तो कारिन्दा साहब की खुसामद करने जाते । वहाँ से दस-ग्यारा बजे लौटते तब भोजन मिलता । पन्द्रह बीघे का कासकार था, दस बीघे मौरूसी थी, उनके पचास लगान देता था । पाँच बीघे सिकमी थे, उनके साठ देने पड़ते । अब पन्द्रह बीघे के कुल तीस देना पड़ते हैं । हरी, बेगारी, नजर-नियाज सब से गला छूटा । दो साल में चार सौ हाथ हो गये । सौ रुपये की एक पछाईं भैंस लाया हूँ, कुछ कर्ज़ था वह चुका दिया ।"

सुखदास : "और तबला-हारमोनियम लिया है, वह क्यों नहीं कहते ? एक पक्का कुआँ बनवाया है, उसे क्यों छुपाते हो ? भैया यह पहले ठाकुर जी के

बड़े भक्त थे । एक बार बेगार में पकड़े गये तो आकर ठाकुर जी पर गुस्सा उतारा । उनकी मूरत को तोड़ कर फेंक दिया । अब फिर ठाकुर जी में इनकी श्रद्धा हुई है । भजन-कीर्तन का सब सामान इन्हीं ने मँगाया है ।"

दुखरन : "क्यों छुपाऊँ । मालिक से कौन परदा ? यह सब उन्हीं की बदौलत तो है ।"

माया : "यह बातें चचा साहब सुनते तो खुशी से फूले न समाते ।"

कल्लू : "भैया ! जो सच पूछो तो चाँदी मेरी है । पहले छै बीघे का असामी था । सब सिकमी । बहत्तर लगान के देना पड़ते थे । उस पर हरदम गौस मियां की चिरौरी किया करता था कि कहीं खेत छीन न लें । पचास रुपये साल नजराना लगता था । पयादों की पूजा करनी पड़ती थी । अब कुल नौ रुपये लगान देता हूँ । दो साल में आदमी बन गया । फूस के झोपड़े में रहता था, अब मकान बनवा लिया है । पहले हर वक्त धड़का लगा रहता था कि कोई कारिन्दे से मेरी चुगली न कर आया हो । अब आनन्द से मीठी नींद सोता हूँ और सरकार का जस गाता हूँ ।"

माया : (सुक्खू चौधरी से) "तुम्हारी खेती तो सब मजूरों से होती होगी । तुम्हें भजन-भाव से कहाँ छुट्टी ।"

सुक्खू : (हँस कर) "भैया मुझे अब खेती-बारी करके क्या करना । अब तो यही अच्छा है कि भगवत भजन करते-करते यहाँ से सिधार जाऊँ । मैंने अपने चालीसो बीघे उन बेचारों को दे दिये हैं, जिनके हिस्से में कुछ न पड़ा था । इस तरह सात-आठ घर जो पहले मंजूरी करते थे और बेगार के मारे मंजूरी भी न करने पाते थे, अब भले आदमी हो गये हैं । मेरा अपना निबाह भीक माँग कर हो जाता है और पूरी यहीं मिल जाती है । किसी दूसरे गाँव में पेट के लिये नहीं जाना पड़ता । दो-चार साधु-सन्त रोज ही आते रहते हैं उसी भीक में उनकी आवभगत भी हो जाती है ।"

माया : "आज विशेशर साह नहीं दिखाई दिया ।"

सुक्खू : "किसी काम से गये होंगे । वह भी अब पहले से मजे में हैं । दुकान बहुत बढ़ा दी है । लेन-देन कम करते हैं । पहले रुपये में आने से कम बियाज न लेते थे और करते क्या ? कितने ही असामियों से कौड़ी न वसूल होती थी । रुपये मारे जाते थे । उसकी कसर बियाज से निकालते थे । अब रुपया सैकड़े बियाज लेते हैं । किसी के यहाँ रुपया डूबने का डर नहीं है । दुकान भी अच्छी चलती है । पहले दीवाला निकल जाता था । अब एक तो गाँव का बल

है, कोई रोब नहीं जमा सकता और जो थोड़ा-बहुत घाटा हुआ भी तो गाँव वाले पूरा कर देते हैं ।"

इसी असना में बलराज एक रेशमी साफा बाँधे, मिर्जई पहने घोड़े पर सवार आता हुआ दिखाई दिया । मायाशंकर को देखते ही फौरन घोड़े से उतर पड़ा । उनके पैरों को छुआ । वह अब डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का मेम्बर था । बोर्ड ही के जलसे से वापस आ रहा था । माया ने मुस्करा कर दरियाफ्त किया, "कहिये मेम्बर साहब क्या खबर है ?"

बलराज : "हजूर की दुआ से अच्छी तरह हूँ । आप तो मजे में हैं ? बोर्ड के जल्से में गया था । बहस छिड़ गई, वहीं चिराग़ जल गया ।"

माया : "आज बोर्ड में क्या था ?"

बलराज : "वही बेगार की बात छिड़ी हुई थी । बड़ी गरमा-गरम बहस हुई । मैं कहता था कि जिले का हाकिम दिहात में जाकर गाँव वालों से किसी तरह से काम न ले; जैसे, पानी भरना, घास छीलना, झाड़ू लगाना । जो रसद चाहिये वह गाँव के मुखिया से कह दी जाय और बाजार से उसी दाम चुका दिया जाय । इस पर दोनों तहसीलदार और कई हाकिम बहुत भिन्नाये । कहने लगे कि इससे सरकारी काम में बड़ा हरज होगा । मैंने भी जी खोल कर जो कुछ कहते बना, कहा । सरकारी काम रियाया को तकलीफ देकर और उनकी बेइज़्ज़ती करके नहीं होना चाहिये । हरज होता है तो हो । दिल्लगी यह थी कई जमींदार साहबान भी उन्हीं के तरफदार थे । मैंने उन लोगों की भी खूब खबर ली । देखें साहब कलक्टर क्या फैसला देते हैं । मेरी एक तजवीज़ यह भी थी कि निर्खनामा लिखने के लिये एक सब-कमेटी बनायी जाय, जिसमें ज्यादातर व्यौपारी लोग हों । यह नहीं कि जो तहसीलदार ने कलम उठाया और मनमाना भाव लिखकर चलता कर दिया । मेरी यह तजवीज़ भी मंजूर हुई ।"

माया : "मैं इस कामयाबी पर तुम्हें मुबारकबाद देता हूँ ।"

बलराज : "यह सब आपका एक़बाल है । पहले यहाँ कोई अकबार का नाम भी न जानता था । अब कई अच्छे-अच्छे अकबार आते हैं । अपनी लाइब्रेरी दिखाऊँगा । गाँव वाले अपनी हैसियत के मुवाफ़िक़ दो रुपया माहवार चन्दा देते हैं । वरना पहले हम लोग मिल कर एक अकबार मँगाते थे तो सारा गाँव पढ़ता था । जब कोई अफ़सर दौरे पर आता तो कारिन्दा साहब फौरन उससे मेरी सिकायत करते । अब आपकी बदौलत इस गाँव में रामराज है । आपको किसी दूसरे मौजे में पूसा और मुज़फर का गेहूँ न दिखाई देगा । हम लोगों ने अब की मिलकर दो जगहों से बीज मँगवाये हैं और ड्योढ़ी पैदावार होने की पूरी उम्मीद

है। पहले यहाँ डर के मारे कोई कपास बोता ही न था। मैंने अब की मालवा और नागपुर से बीज मँगवाये और गाँवों में बाँट दिये। खूब कपास हुई। यह सब काम उन गरीब असामियों के लिये नहीं हो सकते जिनको पेट भर खाना तक नहीं मिलता। सारी पैदावार ज़िमींदार-महाजन के भेंट हो जाती है।"

□□

परिशिष्ट ख

महाजनी सभ्यता

"इस महाजनी सभ्यता में सारे कामों की गरज महज पैसा होती है। किसी देश पर राज्य किया जाता है, तो इसलिए कि महाजनों-पूँजीपतियों को ज्यादा-से-ज्यादा नफ़ा हो। इस दृष्टि से मानो आज दुनिया में महाजनों का ही राज्य है। मनुष्य समाज दो भागों में बँट गया है। बड़ा हिस्सा तो मरने और खपने वालों का है और बहुत ही छोटा हिस्सा उन लोगों का, जो अपनी शक्ति और प्रभाव से बड़े समुदाय को अपने बस में किये हुए हैं। इन्हें इस बड़े भाग के साथ किसी तरह की हमदर्दी नहीं, जरा भी रू-रियायत नहीं। उसका अस्तित्व केवल इसीलिए है कि अपने मालिकों के लिए पसीना बहाए, खून गिराये और एक दिन चुपचाप इस दुनिया से बिदा हो जाये। अधिक दुःख की बात तो यह है कि शासक वर्ग के विचार और सिद्धान्त शासित वर्ग के भीतर भी समा गये हैं, जिसका फल यह हुआ है कि हर आदमी अपने को शिकारी समझता है और उसका शिकार है समाज। वह खुद समाज से बिलकुल अलग है, अगर कोई सम्बन्ध है, तो यह कि किसी चाल या युक्ति से वह समाज को उल्लू बनावे और उससे जितना लाभ उठाया जा सकता हो, उठा ले।

"इस सभ्यता का दूसरा सिद्धान्त है Business is business अर्थात् व्यवसाय व्यवसाय है, उसमें भावुकता के लिए गुंजाइश नहीं। पुराने जीवन सिद्धांत में वह लठमार साफ़गोई नहीं है जो निर्लज्जता कही जा सकती है और जो इस नवीन सिद्धान्त की ही आत्मा है। जहाँ लेन-देन का सवाल है, रुपये-पैसे का मामला है, वहाँ न दोस्ती का गुजर है, न मरौवत का, न इन्सानियत का। 'बिज़नेस' में दोस्ती कैसी ? जहाँ किसी ने इस सिद्धान्त की आड़ ली और आप लाजवाब हुए फिर आप की जबान नहीं खुल सकती। एक सज्जन जरूरत से लाचार होकर अपने किसी महाजन मित्र के पास जाते हैं और चाहते हैं कि वह उनकी कुछ मदद करे। यह भी आशा रखते हैं कि शायद सूद के दर में वह कुछ रियायत कर दे, पर जब देखते हैं कि यह महानुभाव मेरे साथ भी वही कारबारी बर्ताव

---

१. प्रेमचन्द के 'महाजनी सभ्यता' नामक लेख से उद्धृत;

कर रहे हैं तो कुछ रियायत की प्रार्थना करते हैं। मित्रता और घनिष्टता के आधार पर आँखों में आँसू भर कर बड़े करुण स्वर में कहते हैं–"महाशय, मैं इस समय बड़ा परीशान हूँ, नहीं तो आप को कष्ट न देता, ईश्वर के लिए मेरे हाल पर रहम कीजिए। समझ लीजिये कि यह पुराने दोस्त............।" वहीं बात काट कर आज्ञा के स्वर में फरमाया जाता है–"लेकिन जनाब, आप 'बिज़नेस इज़ बिज़नेस' इसे भूल जाते हैं।" उस दिन कातर प्रार्थी पर मानो बम का गोला गिरा। अब उसके पास कोई तर्क नहीं, कोई दलील नहीं। चुपके से अपनी राह लेता है या फिर अपने व्यवसाय-सिद्धान्त के भक्त मित्र की सारी शर्तें क़बूल कर लेता है।

"इस महाजनी सभ्यता ने दुनिया में जो नई रीति-नीतियाँ चलाई हैं उनमें सबसे अधिक और रक्तपिपासु यही व्यवसाय वाला सिद्धान्त है। मियाँ-बीबी में बिज़नेस, बाप-बेटे में बिज़नेस, गुरु-शिष्य में बिज़नेस, सारे मानवी, आध्यात्मिक और सामाजिक नेह-नाते समाप्त, आदमी-आदमी के बीच बस कोई लगाव है, तो बिज़नेस का। लानत है इस 'बिज़नेस' पर। लड़की अगर दुर्भाग्यवश क्वाँरी रह गई और अपनी जीविका का कोई उपाय न निकाल सकी, तो अपने बाप के घर में ही लौंडी बन जाना पड़ता है। यों लड़के-लड़कियाँ सभी घरों में काम-काज करते ही हैं, पर उन्हें कोई टहलुआ नहीं समझता; पर इस महाजनी सभ्यता में लड़की एक खास उम्र के बाद लौंडी और भाइयों की मज़दूरनी हो जाती है। पूज्य पिताजी भी अपने पितृ भक्त बेटे के टहलुए बन जाते हैं और माँ अपने सपूत की टहलुई, स्वजन सम्बन्धी तो किसी गिनती में नहीं। भाई भी भाई के घर आये तो मेहमान है, अकसर तो उसे मेहमानी का बिल भी चुकाना पड़ता है।

"परन्तु अब नई सभ्यता का सूर्य सूदूर पश्चिम से उदय हो रहा है, जिसने इस नाटकीय महाजनवाद या पूँजीवाद की जड़ खोदकर फेंक दी है, जिसका मूल सिद्धान्त यह है कि प्रत्येक व्यक्ति, जो अपने शरीर या दिमाग़ से मेहनत करके कुछ पैदा कर सकता है, राज्य और समाज का परम सम्मानित सदस्य हो सकता है, और जो केवल दूसरों की मेहनत या बाप-दादों के जोड़े हुए धन पर रईस बना फिरता है, पतिततम प्राणी है। उसे राज्य प्रबन्ध में राय देने का हक़ नहीं है और वह नागरिकता के अधिकार का भी पात्र नहीं। महाजन इस नयी लहर से अति उद्विग्न होकर बौखलाया हुआ फिर रहा है और सारी दुनिया की शामिल आवाज़ इस नयी सभ्यता को कोस रही है, उसे शाप दे रही है; क्योंकि

स्वातन्त्र्य, धर्म और विश्वास की स्वाधीनता, अपनी अन्तरात्मा के आदेश पर चलने की आजादी, वह इन सबकी घातक, गला घोंट देने वाली बताई जा रही है। उस पर नये-नये लांछन लगाये जा रहे हैं, नई-नई हुरमतें तराशी जा रही हैं। वह काले से काले रंग में रँगी जा रही है, कुत्सित रूप में चित्रित की जा रही है। उन सभी साधनों से, जो पैसे वालों के लिए सुलभ हैं, काम लेकर उसके विरुद्ध प्रचार किया जा रहा है, पर सचाई है जो इस सारे अन्धकार को चीरकर दुनिया में अपनी ज्योति का उजाला फैला रही है।

"धन्य है वह सभ्यता, जो मालदारी और व्यक्तिगत सम्पत्ति का अन्त कर रही है, और जल्दी या देर से दुनिया उसका पदानुसरण अवश्य करेगी। यह सभ्यता अमुक देश की समाज रचना अथवा धर्म-मज़हब से मेल नहीं खाती या उस वातावरण के अनुकूल नहीं है—यह तर्क नितान्त असंगत है। ईसाई मज़हब का पौधा यरुशलम में उगा और सारी दुनिया उसके सौरभ से बस गई। बौद्ध धर्म ने उत्तर भारत में जन्म ग्रहण किया और आधी दुनिया ने उसे गुरु-दक्षिणा दी। मानव-स्वभाव अखिल विश्व में एक ही है। छोटी-मोटी बातों में अन्तर हो सकता है, पर मूल स्वरूप की दृष्टि से सम्पूर्ण मानव-जाति में कोई भेद नहीं। जो शासन विधान और समाज व्यवस्था एक देश के लिये कल्याण-कारी है, वह दूसरे देशों के लिये भी हितकर होगी। हाँ, महाजनी सभ्यता और उसके गुर्गे अपनी शक्ति-भर उसका विरोध करेंगे, उसके बारे में भ्रमजनक बातों का प्रचार करेंगे, जन-साधारण को बहकावेंगे, उनकी आँखों में धूल झोंकेंगे, पर जो सत्य है एक न एक दिन उसकी विजय होगी और अवश्य होगी।"

□□

परिशिष्ट ग : सहायक ग्रन्थ

□

क. प्रेमचन्द की कृतियाँ

उपन्यास

	उर्दू	हिन्दी
१.	असरारे मग्राबिद (८ अक्टूबर १९०३ से १ फरवरी १९०५ तक बनारस के उर्दू साप्ताहिक आवाज़ए ख़ल्क में क्रमशः प्रकाशित)	...
२.	प्रतापचन्द्र	...
३.	हम खुर्मा व हम सबाब (सन् १९०७)	प्रतिज्ञा (सन् १९२७)
४.	किशना (सन् १९०७)	...
५.	जलवए ईसार (सन् १९१२)	वरदान (सन् १९२१)
६.	बाज़ारे हुस्न (सन् १९१४)	सेवासदन (१९१६)
७.	गोशए आफ़ियत (सन् १९२२)	प्रेमाश्रम (सन् १९२१)
८.	चौगाने हस्ती (सन् १९२७)	रंगभूमि (सन् १९२५)
९.	पर्दए मजाज (सन् १९२८)	कायाकल्प (सन् १९२८)
१०.	निर्मला (सन् १९२९)	निर्मला(सन् १९२५-१९२६)
११.	गबन (सन् १९३०)	गबन (सन् १९३१)
१२.	मैदाने अमल (सन् १९३२)	कर्मभूमि (सन् १९३२)
१३.	गोदान (सन् १९३६)	गऊदान (सन् १९३६)
१४.	...	मंगलसूत्र (अपूर्ण)

उर्दू लघु कथायें

१. प्रेम पच्चीसी

२. प्रेम बत्तीसी

३. प्रेम चालीसी
४. सोज़े वतन और सैर दरवेश
५. फिरदौस ए ख्याल
६. ख्वाब ओ ख्याल
७. वारदात
८. खाक ए परवाना
९. देहात के अफ़साने
१०. आखिरी तोहफ़ा
११. ज़ाद ए राह
१२. दूध की कीमत

उर्दू नाटक

१. कर्बला
२. रूहानी शादी

उर्दू जीवनियाँ

१. बाकमालों के दर्शन

हिन्दी से अनुवादित

१. कुर्बे-वुसती में हिन्दुस्तानी तहज़ीब

उर्दू में बच्चों की पुस्तकें

१. कुत्ते की कहानी
२. जंगल की कहानी
३. राम चर्चा

ख. प्रेमचन्द पर आलोचनात्मक ग्रन्थ

प्रेमचन्द—घर में : शिवरानी देवी
प्रेमचन्द—आलोचनात्मक परिचय : डॉ० रामविलास शर्मा : सरस्वती प्रेस, बनारस, १९४१;
प्रेमचन्द की उपन्यास कला : प्रोफेसर जनार्दन झा : वाणी मन्दिर, छपरा;
प्रेमचन्द : डॉ० रामरतन भटनागर : किताब महल, प्रयाग;

प्रेमचन्द—कृतियाँ और कला : डॉ० प्रेमनारायण टण्डन : प्रयाग पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद;
प्रेमचन्द—स्मृति : अमृतराय : १९५९;
प्रेमचन्द : डॉ० त्रिलोकीनारायण दीक्षित : १९५२;
प्रेमचन्द के जीवन-दर्शन के विधायक-तत्व : डॉ० कृष्णचन्द्र पाण्डेय;
प्रेमचन्द और गांधीवाद : रामदीन गुप्त : १९६१;
प्रेमचन्द और उनका युग : डॉ० रामविलास शर्मा, द्वितीय संस्करण, १९५५;
प्रेमचन्द जीवन और कृतित्व : हंसराज रहबर : आत्माराम एण्ड सन्स, काश्मीरी गेट, दिल्ली : १९५१;
कलम का सिपाही : अमृतराय : हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, १९६२;
आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य और मनोविज्ञान : देवराज उपाध्याय : १९६३;
हिन्दी साहित्य का इतिहास (नवां संस्करण) : रामचन्द्र शुक्ल;
प्रेम सोग : मोहम्मद हसन-उद्दीन खाँ गोरी : मकतब-ए-इबराहिमियाँ, आबिद रोड, हैदराबाद;
प्रेमचन्द—कहानी का रहनुमा : डॉ० जाफर रज़ा : १९६९;

ग. सामान्य पुस्तकें

उर्दू

तारीख अदब उर्दू : डॉ० रामबाबू सक्सेना
मुख्तसर तारीख अदब उर्दू : सैयद एजाज हुसेन
दास्तान तारीख उर्दू : हामिद हुसेन क़ादरी
उर्दू अदब जंगे अज़ीम के बाद : डाक्टर मोहम्मद अब्दुल्ला
नये अदबी रुहजानात : सैयद एजाज हुसेन
अफ़साना निगारी : वक़ार अज़ीम
हमारे अफ़साने : वक़ार अज़ीम
दुनियाय अफ़साना : अब्दुल क़ादिर सुरूरी
किरदार और अफ़साना : अब्दुल क़ादिर सुरूरी
अफ़साना : मजनूं गोरखपुरी
उसूले अफ़साना निगारी : ओऐस अहमद अदीब

तनकीदी इशारे : आले अहमद सुरूर
प्रेमसोग : हिसामुद्दीन
तरक़्क़ी पसंद अदब : अज़ीज अहमद
तनक़ीदी जायज़े : सैयद एहतेशाम हुसैन
खायत और बग़ावत : सैयद एहतेशाम हुसैन
मज़ामीन चकबस्त : पंडित ब्रजनरायण चकबस्त
हयातुल्नज़ीर : इफ़्तख़ार आलम मारहखी
मिर्ज़ा रुसवा के क़िस्से : अब्दुल माजिद दरियाबादी
(रिसाला हिन्दोस्तानी, इलाहाबाद)

अफ़कारे नौ : जमील अहमद
सीरुल मुसन्निफ़ीन (जिल्द दोम) : मोहम्मद याहया 'तनहा'
मिरातुल उरूस : नज़ीर अहमद
तौबतन नुसूअ : नज़ीर अहमद
इब्नुल वक़्त : नज़ीर अहमद
फ़सानाये आज़ाद : रतननाथ 'सरशार'
जामे सरशार : रतननाथ 'सरशार'
सैर कोसार : रतननाथ 'सरशार'
मन्सूर मोहन्ना : अब्दुल हलीम 'शरर'
मलिकुल अज़ीज़ वरजीना : अब्दुल हलीम 'शरर'
फिरदौसे बरीं : अब्दुल हलीम 'शरर'
फ़िलोरा फ्लोरंडा : अब्दुल हलीम 'शरर'
फतेह उन्दलस : अब्दुल हलीम 'शरर'
अय्यामे अरब : अब्दुल हलीम 'शरर'
उमरख जान अदा : मिर्ज़ा मोहम्मद हादी रुसवा
शरीफ ज़ादा : मिर्ज़ा मोहम्मद हादी रुसवा
हिकायात व एहसासात : सज्जाद हैदर यलदरम
ख़यालिस्तान : सज्जाद हैदर यलदरम
जोशे फ़िक्र : सुल्तान हैदर जोश
जौहरे असमत : राशिदुल खैरी
बेगमात के आँसू : हसन निज़ामी
अंग्रेज़ों की बिपता : हसन निज़ामी

टैगोर : मखदूम मुहीउद्दीन
एक शायर का अंजाम : नियाज़ फ़तेहपुरी
शहाब की सर गुज़श्त : नियाज़ फ़तेहपुरी
निगारिस्तान : नियाज़ फ़तेहपुरी
जमालिस्तान : नियाज़ फ़तेहपुरी

अंग्रेजी

Illusion And Reality by C. Caudwell
Hindu view of Art by Mulk Raj Anand
Popular Hinduism by O' Malley
History of Congress by Pattabhi Sitaramayya
Modern Religious Movements in India by Farquhar
The Holy Quran (Translated) by Mohammed Ali
Bhagwat Gita (Translated) by C. Raja Gopalachari
Modern Indian Culture by D.P. Mukerjee
On Indian History : A Study in Method by D.P. Mukerjee
Tagore : A Study by D.P. Mukerjee
Tolstoy by Jerald Abraham
East And West by Abdulla Usuf Ali
Life and Novels of Bankim Chandra Calcutta University (1939)
New Realism by S. Spender
War and Peace by Leo Tolatoy (translated by Louise and Aylmer Mande)
Note on Literary Criticism by James T. Farelle
Introduction to the Study of Literature by W.H. Hudson

Aspects of Novel	by E M. Forster
Structure of Novel	by Edwin Muir
Craft of Fiction	by Percy Lubbock
Twentieth Century Novel Studies in Technique	by Beach
The Novel and the People	by Ralph Fox
Philosophy of Fiction	by Grant Overton
Novel Today	by Philip Henderson
The Short Story.	by Albright
Modern Short Story	by H E Bates
Studies in A Dying Culture	by C Caudwell
Enimies of Promise	by Cyril Collolly
Style	by Raleigh
Prose Style	by Reed
Prose under the influence of Sir Syed	by Dr Abdulla
A Critical Survey of the Development of the Urdu Novel and Short Stories	by Shaista Akhtar Banu Suhrawardy
Speeches and Writings	by Pt Bishun Narain Dar
Influence of English Literature in Urdu	by S Abdul Latif
Prem Chand	by Madan Gopal
Prem Chand An Interpretation	by Dr Inder Nath Madan
Modern Hindi Literature	by Dr Inder Nath Madan
Prem Chand of Lamahi Village	by Robert Oswan
Discovery of India	by Jawaharlal Nehru
Encyclopaedia Britannica Vol. 20 1956	

घ. पत्र-पत्रिकायें

ज़माना : कानपुर
मजलिस : लाहौर
हिन्दुस्तानी : इलाहाबाद
साक़ी : देहली
नया अदब : लखनऊ
मख़ज़न : लाहौर
स्मत : देहली
हंस : बनारस
चाँद : इलाहाबाद
जागरण :
माधुरी : लखनऊ
मर्यादा : काशी

□□